श्रावण १८८२ (जुलाई १९६०)

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित
तथा प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, द्वारा मुद्रित

निवेदन

आकाशवाणी हमारे सांस्कृतिक जीवन का एक प्रमुख अंग बन चुकी है। इस सम्बन्ध में किसी को अब सन्देह नही है कि इसके विभिन्न केन्द्रो ने संगीत तथा वार्ताएं प्रसारित करके ज्ञान-विज्ञान तथा कला और साहित्य के क्षेत्र में देश की बहुत बड़ी सेवा की है। कई प्रसारित वार्ताएं स्थायी मूल्य की होती हैं और यह सबके लिए दुर्भाग्य होगा यदि अधिकारी विद्वानो या अपने विषय के विशेषज्ञो के द्वारा प्रसारित वार्ताएं केवल सामयिक प्रयोजन सिद्ध करके ही भुला दी जाएं। इसी विचार से कुछ अच्छी वार्ताओं को चुन कर प्रकाशित करने का कार्यक्रम कई सालों से चालू है।

सबसे पहले 'रेडियो संग्रह', फिर 'प्रसारिका' व 'आकाशवाणी प्रसारिका' और बाद को 'आकाशवाणी विविधा' नाम से इस प्रकार की वार्ताओ का प्रकाशन किया गया। गत वर्ष आकाशवाणी विविधा का जो संस्करण प्रकाशित हुआ था, उसकी आलोचको ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसी से प्रोत्साहित होकर इस साल भी यह संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है। हमने गत वर्ष की तरह इसमे प्रसारित वार्ताओ में से सब तरह के नमूनो को प्रतिनिधित्व देने की चेष्टा की है। विषय-सूची पर एक दृष्टि डालने से ही यह पता लग जाएगा कि किस प्रकार सामग्री के चुनाव में सब तरह की रुचि का ध्यान रखा जा रहा है। इस सूची से यह भी प्रकट हो जाता है कि आकाशवाणी वार्ताओ के क्षेत्र में उच्चस्तरीय कार्य कर रही है। हम आशा करते हैं कि पाठक इस ग्रंथ को अपनाएंगे और उन्हें यह संग्रह पसन्द आएगा।



आकाशवाणी विविधा १९६०

विषय-सूची



बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जवाहरलाल नेहरू

आज बालकृष्ण शर्मा का और मेरा ४० बरस का साथ खतम हुआ। हम सन् २० और २१ में साथ काम करते थे। सन् २१ में हम साथ जेल गए, एक बैरक में रहे और उसके बाद तो खैर उनसे मिलने के, साथ रहने के बहुत मौके मिले। वह हमारे पुराने साथियों में थे। मेरे छोटे भाई की तरह थे, मुझसे बहुत कम उम्र के थे। वह सब ज़माना याद आता है। किस तरह उनके साथ रहने से हमारी जेल की ज़िन्दगी भी कुछ हलकी हो गई थी। कोई भी पुराना साथी गुज़रे, तो एक चोट लगती है और एक खाना खाली हो जाता है। बालकृष्ण जी के लिए तो खास बात है, खास आदमी थे, फिर कवि थे, जोशीले थे। अक्सर उनसे बहस भी होती थी। छोटे-मोटे झगड़े भी हो जाते थे, बहस में। लेकिन उनकी कद्र थी, एक दूसरे से मोहब्बत थी। तो गरज़ कि वह खाना खाली हो गया और रंज है दिल में। लकिन कोई इसका इलाज नही। सिवा इसके कि याद में वो रहें, जैसे कि रहेंगे।

—आकाशवाणी समाचार दर्शन में प्रसारित

कुछ साहित्यिक संस्मरण

मैथिलीशरण गुप्त

पचास-पचपन वर्ष हो गए, जब मैने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। तब तक पद्यो में अधिकतर व्रज भाषा का ही प्रचार था और यह विवाद चल रहा था कि कविता की भाषा यथापूर्व वही बनी रहे अथवा गद्य के समान पद्य में भी बोलचाल की भाषा का व्यवहार किया जाए। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को अपनी खडी बोली की पद्य रचना से सन्तोष न हुआ था।'

मेरे समक्ष भाषा का ही प्रश्न न था, विषयवस्तु की भी समस्या थी। पूज्य आचार्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी की प्रेरणा से मैने पद्य में भी बोलचाल की भाषा अपनाई और स्वदेश की स्थिति से कथावस्तु चुनने की प्रेरणा पाई। परन्तु हम परतन्त्र थे। देश में विदेशी शासन था और उसके विरोध में निरोध का त्रास।

उन्हीं दिनो वंग-भग का आन्दोलन आरम्भ हुआ। उसका प्रभाव केवल बंगाल पर ही नही, सारे देश पर पड़ा। बगाल की तरुण पीढी तो ऐसी उत्तेजित हुई कि मरने-मारने पर उतारू हो गई। खुदीराम वोस के वम-विस्फोट ने मानो नए अभियान का डका वजा दिया, जिसकी चर्चा करते हुए लोकमान्य तिलक ने कहा था—यह अच्छा हथियार बगाल के नवयुवकों के हाथ लगा।

तव तक भारतीय राजनीति में राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का पदार्पण नही हुआ था।

स्थान-स्थान पर क्रान्तिकारियो की गुप्त समितिया संघटित हो रही थी। विदेशी शासन भी अपनी प्रभुता स्थिर रखने के लिए कुछ उठा न रखना चाहता था। आगे चल कर जलियावाला वाग की सी वर्वरताए भी उसके लिए साधारण हो गई थी। उस समय मैंने जो दो पक्तिया लिखी थी वे ये है—

इतने जल्द जागते, हम क्या करता कहीं न फायर तू;
जीता रह, पेन्शन पाता रह, डायर तू! ओ डायर तू!

मेरे अभिभावको को चिन्ता लगी रहती थी कि मै कुछ ऐसा न कर वैठू कि पकड कर जेल में डाल दिया जाऊ। तव भी यह कहने का समय नही आया था कि 'जेल भरवायी स्वराज्य मलगे' अथवा मेरे ही शब्दो में—

शासन है बिलकुल बेमेल,
उनका जेल हमारा खेल।

वड़े-वडे नेता लोग भी उस समय वहुत सभल-संभल कर वोलते और लिखते थे। हम जैसे साधारण जन यह प्रयत्न करना न भूलते थे कि आगे कोई गति न रहे, तो वच निकलने के लिए पीछे की ओर छिपा द्वार वना रहे। स्वराज्य की माग तो की जाती थी परन्तु ब्रिटेन की छत्र-छाया में। मै जिस वर्ग में था उसमें राजद्रोह की कल्पना भी कठिन थी।

तथापि किसी लेखक के लिए तनिक-तनिक में उसकी लेखनी पर अकुश लगना विषम व्याघात है। अपने अभिभावकों और गुरुजनो के प्रति विनीत और भीत होने के कारण मैं उनका अवाच्य न हो सकता था। तो भी व्यर्थ की काट-छांट से बहुधा विकल हो उठता था। सचमुच मुझे अनेक वार वह व्यर्थ ही लगती थी। मैं जो कुछ कहता, वह न कहने पाता। यही नही, यदाकदा उसके प्रतिकूल कहने के लिए विवश किया जाता। तव अधिक क्या कहू, मैं रो देता। मुझे समझाया जाता कि एकाव वात के पीछे तुम अपनी अन्य सभी वातें कहने से क्यो वचित होना चाहते हो। तुम्हारा आन्तरिक भाव तुम्हारे पाठको से छिपा न रहेगा, वे उसे समझ ही लेंगे। फिर व्यर्थ सकट विसाने से क्या लाभ?

पूज्य द्विवेदी जी वीच-वीच में मुझे सावधान करते रहते। एक वार उन्होने लिखा—अभी नया कानून वना है। मार्शल ला ही समझिए। फासी तक की सजा है।

इस प्रकार की चेतावनिया मेरी हित कामना से ही दी जाती। उनमें पूज्य द्विवेदी जी का वात्सल्य भाव ही प्रधान रहता।

मेरी 'नकली किला' नाम की रचना वहुतो को रुची थी। 'रग में भग' उसी की पूर्णता समझिए। स्वर्गीय काशी प्रसाद जायसवाल ने भी उसे पढ कर मुझे एक पत्र लिखा था। उस पत्र की एक वात विशेष स्मरणीय है, उन्होने 'नकली किला' न लिख कर 'कृत्रिम कोट' लिखा था।

उस रचना की अनेक पक्तिया इडियन प्रेस के प्रभुओ ने 'अनावश्यक और उग्र' कह कर निकलवा दी थीं। इससे मुझे अत्यन्त क्षोभ हुआ। यह प्रतिवन्ध प्रेस की ओर से था, इस कारण मैं विगड़ पड़ा। पूज्य द्विवेदी जी ने मुझे समझाया, इससे प्रेस का अहित हो सकता है। कारण, उसको सरकार से विशेष लाभ होता है। उन पक्तियो के विना भी उस कविता में वहुत कुछ है, इत्यादि। इस पर मैं क्या कहता? चुप हो गया। इस प्रकार प्रेस की एक और नई वाधा भी मेरे आगे आ खड़ी हुई। परन्तु उसमें मेरी अपेक्षा प्रेस की अपनी ही चिन्ता अधिक थी, मुझे ऐसा ही लगा।

अपनी 'स्वर्ग सहोदर' नाम की रचना में भी मुझे एक पक्ति परिवर्तित करनी पडी थी—

खलता दुख दैत्य महोदर है,
यह भारत स्वर्ग सहोदर है।

इसमें 'दुख दैत्य' के स्थान पर किसी दूसरे ही दैत्य का सकेत था।

एक वार पूज्य द्विवेदी जी ने लिखा—समय-सूचकता भी कवि का एक गुण होता है।

'पजर-वद्ध' नाम की रचना इसके अनुरूप ही थी। परन्तु उसके छपने में भी वही वाधा आई।

पूज्य द्विवेदी जी ने लिखा—तोते वाली रचना यहा लोगो को वहुत पसन्द आई। प्रेस के मालिक उसे सुन कर वहुत प्रसन्न हुए। परन्तु जमाना वडा नाजुक है। इससे निश्चय हुआ कि इसे अभी कुछ दिन न छापा जाए। आशा है इससे आप खिन्न न होंगे। मैं खिन्न हो कर करता भी क्या?

उस वार पचम जार्ज के राज्याभिषेक की वडी धूम थी। उस पर सर्वत्र हर्ष और अभिमान प्रकट किया जा रहा था। 'सरस्वती' भी इसमें पश्चात्पद न थी। पूज्य द्विवेदी जी ने मुझे 'राज्याभिषेक' रचना करने की आज्ञा दी। किन्तु मेरा मन न था। फिर भी

उनकी आज्ञा का पालन न करना मुझे ठीक न जान पडा। फलत. मुझे भी उस हर्ष और अभिमान में योग देना पडा। परन्तु सब कुछ कहने के अनन्तर मैंने इतना और कह दिया—

दीख रही जो आज, बाहरी है यह लाली;
भीतर होली जले, किन्तु बाहर दीवाली।

परन्तु सम्भवत. यह कहना भी प्रेस के हित में न था। अतएव उक्त पक्तिया निकाल कर ही वे पद्य छापे गए। बहुत वर्षों के पश्चात फिर एक बार मुझे लजाने के लिए दूसरे सम्पादक के काल में वह रचना छापी गई। राष्ट्रपिता बापू को यह बात खली। फलत. मुझे महादेव भाई ने पत्र लिख कर पूछा। उन्होने समझा यह अभी लिखी गई है। तब मुझे उसका सारा व्योरा देना पडा।

'राज्याभिषेक' लिख कर मेरे मन में जो क्षोभ हुआ था, उसे शान्त करने के लिए उसके अनन्तर उन्ही दिनो धर्मराज युधिष्ठिर के राज्याभिषेक को लेकर मैंने कुछ पद्य और लिखे तथा उन्हें पूने के 'हिन्दी चित्रमय जगत' मे छपने के लिए भेज दिया। शीर्षक था . 'दो दृश्य'। वे पद्य जैसे थे वैसे ही छप गए। किन्तु उसके सम्पादक महाशय ने 'दो दृश्य' के स्थान पर 'युग दृश्य' कर दिया। यह परिवर्तन मेरी समझ में न आया। तब मैंने इसे सम्पादक का कृतित्व मान लेना ही उचित समझा।

उस रचना की कुछ पक्तिया इस प्रकार थी—

कहो, आज किस ओर चलोगे, देखोगे किस ओर भला,
क ओर वीरत्व विभव ह, एक ओर कारुण्य कला।
× × ×
एक ओर विजयी बलशाली धर्मराज का है अभिषेक,
एक ओर मृत वीरवरों की विधवाओं का शोकोद्रेक।
× × ×
एक ओर तो मातृभूमि पर मधु धारा-सी ढलती है,
एक ओर उस मृतवत्सा की छाती धक-धक जलती है।
× × ×
आओ तब दोनों आंखों से देख हम भी ोनों ओर,
एक आंख से अपनी उन्नति एक आंख से अवनति घोर।

जिन दिनो हमारे राष्ट्रपिता के नेतृत्व में दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह सग्राम चल रहा था, उस समय भी कुछ पद्य लिखने की मुझे आज्ञा मिली थी। परन्तु वे पद्य भी 'सरस्वती' में न छप सके। पीछे मेरे बन्धु स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी को जब इसका पता चला, तब उन्होने पूज्य द्विवेदी जी से ले कर उन्हें 'प्रताप' में प्रकाशित किया था। पहला पद्य था—

दीन हों हम, किन्तु रखते मान हैं,
भव्य भारतवर्ष की सन्तान हैं,
न्याय से अधिकार अपना चाहते—
कब किसी से मांगते हम दान हैं।

—दिल्ली से प्रसारित

चांद और कवि

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है।
उलझनें अपनी वना कर आप ही फंसता,
और फिर बेचैन हो जगता न सोता है।

जानता है तू कि मै कितना पुराना हूं ?
मै चुका हूं देख मनु को जनमते मरते।
और लाखों वार तुझ-से पागलो को भी
चादनी मे बठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न ? है वह वुलवुला जल का,
आज वनता और कल फिर फूट जाता है।
किन्तु, तो भी धन्य, ठहरा आदमी ही तो !
बुलवुलों से खेलता, कविता वनाता है।

मैं न बोला, किन्तु मेरी रागिनी वोली,
चांद ! फिर से देख, मुझको जानता है तू ?
स्वप्न मेरे वुलवुले है ! है यही पानी !
आग को भी क्या नही पहचानता है तू ?

मै न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग मे उसको गला लोहा वनाती हूं।
और उस पर नींव रखती हूं नए घर की,
इस तरह, दीवार फौलादी उठाती हूं।

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ मे भी धार होती है।
वाण ही होते विचारों के नही केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खवर कर दे,
'रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे है ये।
रोकिए, जैसे वने, इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर वढ़ते आ रहे है ये।'

—दिल्ली से प्रसारित

१०० का नोट

चन्द्रकिरण सोनरेक्सा

जेब मे पैसे यदि थोडे हो और बाजार की सभी सस्ती-महंगी दुकानो की खाक छानने पर भी जब उन पैसो में जरूरत की चीज़ न मिल सकी हो, तब आदमी के पास केवल एक ही चारा बचता है—सडक के किसी अंधेरे से मोड पर भीड और चहल-पहल से बच कर खड़ा हो जाए और सिर खुजलाने लगे। जेब के चार रुपये तेरह आनो में किसी प्रकार भी एक अच्छी कमीज के कपड़े का ब्यौंत नही बैठा था और मैं सिर खुजाते हुए सोच रहा था कि अब! अकस्मात एक छोटी सी परछाई तेजी से आ कर मेरे पीछे छिप कर दुबकने लगी। मुड कर देखा तो परछाई गिडगिडाई—बाबू जी बचाना, वो मुझे मारने आ रहे हैं—और फिर घुटनों के बल बैठ कर वह छिपने सी लगी।

अभी मैं केवल इतना ही जान पाया था कि वह परछाई एक तेरह-चौदह वर्ष के दुबले-पतले लड़के की है, कि सामने से भागते आते हुए आदमियों ने पुकारा—वो रहा, वो रहा, देखो तो साला कहा छिपा है—और उनमें से एक ने उसे खीच लिया।

—बोल अब करेगा चोरी?—आगन्तुक ने उसके रूखे उलझे बालो को पकड़ कर झटका देते हुए कहा—मारते मारते हड्डिया तोड दूगा .आगे कभी अपनी दुकान के आस-पास भी खडे देखा तो पुलिस में दे दूगा।

दूसरे व्यक्ति ने भी उसके एक झापड रसीद किया—सडा-मुसडा सा तो है। ..मेहनत-मजूरी नही करेंगे, भीख मागेंगे, चोरी करेंगे...बोल बे अब फिर चुराएगा?

फटी नीकर और चिथड़ा बनियान से ढका वह छोकरा रो उठा—नही.. अब नही करूगा चोरी!

आस-पास चलते राहगीर भी जमा हो कर तमाशा देखने लगे थे। उन्ही को सम्बोधन करते हुए पहले व्यक्ति ने कहा—देखते क्या हैं साहब। बड़े हो कर पक्का डाकू निकलेगा... मैं गाहकों को सौदा दे रहा था और इस पट्ठे ने मौका पाते ही डबल रोटी उड़ा ली... क्यो बे फिर करेगा चोरी?

और मेरे 'हा...हा' करते करते भी उन दोनो ने उस लड़के पर घूसों और मुक्कों द्वारा अपना आक्रोश निकाल डाला।

—छोड़ दीजिए साहब बच्चा है, अब नही करेगा—मेरे मन में न जाने क्यो उस गन्दे, काले, सूखे लड़के के लिए तरस उमड़ आया।

भीड़ में से और भी दो-एक ने कहा—जाने दो, काफी सजा मिल गई।

दोनो व्यक्तियो को भी शायद अपनी दुकान की चिन्ता थी, लडके को एक धक्का दे कर उसकी मां-बहन से निकट का सम्बन्ध जोड़ते हुए वे चले गए। लड़का वहीं बैठा रोता रहा। भीड़ भी छूट चली तो मैंने घर की ओर पग बढ़ाए।

—बाबू जी— वह लड़का फटी बनियान से आंसू पोछते हुए मेरे पीछे लगा—एक पैसा बाबू जी, सवेरे से भूखा हू......एक पैसा।

—अबे पैसा क्या करेगा, अभी तो डबलरोटी चरा कर खा चुका है !

—कहां—अचानक लड़के ने मुह फाड कर कहा—वो तो भागते हुए कही गिर पड़ी थी...बाबू जी दो पैसे के चने दिला दो, बड़ा भूखा हू ! ...बाबू ! ...स्वर में भूख की याचना मिली हुई थी।

मैंने अब एक बार भली प्रकार उसे ताका। सचमुच लड़के का पेट पीठ मे लगा था—क्यो रे, तू कही नौकरी क्यो नही कर लेता, इतना बडा है भीख मागते शर्म नहीं आती ?

—नौकरी—लडका तनिक रुक बोला— मुझे कौन नौकरी देगा ? मेरे बाप-मा, घर-द्वार कुछ नही है।

मन में बड़ा क्रोध आया, कैसा चालाक बनता है। इसके कोई नही है तो क्या आसमान से टपका है। झूठा कही का। मैंने कहा— आज तक कहा रहता था कोई तो होगा ही तेरे।

—सच बाबू मेरे कोई नही है। एक बड़ी बहन थी वही मुझे भीख माग कर खिलाती-पिलाती थी। एक महीना हुआ उसने ब्याह कर लिया। पर जीजा खराब आदमी है, वो बहन को मारता है। मुझे भी मारता है।. दस दिन हुआ, बहन को लेकर कलकत्ता चला गया। मेरे कोई नही है अब, कल से भूखा हू।

तर्क-वितर्क, दया-माया और स्वार्थ-परमार्थ सभी तो मनुष्य के मन में कुन्डली मारे बैठे रहते हैं। लड़के की दशा देख मन म दया आ रही थी। घर में आजकल बर्तन माजने को महरी तक नही है। जो इसे ही नौकर बना कर रख लू तो सारी मुसीबत दूर हो जाए, यह स्वार्थ की पुकार थी। .परन्तु लड़का तो चोर है, न घर का पता न द्वार का, जो कुछ ले कर भाग गया तो ? इस महगाई में तो लोटा-गिलास भी चोरी हो जाए तो जुटाना कठिन है। मै तर्क के हिंडोले में झूल रहा था।

—बाबू—लड़का मेरा मुह ताक रहा था—तुम्ही नौकर रख लो बाबू ! बस खाना-कपड़ा देना। सच बाबू। खाना मिलेगा तो चोरी क्यो करुगा बाबू ?

—अच्छा यार चल तू भी क्या कहेगा—और मै उसे अपने साथ लेकर घर आ गया।

+ + +

नथुआ आज हमारे घर का एक सदस्य था। इन पाच वर्षो में उस बिचारे ने कभी चोरी की हो, ऐसा प्रमाण नही मिला यद्यपि आरम्भ में श्रीमती ने एक राह-चलते आवारा लड़के को घर में रखने पर बहुत आपत्ति की थी। परन्तु भगवान ने हमारी लाज रखी। नथुआ ने मेरे विश्वास का मूल्य चुका दिया। आज तो वैसा चुस्त और कामकाजी नौकर बीन पर भी मिलना कठिन था, परन्तु हम उसे आज भी केवल दस रुपये और खुराक पर रखे थे। यह दस भी हमने एक साल बाद यह कहने पर बाधे कि बाबू बहन को भेजेंगे, वही तो हमारी सब कुछ है।...उसकी तनख्वाह के रुपये मै अपने हाथ से उसकी बहन को कलकत्ते मनीआर्डर कर देता था। अब इधर तो घर का सौदा-सुलुफ चीनी-राशन तक वही लाता था। मैंने उसके साथ जाना तक छोड़ दिया था।

उस दिन मगलवार था। आज हमें हनुमान मन्दिर जाकर प्रसाद चढ़ाना था क्योंकि कल मेरे लड़के को उसकी पाच मास की छात्रवृत्ति के सौ रुपये मिले थे और हमने तय किया कि उस नोट को प्रसाद लेने पर ही भुनाया जाएगा। मै हजामत बना कर अभी स्नान

धो रहा था कि पत्नी बड़ी परेशान सी आकर बोली—वो सौ का नोट सन्दूक मे नही मिल रहा, कही आपने तो नही निकाला ?

—मैं भला क्यों निकालता, कल मुन्ना ने तुम्हें ही लाकर दिया था।

—हा दिया तो था—वे और भी परेशानी से बोली—आपके सामने ही तो मैंने उसे सन्दूकची के ऊपर वाले खाने में रख दिया था।

—ठीक से याद करो, कही अपने बक्स में तो नही रखा।...मुन्ना से पूछा ?

—हां, पूछ लिया। बक्स में तो मुझे ठीक याद है कि नही रखा था. .....फिर बक्स सन्दूकची और कमरे के आले-दिवाले सभी तो झाड-पोछ कर देख आई हू, कही भी नही है।

मैं हाथ धोना भूल गया और फिर हम दोनो ही ने मिल कर घर के सभी छोटे-बडे सन्दूक ही नही रसोई घर के दाल-आटे के डिब्बे तक तलाश कर डाले, नोट का कही पता नहीं था। चोर कहा अब ? हम दोनो ने एक-दूसरे की ओर देखा, नोट को क्या आखिर भूत ले गए। बाहर से घर में कोई आया नही और अकस्मात मेरी पत्नी ने धीमे से कहा—जी मेरा तो सदेह नथुआ पर है, वो कल कोठरी में उस समय खडा कपडे तह कर रहा था।

यू घूम-फिर कर मेरे मन में भी एक-दो बार नथुआ का नाम आया था, परन्तु मैं इतनी जल्दी ऐसी कच्ची बात कैसे कहता ?—परन्तु सोचो तो आज तक उसने घर का एक पैसा तक नही उठाया, तीस-चालीस रुपये तक लेकर बाजार से राशन लाया है।

—सो मैं कब कहती हूं, पर आदमी की नीयत ही तो है। इकट्ठा सौ का नोट देख कर बिगड़ गई होगी। . मेरी भी बुद्धि कैसी है? सन्दूकची में रखते समय भी एक बार मैंने नोट वहा से निकाल कर बटुए में रखा पर फिर शायद वही रख दिया था . . तुम उससे पूछो तो !

ऐसी बात पूछनी क्या आसान थी। मैंने एक बार फिर जोर-शोर से सारे घर की तलाशी ली, बिस्तरों की चादरें निकाल कर देख डाली। सन्ध्या तक मेरा सन्देह भी निश्चय में बदल गया। नथुआ दोपहर में काम खत्म करके तीन-चार घण्टो को प्राय. ही चला जाया करता था। साढ़े चार पर वह तरकारी लिए लौटा—नथुआ !—मैंने गम्भीर स्वर में पुकारा।

—आया बाबू जी।

—नथुआ ! मुन्ना बाबू के वजीफे का जो नोट कल आया था वह नही मिल रहा है।

—घर में ही होगा बाबू जी—उसने पूरे इतमीनान से कहा और बैठ कर आलू छीलने लगा।

—अरे सवेरे से सारा घर तो छान मारा, कही नही है—पत्नी ने चिढ़े स्वर में कहा—क्यो रे तूने तो नहीं उठाया, कही हंसी की हो।

—नहीं बहू जी मैं आप से हसी करूगा—और वह आलू छीलता रहा मुख पर कही परेशानी या घबराहट नही थी, फिर बोला—कहा रखा था मैं भी ढूढू, कही चूहा तो नही ले गया।

—हा, हां, नोट चूहा ले जाएगा। वो तो तेरे जैसे बनबिलाव के पेट में उतर गया है। नथुआ सच कहती हूं नोट दे दे, आदमी से भूल-चूक हो ही जाती है, मैं तुझे क्षमा कर दूगी।

नथुआ ने मेरी ओर देखा और नेत्र नीचे कर लिए।

—हां नथुआ आदमी के मन में लालच आते देर नही लगती—मैंने कहा—ले लिया हो तो दे दे, नही तो मैं पुलिस में रिपोर्ट करने जा रहा हूं। घर में चार जनो के बीच से नोट भला कौन ले सकता है ?

—बाबू जी, मैंने नहीं लिया नोट—वह रुआंसा हो आया—आप मेरे माई-बाप हैं, क्या आगे मैंने कुछ चुराया है ?

—तू तो बड़ा सत्यवादी हरीचन्द है। पहले भी तो भीख मांगता, चोरी करता था। आज इस बड़े नोट को देख के फिर नीयत फिसल गई होगी।

नथुआ ने उत्तर नहीं दिया, सिर झुकाए रहा। मुन्ना भी आ गया था। वह नए खून का लड़का है। उसने तो सवेरे ही नथुआ को चोर करार दिया था। अब तो वह विश्वास सत्य बन चुका था। सारी रात हमने साम-दाम, दड-भेद से काम ले कर नोट का पता जानना चाहा। परन्तु नथुआ था कि एक चुप और सौ को हराए.. बस रोए जाता था। रात भर मैं उसे साथ लेकर फिर घर का राई-रत्ती खोज गया। नोट नहीं मिला और अब मेरा सन्देह भी जड़ पकड़ गया था।

—बदमाश, कमीने, चोर ! बता नोट कहां रखा है ?—मैंने उसके कान खींच कर दो झापड़ रसीद किए। मुन्ना ने भी काफी मरम्मत की परन्तु नथुआ की 'नहीं' 'हां' में नहीं बदली। उसकी कोठरी में रखे उसके टूटे बक्स की तलाशी भी ली...उसमें फूटी कौड़ी भी न थी।

—पुलिस में दे दो जी—पत्नी चीखी—यू ऐसे कबूलने वाला नहीं। जब वहां चूतड़ों पे बेंत पड़ेंगे, एक मिनट में चीं बोल जाएगा।

मुझे भी उसके टर्र मन पर क्रोध था, नोट उसके सिवा किसी ने नहीं लिया। घर में कुल तीन प्राणी हैं और चौथा नथुआ है। मैंने उसका हाथ पकड़ा और थाने ले चला। वह घर से बाहर नहीं जाना चाहता था। द्वार से चिपट गया। मुन्ना ने खींच कर बाहर किया। हम दोनो चले। थाना सामने आ गया।

—अब भी बता दे—मैंने पूछा—नहीं तो फिर तू है और जेल है।

जेल !......नथुआ एक बार कांपा और फिर बोला—बाबू जी घर ले चलो। मैं रुपये अभी देता हूं।

ओफ कैसा पक्का चोर है, कितनी मुश्किल से कबूला है !......मैं उसे लौटा कर घर लाया, अपनी कुठरिया का एक कोना खोद कर उसने एक हंडिया निकाली उसमें से गिन कर रुपये निकाले, कुल पच्चासी रुपये निकले ?

—नोट तुड़ा कर उसने एक दिन में पन्द्रह रुपये खर्च भी कर डाले—पत्नी बोली।

—ज़रूर जुआ खेला होगा, हे भगवान ! इसी चोर-जुआरी को तुमने पांच बरस घर में रख के खिलाया-पहनाया।

नथुआ सिर झुकाए खड़ा रहा।

—बाबू जी इसे पुलिस में दे दो—मुन्ना ने राय दी।

परन्तु न जाने क्यों मुझे पुलिस वाली बात पसन्द नहीं आई...रुपये मिल ही गए थे, अब केवल पन्द्रह रुपयों के लिए थाना-पुलिस ! इसके लिए इतना ही दण्ड काफी होगा कि घर से निकाल दिया जाए। आखिर चोर को कोई घर में रखेगा ?—जाने दो रुपये तो मिल ही गए। बस इसे घर से निकाल दो.. मैंने फैसला दिया।

—उठा ले अपना सामान और निकल जा घर से—मुन्ना गरजा।

—नथुआ ने किसी ओर नहीं देखा, अपना एक भी कपड़ा नहीं लिया, सिर झुकाए तेज़ी से भागता चला गया।

\+ \+ \+

नथुआ को गए आज पाचवां दिन था।

धोबी आया बैठा था, पत्नी घर भर मे मैले कपड़े बटोरती घूम रही थी। मुन्ना तरकारी लेने गया था और मैं आज भूखे ही आफिस जाने की तैयारी में व्यस्त था। यह कमबख्त नथुआ पाच बरस रह कर घर भर को नवाव बना गया था।

—सुनते हो!—अन्दर से पत्नी चिल्लाई—देखो तो नोट यह मिल गया।

—कहां?—मैं एक छलांग में अन्दर गया।

—मैंने अपने तकिए का गिलाफ उतारा तो उसमे से नीचे गिरा ..... हाय! शायद उस दिन मैंने भूल से नोट सन्दूकची के बजाय तकिए के खोल में छिपा कर रख दिया था।

मैं स्तब्ध रह गया। पत्नी की भूल पर उन्हें डांटने तक के शब्द मुख से न निकले। भूल क्या मैंने नही की थी? गरीब लड़के को जिसने पांच वर्ष मन-प्राण से सेवा की बिना प्रमाण पीट-पीट कर अधमरा कर डाला, पुलिस में देने चला था।

पत्नी भी नोट पाने के हर्ष से पुलकित न होकर विषाद से भरी खड़ी रही, जैसे-तैसे कपडे धोबी को दिए। दिन भर आफिस मे मैं यही सोचता रहा कहां होगा नथुआ? गरीब, निरपराध नथुआ कहां होगा? कैसे-कैसे कष्ट दिए उसे मैंने...... परन्तु उसके पास इतने रुपये आखिर कहा से आए। सन्ध्या को निरुद्देश्य सारे शहर का चक्कर लगाता रहा, कही नथुआ दिखाई दे जाए। फिर चार दिन और निकल गए।

उस दिन रविवार था। एक लाला-सा आदमी मेरा घर पूछता हुआ गली में आया।

—जी वो नथुआ आपके घर का लड़का था न, कहां गया इधर दस दिन से दुकान पर काम करने नही आता, क्या बीमार पड़ गया है? उसके बिना दुकान का बड़ा हरज होता है।

—दुकान का हरजा?—मैंने कहा—वो तो हमारा नौकर था।

—था तो सही, पर साल भर से दोपहर में वह हमारी दुकान पे बर्तन मांजे था, बड़ा अच्छा फुरतीला लड़का था। आठ रुपये मे दस रुपये का काम करे था जी। कहवे था अपनी बहन के लिए सोने की हंसली गढवा के भेजेगा, पूरे डेढ़ सौ रुपये की हंसली। उसी के लिए तो वह रुपये जोड रहा था। भला आज के ज़माने मे कौन भाई अपनी बहन पे इत्ता जी देवे है। क्या भला गया, हाय अपनी तनख्वाह के रुपये तो ले जाता।

लाला लौट गया। और मैं सोच रहा हूं, तो हाडी में उसकी दूसरी नौकरी के रुपये थे। हंसली के लिए जोडे थे। . . .क्या नथुआ कभी मुझे मिलेगा?

—लखनऊ से प्रसारित



बुद्ध की करुण भावना

भिक्षु धर्मरक्षित

भगवान बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन करुणा, मैत्री, प्रेम, अहिंसा, बन्धुत्व समदृष्टि एव समता से परिपूर्ण था। यदि उनके जीवन की प्रत्येक घटना का इस दृष्टि से विचार किया जाए, तो उसकी एक भी शृंखला इसके विपरीत जाती न मिलेगी। तथागत की करुणा अथाह थी। उन्होंने करुणा से द्रवित हो कर रोगियो की सेवा की, भूखो को भोजन दिया, मार्ग भूले हुए लोगो को सन्मार्ग दिखलाया, दुखियो का दुख दूर किया, सग्राम के लिए उद्यत व्यक्तियो को शान्त किया, सैकड़ो मील पैदल चल कर तृषितो की प्यास बुझाई। उन महाकारुणिक ने हम आर्त प्राणियों पर दया कर हमारे ही हित के लिए पैदल यात्रा की। कैसे थे वह प्रभु! जिन्होने कष्ट उठा कर हमें सुखी बनाने का सदा प्रयत्न किया।

वह महावैद्य थे। उन्होंने रोगी मानव के रोग को शान्त करने के लिए चरण बढाया, सन्तप्त प्राणियो को शीतलता प्रदान की, अशान्त वातावरण को शात किया और तृषित मानव के लिए धर्मामृत की वर्षा की। कैसे थे उनके भाव और कैसा सुखकर था उनका दर्शन! जो उनके पास आते वे तृप्त हो बोल उठते—श्रमण, तुम्हारी छाया सुखकर है; तथागत, तुम्हारी शरण कल्याणकर है, लोकनाथ, तुम्हारे गुण अनन्त हैं, भगवान, तुम अनन्त ज्ञानी और सर्वज्ञ हो।

तथागत दुखी एव पीड़ित प्राणियो के उद्धार के लिए महाकरुणा के साथ ससार को देखते थे। जब वह संसार को रागाग्नि, मोहाग्नि और द्वेषाग्नि से जलते देखते तब उनसे रहा नहीं जाता और वह उसे बचाने का प्रयत्न करने लगते। उनके लिए सभी प्राणी समान थे। उनकी करुणा की धारा सब पर समान रूप से प्रवाहित होती थी। उन्होने अगुलिमाल जैसे शस्त्रधारी डाकू पर भी अपने मैत्री बल से विजय प्राप्त कर ली। पुत्र-शोक में निमग्ना पटाचारा के पश्चात्ताप को उन्होने शान्त कर दिया।

और देखिए उन महाकारुणिक की लीला को—रोहिणी नदी के किनारे पानी के लिए उठे युद्ध को उन्होने शीघ्र जाकर शान्त किया। कोसल-नरेश के पुत्र विड्डभ ने सिंहासनारूढ़ होने पर शाक्यो से उनके कुकर्मों का बदला लेना चाहा। उसने खूब तैयारी के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। जब उन करुणावतार की दृष्टि इस पर पडी, तब उन्होंने धूप-गर्मी का खयाल न किया। वह विड्डभ के मार्ग में एक छाया विरहित वृक्ष के नीचे पहले ही से जा बैठे और उसके आने पर उपदेश देकर उसे लौटा दिया। उनके जीवनकाल में मगध-नरेश अजातशत्रु ने भी लिच्छवियो पर चढाई नही की। सब प्राणियो पर उनकी कैसी अनन्त करुणा थी!

तथागत का ध्यान सदा गरीबो पर बना रहता था। वह क्षुधित, तृषित एवं पीड़ितो की सेवा के लिए नित्य तत्पर रहते थे। एक दिन प्रातःकाल जब वह सारे संसार पर करुणा-दृष्टि डाल कर देख रहे थे, तब उनका ध्यान एक ऐसे दरिद्र की ओर गया, जिसका कोई

सहायक न था । वह प्रात काल ही कुछ भिक्षुओ को साथ लेकर चल दिए । तथागत को उस गाव में आया देख, दरिद्र यह सोच कर वहुत प्रसन्न हुआ कि भगवान का उपदेश सुनने को मिलेगा, किन्तु उसी दिन उसका एक बैल जगल में खो गया । उसने सोचा कि यदि बैल को अभी नही लाता हूं, तो फिर नही मिलेगा । अत वह जगल में बैल खोजने चला गया । इधर गाव वालो ने समय पर भगवान और भिक्षु-संघ को भोजन कराया तथा उपदेश सुनने के लिए चारों ओर से घेर कर बैठ गए । उन करुणावतार ने सोचा कि जिसके लिए मैं आया, वही नही है, अत. जव तक वह नही आता है, तवं तक उपदेश नही करूगा।

उधर खोजते-खोजते उसका बैल कही दोपहर में मिला । बैल को घर लाकर खूटे में वाध देने के वाद वह दौडा-भागा भगवान के पास आया । उसने सोचा कि उपदेश तो अव समाप्त ही हो चुका होगा, लेकिन कम-से-कम वहा पहुंच कर तथागत के श्रीचरणो में प्रणाम तो कर लू । जव वह भगवान के पास पहुचा, उस समय भूख के मारे उसके ओठ सूख गए थे, चेहरा कुम्हला गया था । भगवान ने उसकी मुखाकृति देख कर उसके भूखा होने को जान लिया और आयुष्मान आनन्द से पूछा—भिक्षु-सघ से कुछ भोजन वचा है ?

—हा भन्ते !

—तो इस भूखे को भोजन दो ।

जव वह खा चुका और उसका मन शान्त हो गया, तव भगवान ने उपदेश किया । उसी उपदेश को सुन कर उसने ज्ञान प्राप्त कर लिया । वह अर्हत हो गया । भगवान ने उसी दिन भिक्षुओं को उपदेश किया—भूख सवसे वड़ा रोग है ।

उन करुणानिधान की रोगियो के प्रति दया देखिए—तिस्स नामक एक भिक्षु के शरीर में छोटी-छोटी फुसिया निकली, जो वढती गई । अन्ततोगत्वा उसके सारे शरीर में वड़े-वड़े घाव हो गए और उनमें से दुर्गन्ध निकलने लगी । भिक्षु उसकी सेवा करने से दूर भागने लगे । वह विछावन पर पड़ा अकेले कराह रहा था । उसके सारे शरीर में घावो से वहे पीव से चीवर चिपक गए थे । परमकारुणिक तथागत की जव उस पर दृष्टि पड़ी, तव उनके हृदय में असीम करुणा उत्पन्न हुई । उन्होंने देखा कि उनका अपना ही तिस्स मरने के लिए छोड़ दिया गया है । वह गन्धकुटी से निकले । पानी गर्म करने वाले विहार में गए । उन्होंने पानी गर्म कराया और तिस्स को नहलाने के लिए उठाने लगे । भिक्षुओ ने जव यह देखा तो चारो ओर से भगवान को घेर लिया और उसे नहलाने के लिए प्रार्थना की । किन्तु उन करुणामूर्त्ति ने तिस्स के सभी कपडे गर्म पानी में धुलवा कर धूप में डलवा दिए और स्वय पानी गिरा-गिरा कर तिस्स को उसी प्रकार नहलाया, जिस प्रकार मां अपने इकलौते पुत्र को नहलाती है ।

जव पीड़ा कम होने पर शांत और प्रसन्न मन हो तिस्स चारपाई पर लेटा, तव भगवान ने कहा—भिक्षुओ ! तुम्हारे माता-पिता नही है, जो तुम्हारी सेवा करेंगे । यदि तुम परस्पर एक-दूसरे की सेवा नही करोगे, तो कौन करेगा ? जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है ।

उन करुणामूर्त्ति ने जहा अजातशत्रु जैसे पितृघातक को शरण दी, वहा अम्वपाली, विमला, अड्ढकासी आदि गणिकाओ का भी उद्धार किया । अपने शिष्यो के प्रति भी उनकी दृष्टि सदा वैसी ही रही । राजगृह में विहार करते समय महापन्थ ने अपने मूढ़ प्रज्ञ भाई चूलपन्थ को विहार से घर चले जाने को कहा और उसके लिए आए हुए जीवक के निमन्त्रण को भी अस्वीकार कर दिया । यद्यपि चूलपन्थ घर जाना नही चाहता

था, वह चीवर छोड़ कर गृहस्थ बनना नही पसन्द करता था, फिर भी अपने बड़े भाई के इस व्यवहार के पश्चात वह घर जाने के लिए बाध्य हुआ। उसने सोचा " दिन में विहार से घर जाने में हंसी होगी, सब लोग देखेंगे, कौन-सा मुख लेकर घर जाऊंगा। अत. बड़े तड़के अंधेरे में उठ कर चला जाऊंगा, उस समय कोई नही देख पाएगा।

उन करुणावतार ने भोर के समय जब अपने करुणा-जाल को फैलाया, तो उसमें चूलपन्थ को पाया। उसके हृदय की भावनाओ को जान, उन्हें महाकरुणा हो आई। वह चूलपन्थ के जाने के पूर्व ही विहार के द्वार पर जाकर टहलने लगे। जब चूलपन्थ घर जाने के लिए निकला और द्वार पर पहुंचा, तब उन्होंने पूछा—कौन है?

—भन्ते! मै चूलपन्थ हू।

—इतने भिनसारे कहा जा रहा है?

—भन्ते, मै गृहस्थ हो कर रहने के लिए घर जा रहा हू?

—ऐसा क्यो भिक्षु?

यह सुनते ही चूलपन्थ का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। उसने किसी प्रकार सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तथागत ने अपने कोमल हाथो से उसके सिर को सहलाते हुए कहा—भिक्षु, तू मेरे पास प्रव्रजित हुआ है। मैं तो तुझे घर जाने को नही कहता।

तथागत ने उसे प्रेमपूर्वक गन्धकुटी में लाकर भावना-विधि बतलाई और अर्हत्व प्राप्त करा दिया। वह चूलपन्थ महाऋद्धिमान भिक्षु बन गया। यह थी तथागत की अपार करुणा।

श्रावस्ती में अकाल पडा था। दूसरे मतावलम्बी साधारण साधु पेट भर भोजन न मिलने पर जेतवन में भगवान के पास आए। भगवान ने सबके लिए भोजन का प्रबन्ध किया।

एक बार भगवान बुद्ध राजगृह से नालन्दा जा रहे थे। उनके पीछे-पीछे सुप्रिय परिव्राजक अपने शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ भगवान की अनेक प्रकार से निन्दा करता हुआ चल रहा था। भिक्षुओ ने यह बात भगवान से कही। इस पर उन करुणावतार ने कहा—भिक्षुओ, यदि कोई मेरी, धर्म या सघ की निन्दा करे, तो तुम लोगो को उससे वैर, असतोष और चित्त में कोप नही करना चाहिए। यदि कोई मेरी, धर्म या संघ की प्रशसा, करे तो तुम्हें उससे आनन्दित, प्रसन्न और हर्षोत्फुल्ल भी नहीं होना चाहिए। यदि निन्दा-प्रशसा सुन कर दुख-सुख का अनुभव करोगे, तो उसमें तुम्हारी ही हानि है।

तथागत के करुणा-प्रवाह की थाह नही। वह अथाह और अनन्त था। जिससे सुनक्खत्त लिच्छवि जैसे अप्रसन्न रहने वाले व्यक्ति भी उनकी प्रशसा करते थे। देवदत्त जैसा विरोधी भी अन्त में इस प्रकार उनका गुणगान करता हुआ शरण में आया—

इमेहि अट्ठीहि तमग्गपुग्गलं
देवातिदेवं नरदम्म-सारथिं।
समन्तचक्खुं सतपुंजलक्षणं
पाणेहि बुद्धं सरणं गतोस्मिं—

हे संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष, देवताओ के भी उत्तम देवता, मनुष्यो को दमन करने वाले सारथी स्वरूप, सभी दिशाओ में सब कुछ देखने वाले, सैकड़ो पुण्य लक्षणो से युक्त, भगवान बुद्ध! मै अपने शरीर की इन सम्पूर्ण हड्डियो तथा प्राण के साथ आपकी शरण में गया हुआ मानव हू।

उन करुणानिधान के करुणा-प्रवाह में बहने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे कितने कृतपुण्य थे, हमारे लिए तो उन करुणावतार तथागत की पुण्य स्मृतिया ही अवशेष है। उन अनन्त कारुणिक बुद्ध को बार-बार प्रणाम! —इलाहाबाद से प्रसारित

भारत वैजयन्ती

वी० सीतारामय्या

सुपर्णा सदृश पख खोले गगन में
उड़ी, फिर उड़ी वैजयन्ती हमारी !

भवन-शैलनिर्मित, हरिद्युत धरातल,
विकल है पुलक से विपिन गिरि सरित-जल !
हृदय का अतल खोल कर सप्त सागर
लड़ी मोतियों की रहे कर निछावर !
विरुद विश्वमैत्री लिखे मोतियों से
नखत-ग्रह-जड़े व्योम-पथ पर सिधारी !

सुपर्णा सदृश पख खोले गगन मे
उड़ी फिर उड़ी वैजयन्ती हमारी !

सकल देश, सब राष्ट्र, बाधव परस्पर,
सकल जन रहे नित्य सहयोग-तत्पर,
यही शुभ्र यशकीर्ति अर्जित करे सब,
हमारी ध्वजा का दिशाव्याप्त कलरव !
गुजाता चला जा रहा दस दिशाएं
यही शुभ्र सदेश अम्बरविहारी !

सुपर्णा सदृश पख खोले गगन मे
उड़ी, फिर उड़ी वैजयन्ती हमारी !

पसारे युगल पख उड़ती पताका,
वही शस्यश्यामा, वही रत्नराका !
सकल विश्व के हित हृदय स्नेह-आगन,
त्रिलोकी बनी मातृगृह-सी सुहावन !
मिलेगा कहा और सद्भाव ऐसा,
अखिल विश्व-पोषक, निखिल द्वेषहारी !

सुपर्णा सदृश पंख खोले गगन मे
उड़ी, फिर उड़ी वैजयन्ती हमारी !

हुई अवतरित शक्ति, शत सेतु बाघे !
बंधे ऐक्य में सब मिला केतु-कांधे !
नए कूल-उपकूल सींचे-संवारे,
बहाए धरा पर सदा नीर धारे !
सजाए नए ताल मंगलकलश-से,
दिया अन्न-जल लोक-कल्याणकारी !

सुपर्णा सदृश पंख खोले गगन मे
उड़ी, फिर उड़ी वैजयन्ती हमारी !

गृहों-गोपुरों के कलश स्वर्णमडित,
दृगो ने नई ज्योति पाई अखडित !
कभी जब कही सिर अनय ने उठाया,
उठी दृष्टि, हर बार नीचा दिखाया !
तरंगावली ने सदा पांव धोए,
भरे थाल से आरती भी उतारी !

सुपर्णा सदृश पंख खोले गगन मे
उड़ी, फिर उड़ी वैजयन्ती हमारी !

अबुध आंधियों से रही नित्य ऊपर,
चतुर्दिक रही शांति की ज्योति भू पर !
अथक शांति की वैजयन्ती फहरती,
गगन मे निरापद मगनमन लहरती !
चमकती ध्रुवा बन, दमकती प्रभा बन,
मधुर मातृ छवि व्योम-पट पर उतारी !

सुपर्णा सदृश पंख खोले गगन में
उड़ी, फिर उड़ी वैजयन्ती हमारी !

—दिल्ली से प्रसारित

[रूपान्तरकार : नरेन्द्र शर्मा]

मेरी दृष्टि मे नई कविता

सुमित्रानन्दन पंत

'नई कविता' के सम्बन्ध में इधर कुछ वर्षों से पुस्तको और विशेषकर मासिक पत्र-पत्रिकाओ में जो लेख तथा निवन्ध प्रकाशित हो रहे है, उनसे इस नवीन साहित्य-स्रोतस्विनी के मर्म मधुर मुखर सौदर्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है। यह ठीक है कि ये निवन्ध या तो मुख्यत. 'नई कविता' के व्याख्याताओ तथा पक्षपातियो की ओर से लिखे गए है, जिनमें प्राय. ही नई काव्य-प्रवृत्तियो के वारे में अतिरंजनाओ तथा अतिशयोक्तियो का वाहुल्य मिलता है, या ये आलोचनात्मक लेख विपक्षियो की लेखनी से नि सृत हुए हैं, जिनमे नई कविता के सम्वन्ध मे पूर्वग्रह जनित आक्षेप ही अधिकतर पाए जाते है। इस प्रकार के दृष्टिकोण एकागी होने के कारण इस नवीन साहित्य-धारा को समझने के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नही हो सकते, क्योकि सत्साहित्य को न पूर्वग्रहपीड़ित आलोचनाएं ही मार सकती हैं, और न अतिरजित व्याख्याए ही उसे दीर्घ जीवन प्रदान कर सकती है। किसी भी साहित्य-धारा का उपयोगी अध्ययन तभी सम्भव हो सकता है, जव हम उस पर निष्पक्ष, संतुलित एव सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

जैसा कि मैंने अन्यत्र भी लिखा है, आज के युग-जीवन और अतश्चेतना को वाणी देने के लिए छायावाद, प्रगतिवाद, और प्रयोगवाद, जो अव नई कविता का रूप ग्रहण कर रहा है, तीनो ही एक-दूसरे के पूरक के रूप मे पाए जाते है। उनमें छायावाद आदर्श मूलक है, जो युग जीवन के आदर्श की दिशा की ओर इंगित करता रहा है, प्रगतिवाद सामूहिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करता आया है, और हमारी सामाजिक सघर्ष की बहिर्मुखी वास्तविकता को वाणी देता रहा है तथा प्रयोगवाद एवं नई कविता हमारे व्यक्तिगत जीवन के अंतर्यथार्थ की गहराइयो पर प्रकाश डालती आई है। काव्य की यह नई धारा मानव-अतर के माधुर्य—सौदर्य, विषाद-करुणा, भय-संशय, अनास्था, विवेक-चिन्तना तथा कभी प्रज्ञा को भी काव्य के धूप-छांह पट में गूथने का प्रयत्न करती आ रही है। यह नई धारा हिन्दी में ही नही विदेशी भाषा साहित्यो में भी अपने विशिष्ट गुण तथा व्यक्तिव लेकर प्रकट हुई है और इन सभी भाषाओ की कविताओं मे अनेक प्रकार की समान गुणधर्मा प्रवृत्तियो का आकलन प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है।

नई कविता में अनेक विशेषताएं देखने को मिलती हैं। प्रथमतः यह सामयिक यथार्थ की भावना को अभिव्यक्त करती आई है। इस युग की अनेक छोटी-मोटी दैनंदिन की समस्याओ से नए कवि का भावप्रवण संवेदनशील मन उलझा रहता है। वह उनके सूक्ष्म आघातों की संवेदनाओ को शीत-ताप मापक यंत्र की तरह भाव सौंदर्य के विविध धरातलों पर अंकित करता रहता है। नया कवि जहा युग सक्रान्ति के वैषम्य तथा वैचित्र्य को चित्रित करने का प्रयत्न करता है, वहां उसके भीतर निहित मूल्यो की ओर भी दृष्टिपात करना नही भूलता। यद्यपि उसकी अनुभूति में अभी अधिक गहराई के दर्शन नही होते पर उसकी अभिव्यक्ति की नवीनता, उसका संवार, सजीवन तथा उसका चमत्कार वरवस पाठकों का ध्यान आकर्षित किए विना नही रहता। अधिकांश कवि तो अभिव्यक्ति को मांजने और उसके लिए नए-नए अलंकार तथा विम्व खोजने

ही में खो जाते है, उनके रूप विधान की भूल-भुलैया में से जीवित भावना या आत्मा को ढूढ निकालना कठिन हो जाता है या सम्भवत उनकी कविता केवल एक साज, एक बनाव, अथवा एक कोरा अलंकरण ही होकर रह जाती है, उसके भीतर भावना या अनुभूति की उपलब्धि कुछ भी नही होती। ऐसे कवियो की संख्या नए कवियो में मेरी दृष्टि में हिन्दी में अधिक पाई जाती है। किन्तु ऐसे नए कवि भी निःसदेह, सौभाग्यवश वर्तमान है, जिनकी रचनाएं हृदय को गंभीरता-पूर्वक स्पर्श करती है और जो वर्तमान युग के संघर्ष-सशय के वातावरण में निर्माण की नई दिशाओ से सम्बन्ध रखते है और अपने प्रति मुख्यत., तथा विश्व जीवन के प्रति गौणत आस्थावान भी है। यह ठोस आस्था कभी-कभी उनमें अहम् का खोखला रूप धारण कर लेती है और यह अहम् भावना जहा बाहर के कलुप, सशय और निराशा से लडते-लडते प्राय अत्यन्त निर्मम कुरूप तथा कठोर रूप में अभिव्यक्त होती है, वहा कभी-कभी उसका वडा सुन्दर, संस्कृत, सुरुचिपूर्ण, मधुर स्वरूप भी देखने को मिलता है, जो स्वय काव्य का एक उपादान बन कर मन को मुग्ध करने की क्षमता रखता है।

प्रतिष्ठित मान्यताओ, प्रचलित काव्य पद्धतियो, प्रतिमाओ तथा शब्दो के प्रति उपेक्षा, विरक्ति तथा विद्रोह की भावना भी नई कविता की एक विशेषता है। नया कवि अपने युग-जीवन के यथार्थ तथा व्यक्तिगत परिस्थितियो से ऐसा चिपका हुआ है कि परम्परा तथा प्रतिष्ठित मूल्यो के प्रति अपनी अनास्था प्रकट करते हुए भी वह उनके जोड़ की नई मान्यताओं को जन्म देने में अभी समर्थ नही हो सका है। किन्तु इस विद्रोह से वह जिस नवीन विशेषीकरण की ओर अग्रसर हो रहा है, सम्भव है, वह आगे चल कर उसकी उपलब्धियो को नवीन महत्वपूर्ण ऊचाइयो की ओर ले जा सके। वास्तव में युग के विघटन का वोझ आज के कृतिकार की चेतना पर इतना अधिक है, कि उससे ईमानदारी से सघर्ष करने और अपने अंतर के विद्रोह को सफल-सबल वाणी देने में उसकी सृजन क्रिया अधिकतर परास्त हो जाती है। अपने अतर की आस्था-विश्वास के वल पर वह, आज के आंधी-तूफान और गर्द-गुबार के भीतर से उगते हुए जिन नए शिखरो को देखने और ग्रहण करने का प्रयत्न करता है, वे फिर-फिर उसकी मनोदृष्टि से ओझल हो जाते हैं और उनके स्थान पर वह घृणा, उपेक्षा और विषाद के भुजगो के सिर पर खडे अपने आत्म-विश्वास की ही दुहाई देकर रह जाता है। प्रचलित प्रणालियो को छोडने के फलस्वरूप वह काव्य जगत को नई शैलिया, विधाए, बिम्ब तथा साज-सवार के साधन प्रचुर मात्रा में प्रदान कर रहा है। इनमें चयन की आवश्यकता अवश्य ही पडेगी और अधिकाश बिम्ब तथा उपमा-अलकरण खंडित, अपूर्ण तथा अपर्याप्त ही रह जाते है।

नए कवि का सबसे वड़ा गुण यह है कि वह निरन्तर सजग है और उसमें अथक प्रयत्न तथा अनुसंधान करने की क्षमता है। वह विघटित होते हुए भी मानव व्यक्तित्व का तटस्थ साक्षी बन सकता है। दुख पर—आत्मविघटन, जीवन सघर्ष और नव-निर्माण की क्लाति के दुख पर उसे अमिट आस्था है। प्रकाश को वह अन्धकार के छोर से, सुख को दुख के छोर से, अस्तित्व को अह के छोर से और आस्था को सशय के छोर से पकडता है। इस प्रकार न वह अपने को भवानाओं के समुद्र में ही डूबने देता है और न विवेक के शिखर पर चढ कर वहा ठहरा ही रह सकता है।

नई कविता हिन्दी में एक प्रकार से छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद की उत्तरा-कारिणी बन कर आई है, अतः उसमें उपर्युक्त सभी प्रकार की चेतनाओ और भावनाओ के सूत्र गुफित मिलते हैं। एक ओर उसमें रोमाटिक कवि नई शैली में अपनी रंगीन भावनाओ की डोरियो को सौन्दर्य शिल्प के चित्रात्मक विधान में गुफित कर रहे है, तो दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ तथा चेतना के उद्बोधक स्वर तथा सामाजिक वैषम्य से प्रेरित क्षुब्ध विद्रोह भरी सशक्त, गठी अभि-

व्यंजनाएं भी उसमे सृजन प्रक्रियाओ को गुरुत्व प्रदान करने मे सफल हुई हैं। साथ ही उसमें संशय, नराश्य, कुंठा, अनास्था की खोखली कटुता तथा विद्वेप-घृणा भरी विघटित हो रही युगीन वास्तविकता का प्रयोगवादी चित्रण तथा निष्क्रिय, आत्मदंश भरे विपाक्त अहम् के भी अनेक रुद्ध-अतृप्त रूपों का गर्जन-तर्जन भाव वोध के क्षितिज को धुवला वनाता हुआ, विपाद की घटा की तरह उमडता दृष्टिगत होता है। किन्तु नई कविता में छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद का सर्वांगीण संयोजन न मिलने के कारण वह इनकी शारद परिणति या प्रतिनिधि नही कही जा सकती। नए कवि के स्वर में वौद्धिकता तथा वैज्ञानिक यथार्थ के प्रति आकर्पण अथवा आस्था भी मिलती है। इनके माध्यम से वह वैयक्तिक स्वातत्र्य को जीवन यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहता है। किन्तु आज के यान्त्रिक, भौतिक जीवन में स्वादहीन अवसाद को चीर कर उसकी रचनात्मक वुद्धि किसी व्यापक मानवीय सामाजिक वास्तविकता की तथा अधिक मानवीय वस्तुगत आदर्श की प्रतिष्ठा कर सकी है, अथवा उस दिशा की ओर अग्रसर हो रही है, ऐसा नही कहा जा सकता। उसके वैयक्तिक स्वातत्र्य की पुकार वहुत हद तक केवल उसकी अहता की पुकार अथवा युग के व्यक्ति की पुकार वन कर रह गई है। उसमें गतिशील रचनात्मक सामाजिक यथार्थ का कही लवलेश भी न होने के कारण वह आत्मरुचि तथा आत्मरति का द्योतक वन कर ही लगता है नि.शेप हो जाएगी। इस प्रकार आज की नई कविता की चेतना नई मानव रचना या विश्व निर्माण की सूचक न हो कर केवल वैयक्तिक स्तर पर सृजनशील तथा संवेदनशील वन कर भावना-भूमि से ऊपर, सच्ची वौद्धिक भूमि पर नही उठ सकी है—ऐसी वौद्धिक भूमि जिसमें भावी मानव सभ्यता या संस्कृति का सत्य निहित हो अथवा मनुष्यत्व के मूल्य निखर कर सामने आए हो। वह भावना भूमि से नीचे उतर कर उस जीवन यथार्थ की भूमि पर भी अपने चरण नही स्थापित कर सकी है, जिसमे सामाजिक संकल्प का घनत्व होने के कारण आगे वढने की सुविधा हो। वह केवल इन्द्रधनुप जड़े हुए मनोद्वेग के वाष्प पिंड की तरह अभिव्यक्ति की दृष्टि से, अधिक रंगीन, मोहक, सुन्दर, तथा स्वप्न वन कर रह गई है जिसमे प्रगति का सम्मोहन तो है, सौन्दर्य का सत्य भी है पर शिव का सत्य, लोक-मंगल तथा मानव का सत्य कही खोजने पर भी दृष्टिगोचर नही होता और मेरी दृष्टि मे यही उसकी सवसे वडी कमी है। फिर भी नई कविता की भविष्य में अनेक सम्भावनाएं हो सकनी है, और मै इस शुद्ध साहित्यिक धारा का हृदय से स्वागत करता हूं।

- इलाहावाद से प्रसारित



कथा में शिल्प

यशपाल

शिल्प का अर्थ विचारो के अनुसार रचना और निर्माण कर सकना है। शिल्प का प्रयोजन, उपयोगिता और सौन्दर्य दोनो की सृष्टि करना होता है। साधारण सुविधा के लिए शिल्प को उपयोगी शिल्प और ललित शिल्प, दो भागों में बाटा जा सकता है। ललित शिल्प का प्रयोजन प्रधानत. सौन्दर्य की सृष्टि करना अथवा प्रकृति में उपलब्ध सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित करना रहता है।

ललित शिल्प अथवा ललित कलाओ में चित्रकार और मूर्त्ति निर्माण के साथ साहित्य की भी गणना होती है। चित्रकला अथवा मूर्त्तिकला द्वारा सौन्दर्य का निर्माण किया जाता है, इस विषय में विवाद की गुजाइश नही है। चित्रकार अथवा मूर्त्तिकार कभी तो प्रकृति द्वारा सौन्दर्य की देन को चित्रित अथवा प्रतिबिम्बित कर देता है और कभी अपनी साधना के सौन्दर्य को। हिम शृंगों अथवा वसन्त की शोभा के चित्र इसी प्रयोजन को पूरा करते हैं। अत्यन्त सुन्दर शरीर को चित्र अथवा मूर्त्ति द्वारा समाज के लिए उपलब्ध कर देना है। चित्रकार अथवा मूर्त्तिकार भावो के सौन्दर्य को भी अंकित अथवा प्रस्तुत करते है। वीर रस, करुण रस अथवा शृंगार रस की अभिव्यक्ति करने वाली मूर्तिया अथवा चित्र इसी प्रयोजन को पूरा करते हैं।

चित्रकार और मूर्त्तिकार के शिल्प और कला का क्षेत्र और सीमा देखे जा सकने वाले सौन्दर्य ही हैं। चित्र अथवा मूर्ति-शिल्प इन सौन्दर्यों का कोई एक क्षण अथवा घूट ही प्रस्तुत कर सकते हैं। चित्र अथवा मूर्त्ति शिल्प द्वारा यदि करुण रस का प्रदर्शन करने के लिए कोई चित्र या मूर्त्ति बनाई जाए तो वह करुणा उत्पन्न करने वाले प्रसग के किसी क्षण-विशेष के दृश्य या भाव को ही व्यक्त कर सकेंगे, सम्पूर्ण प्रसग को नही। परन्तु सृष्टि और जीवन में सभी कुछ प्रवाह और परिवर्तनमय है। रूप-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य भी प्रवाहमय हैं। रूप और भाव के सौन्दर्य के प्रवाह को कोई एक चित्र अथवा मूर्त्ति समग्र रूप में प्रस्तुत नही कर सकते। उदाहरणत किसी सम्पूर्ण घटना अथवा व्यक्ति के जीवन को एक चित्र अथवा मूर्त्ति समग्र रूप में प्रस्तुत नही कर सकते, यह काम कथा के शिल्प द्वारा ही हो सकता है।

सौन्दर्य का प्रयोजन मानसिक सतोष दे सकना और मनुष्य के जीवन को सतुष्ट और विकासशील बनाना है तथा शिल्प का प्रयोजन सौन्दर्य की रचना अथवा अभिव्यक्ति है। सौन्दर्य का क्षेत्र स्थूल जगत में ही नही, भाव जगत में भी है और उससे आगे विचारो और आदर्शों के जगत में भी है उदाहरणत. सत्यनिष्ठा का सौन्दर्य, कर्तव्यपरायणता का सौन्दर्य, बन्धु-भावना का सौन्दर्य, नि स्वार्थ कर्म का सौन्दर्य। ये सौन्दर्य मनुष्य समाज की आत्मा के पोषक है। जीवन को सौन्दर्य, सतोष और सामर्थ्य देकर उन्नत करने वाली इन भावनाओं को स्वयं अनुभव करके अथवा ग्रहण करके अपनी कल्पना द्वारा सबल और प्रभावशाली बना कर फिर समाज को देना कथा-शिल्प का प्रयोजन और कार्य है।

मानव समाज के आदर्शों और मान्यताओं की घोषणा कर देना एक काम है। यह काम स्मृतिकार या समाज के लिए नैतिकता की मान्यताओं को निश्चित करने वाले करते हैं, परन्तु इन मान्यताओं को विश्वास योग्य और रुचिकर ढंग से समाज के जीवन के लिए व्यवहार्य प्रमाणित कर देना कथा शिल्पी का ही काम है।

रामचरित मानस की रचना करते समय तुलसीदास जी का प्रयोजन मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श द्वारा मानव समाज के लिए मर्यादाओं को उपस्थित करना था। तुलसीदास जी के विश्वास मे राम साधारण मनुष्य नही, भगवान थे और सीता भी मर्त्यलोक की साधारण नारी नही, सृष्टि की आदि शक्ति थी। परन्तु तुलसीदास मानव समाज के लिए व्यवहार्य मर्यादाओं को उपस्थित करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने कल्पना से उन मर्यादाओं का आचरण करने वाले राम और सीता को मर्त्यलोक के नर-नारियो जैसा रूप दिया। यह जानते हुए भी कि भगवान और आदि शक्ति भ्रम और दुख के बन्धनो में नही फस सकते थे, तुलसीदास जी ने मनुष्यो द्वारा मर्यादाओं के आचरण का उदाहरण दे सकने के लिए राम और सीता को भ्रम से भटके और दुख से विभोर नर-नारी के रूप में दिखाना भी आवश्यक समझा। यही कथा-शिल्प का आदर्श समझा जा सकता है।

किसी भी वस्तु के शिल्प को समझने के लिए सीधा उपाय यह हो सकता है, कि उसकी निर्माण प्रक्रिया का परिचय पाया जाए। सम्भव हो सके तो उस वस्तु का अग विच्छेद करके अथवा उसे उधेड कर उसके निर्माण और प्रक्रिया को समझ लिया जाए।

कथा-साहित्य की पाठ्य पुस्तको के अनुसार कथा अथवा कहानी के छः तत्व हैं। एक कथा वस्तु, दूसरा पात्र तथा उनका चरित्र-चित्रण, तीसरा भाषा या शैली, चौथा पूरक घटनाए, पाचवा वार्ता, और छठा परिस्थितिया। इन छः तत्वो के समीचीन समन्वय से कथा का निर्माण होता है। इन तत्वो के समीचीन समन्वय अथवा कथा-शिल्प की सफलता की कसौटी यह मानी जा सकती है कि जो घटना गढ़ी जाए वह पाठक या श्रोता का पूर्ण विश्वास पाकर उसे अभिभूत कर ले। इनमें से प्रत्येक तत्व का प्रयोग इस ढग से होना चाहिए कि कहानी पाठक का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर सके।

कथावस्तु या घटना कलाकार की अपनी देखी-सुनी भी हो सकती है और नितान्त कल्पित भी। घटना की कल्पना किसी सत्य का व्यावहारिक रूप प्रकट करने के लिए अथवा किसी मान्यता का विश्लेषण करने के लिए भी की जा सकती है। किन्तु यदि इस प्रकार की कल्पना की जाए तो वह कल्पना नितान्त व्यावहारिक होनी चाहिए। घटना को विश्वास योग्य बना सकने के लिए पात्रो की सृष्टि भी घटना विशेष के अनुकूल ही होनी चाहिए, अर्थात् उनका चरित्र इस प्रकार चित्रित किया जाना चाहिए कि वे सजीव जान पड़ें और उनसे उस प्रकार के व्यवहार की आशा की जा सके।

भाषा और शैली चरित्र के विकास में सहायक अथवा चित्रण के पूरक अंग होते है। इसलिए कहानी में भाषा का प्रयोग प्रसग के अनुकूल और पात्र के भी अनुकूल होना चाहिए। उदाहरणत. मन्दिर के पुजारी की भाषा और अभिव्यक्ति, बोलचाल में उसके मुहावरे एक प्रकार के होगे। वह विशेष प्रकार की उपमाओं का प्रयोग करेगा और एक लोहार की अभिव्यक्ति की शैली दूसरी ही प्रकार की होगी। वह दूसरी ही प्रकार की उपमाओं का प्रयोग करेगा।

पूरक घटनाए यद्यपि कहानी के मुख्य ढाचे के साथ उसे भरने के लिए लगाई जाती है, परन्तु उनका महत्व बहुत अधिक होता है। वही वास्तव में पात्रो के चरित्र का विकास

करती है और कहानी को पाठको और श्रोताओ के विश्वास में गहरा बैठा सकती है। उदाहरण के लिए रामचरितमानस में सीता के चरित्र से इस प्रकार की एक घटना को लीजिए। राम, लक्ष्मण और सीता मार्ग पर चले जा रहे थे। उन्हें देख कर ग्राम-वन्धुओ को कौतूहल हो रहा था, परन्तु उस कौतूहल के कारण ग्राम-वन्धुओ ने राम-लक्ष्मण से नही सीता से ही प्रश्न किया कि ये श्यामवर्ण भव्य-दर्शन पुरुष कौन है। सीता ने कटाक्ष से मुसकरा कर लक्ष्मण की ओर सकेत कर बताया कि ये मेरे देवर है और जो आगे चल रहे है, वे इनके भाई है।

उपर्युक्त प्रसंग का जीवन की मर्यादाओ से कोई सम्पर्क नही है, परन्तु यह पूरक घटना और इसका अत्यन्त हृदय-ग्राही और यथार्थ चित्रण पाठक को विश्वास के सूत्रो से जकड लेता है और कथा की पृष्ठभूमि में समाज के व्यवहार का पूरा प्रतिविम्ब भी उपस्थित कर देता है।

कथा में वार्ता का प्रयोजन कथा में गति देने के लिए और कथा के प्रयोजन को प्रकट करने के लिए होता है। रामचरितमानस का अधिकाश भाग वार्ता ही है। वार्ता में यथार्थ की रक्षा के लिए शिल्पी को वहुत सावधान रहना आवश्यक है।

परिस्थितिया कहानी का आधार होती है, जिन पर कहानी को स्थापित किया जाता है। उसके विना कहानी वैसे ही गिर पड़ेगी जैसे विना जड़ का वृक्ष खडा नही रह सकता।

कथा-शिल्प में और भी महत्वपूर्ण बातें रहती है जैसे कहानी का शीर्षक। शीर्षक द्वारा पाठक का कथा से पहला सम्पर्क होता है। यदि शीर्षक पाठक का कौतूहल जगा सकता है, तो वही कहानी की सफलता का आरम्भ हो जाता है। इसके पश्चात कहानी का आरम्भ भी इस प्रकार का होना चाहिए कि पहले कुछ शब्द ही पाठक की रुचि को बांध लें। इसके लिए कोई एक ही विधि नही वताई जा सकती। यह शिल्पी के अपने चुनाव पर निर्भर करता है। अन्त के विषय में भी कहना आवश्यक है कि वह इस प्रकार घटे कि पाठक पर अपनी गहरी छाप छोड़ दे। प्राय ही यह समझा जाता है कि अन्त का आभास पाठक का कौतूहल जागरित रखने के लिए समाप्ति से पूर्व न हो सके। बहुत हद तक यह वात ठीक है, परन्तु शिल्पी अपने चातुर्य से जाने हुए अन्त में भी ऐसा भावोद्रेक उत्पन्न कर सकता है कि पाठक के मन में उत्पन्न हो चुकी भावना एक बार और अधिक उद्दीप्त हो जाए।

एक प्रश्न यह है कि कहानी की श्रेष्ठता की कसौटी क्या होनी चाहिए? कहानी की श्रेष्ठता उससे प्राप्त होने वाले उपदेश या आदर्श से आकी जानी चाहिए अथवा उसके निर्वाह और शिल्प चातुर्य से। इसका उत्तर स्पष्ट है। कहानी का प्रयोजन केवल नैतिक मान्यताओ की घोषणा करना नही है, वल्कि रसोद्रेक द्वारा नैतिकता और मान्यता को ग्राह्य रूप में उपस्थित करना है। इसलिए प्रेमचन्द जी की दो कहानियो 'नमक का दारोगा' और 'कफन' में से कला की दृष्टि से 'कफन' को ही मान्यता दी जाती है। वह कहानी केवल दलित मानव का चित्रण होने पर भी अत्यन्त प्रिय हुई है। अनेक भाषाओ में उसका अनुवाद हो जाना इसका प्रमाण है।

कुछ लेखक प्रेरणा को वहुत महत्व देते है। यदि प्रेरणा का विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया जाए तो उसे हम कथाकार या कथा-शिल्पी की अपनी अनुभूति कहेंगे, जो उसमें अभिव्यक्ति के लिए इच्छा और स्फूर्ति उत्पन्न करती है। ऐसी प्रेरणा के लिए समाज के

जीवन और समस्याओ के प्रति जागरूक रहना आवश्यक है। परन्तु प्रेरणा से अभिव्यक्ति की इच्छा और उसके लिए स्फुरण उत्पन्न हो जाने से ही कहानी नही बन जाती। उसके लिए एक प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, जिसे अभिव्यक्ति का शिल्प कहा जा सकता है। यह शिल्प साधना और अभ्यास के बिना पूर्ण और परिष्कृत नही हो सकता।

—इंदौर से प्रसारित



बुनियादें और दूसरी मंज़िल

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

खारी बावली दिल्ली में भूतपूर्व पोस्ट मास्टर लाला हुकूमतराय चले जा रहे थे, कि आगे से अचानक उनके बचपन के साथी पडित वीरभान मिल गए। बरसो बीत गए थे उन्हे मिले हुए। दोनो बड़े तपाक से आलिंगनबद्ध हो कर मिले। जब अलग हुए और दोनो की सास कुछ दुरुस्त हुई तो लाला जी ने पूछा—सुनाओ पंडित, आजकल कहा कयाम है। दिल्ली में कैसे ?

—हम तो यही रहते है।

—यही कहा ?

—खारी बावली में ?

—खारी बावली में, कहां ?

—अनार की गली मे।

—अनार की गली में किस मकान में ?

—सेठ बनवारीलाल के मकान में।

—बनवारीलाल के मकान में !—सहम कर पडित जी ने पूछा।

—क्यो, उसमे क्या बात है ?

—हम उसी में रहते थे—लाला जी ने कहा।

—अच्छा, फिर क्या हुआ ?

—उसकी बुनियादें ही गली हुई है।

पंडित वीरभान ने सुख की सांस ली, बोले—कोई बात नही, हम ऊपर की मंज़िल में रहते है।

—इलाहाबाद से प्रसारित

तारे, उनकी उत्पत्ति, भेद तथा गतियां

डा० सम्पूर्णानन्द

सूर्यके साथ तारो की सजातीयता का स्पष्ट ज्ञान पुराने ज़माने में लोगो को नही था। अशिक्षित लोगो के लिए तो तारे छोटे-छोटे चमकीले विन्दु है, जो आकाश में जडे हुए है। अशिक्षित ही नहीं बहुत दिनो तक शिक्षित लोग भी ऐसा ही मानते थे। भारतीय ज्योतिषियों ने कोई स्पष्ट मत नही प्रकट किया, यद्यपि उनकी ऐसी धारणा प्रतीत होती है कि तारे भी चन्द्रमा की तरह पिंड है। तारो की दूरी के सम्वन्ध में भी उन्होने जो अटकल लगाए है, वे वास्तविकता से वहुत दूर है।

तारों को संस्कृत में नक्षत्र भी कहते है जैसा कि ग्रहो के सम्वन्ध में कहा जा चुका है। ग्रह और नक्षत्र में एक वडा अन्तर यह है कि ग्रह घूमते रहते है और नक्षत्र अपनी जगह नहीं वदलते। यह तो वरावर ही देख पडता है कि नक्षत्र पूर्व मे उदय होते हैं और पश्चिम में जाकर डूवते है। उनके उदय होने का समय भी वदलता रहता है। कुछ नक्षत्र कुछ दिनो तक देख नही पडते। इन सव वातो के होते हुए भी नक्षत्रो को अचल कहने का अर्थ यह हुआ कि उनकी ये सव गतिया असली नही है, वल्कि पृथ्वी की गति के कारण उन पर आरोपित हो जाती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है, इसलिए नक्षत्र पूर्व से उदय हो कर पश्चिम की ओर डूवते देख पडते हैं। साधारणत ऐसा माना जाता है कि अपनी धुरी पर घूमने में पृथ्वी को २४ घण्टे लगते है। वास्तविक काल २३ घण्टा ५६ मिनट है। इसलिए प्रत्येक नक्षत्र रोज पहले दिन से चार मिनट पहले उदित होता है। यह नित्य के चार मिनट जुडते-जुडते घण्टो का रुप ले लेते है। इसी तरह पृथ्वी जव सूर्य की परिक्रमा करती है, तो अपनी यात्रा में कुछ नक्षत्रों को पीछे छोड़ देती है और कुछ जो आख से ओझल थे, सामने आ जाते हैं। वस इसके सिवा नक्षत्र गतिहीन प्रतीत होते है। जो नक्षत्र जिस नक्षत्र से जितनी दूरी पर और जिस दिशा में आज देख पडता है, आज से कई हज़ार वर्ष पहले भी वही था और दस हज़ार वर्ष वाद भी वही रहेगा—लोगो की साधारणत यही धारणा थी, परन्तु अव यह स्पष्ट हो गया है कि यह धारणा भ्रान्त थी। नक्षत्र भी गतिमान है और उनकी गतिया भी काफी तेज़ हैं। परन्तु उनकी दूरी इतनी अधिक है कि वहुत दिनो में गति का पता लगता है। आज से दस-पन्द्रह हज़ार वर्ष वाद का ज्योतिषी यदि आज के वने हुए आकाश के नक्शे से अपने समय के आकाश-चित्र को मिला सकेगा तो उसको कई जगह अन्तर देख पड़ेगा। तारो की दूरी के कारण ही वह हमको प्रकाश के विन्दु जैसे छोटे देख पड़ते हैं। इस समय तक की जानकारी के आधार पर ऐसा विदित होता है कि आल्फा सेन्टोरी नाम का नक्षत्र हमारा शायद सवसे निकट पड़ोसी है। उसका प्रकाश हमारे पास लगभग ३।। ज्योति वर्ष में आता है। इससे उसकी दूरी का हिसाव लगाया जा सकता है। यह स्मरण रहे कि सूर्य का प्रकाश साढे आठ मिनट में पृथ्वी पर पहुंच जाता है।

आज की खोजो से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक तारा एक सूर्य है। सभी तारों का आकार बराबर नही है और न सबका रंग एक सा है। हमारे सूर्य की गिनती छोटी आकृति के तारो में है। उस वर्ग को वामन वर्ग, बौनो का वर्ग कहते है। हमारे सूर्य का रग पीत प्रधान है। बहुत से तारे लाल, नीले और श्वेत रंग के होते हैं। बहुत से तारे हमारे सूर्य से बड़े है। जिस तारे को आर्द्रा (Betelgeuse) कहते है, वह सूर्य से चार सौ गुणा बडा है। इन तारों के साथ ही ग्रह भी हो सकते है, पर स्वयं तारे इतने छोटे देख पड़ते है तो ग्रहों के देख पड़ने की क्या सम्भावना हो सकती है।

साधारण मनुष्य के लिए तो सूर्य दहकती आग का गोला है और यदि तारे भी सूर्य के समान है तो वह भी अग्नि-पिंड ही होगे। परन्तु आग शब्द कह देना पर्याप्त नहीं है। जिसको हम आग कहते हैं, वह कई प्रकार के गैसो का मिश्रण है। इन गैसो के बीच मे बहुत छोटे-छोटे ठोस कण भी है, जो ऊंचे तापमान के कारण चमकने लगते हैं। यह अनुमान हो सकता है कि सूर्य और दूसरे तारो में भी इस प्रकार की गर्म गैसें होगी। इस अनुमान की पुष्टि रश्मिविश्लेषक यन्त्र (स्पेक्ट्रोस्कोप) के द्वारा होती है। इस यन्त्र की रचना और इसके काम करने के ढंग को समझाने में बहुत समय लगेगा। यहां पर इतना ही कहा जा सकता है कि यदि इसके भीतर से होकर प्रकाश की किरणें आंख तक पहुंचें, तो यह बतलाया जा सकता है कि जहां से ये किरणें आती है, वहा कौन-कौन से द्रव्य उपस्थित हैं। इस प्रकार हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फासफोरस, सोडियम, पुटेशियम, सोना, कारबन, लोहा, पारा आदि के सूर्य पर अस्तित्व का पता चलता है। तारो से आए हुए प्रकाश का विश्लेषण भी यही बात बतलाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो तत्व पृथ्वी पर मिलते है, वही सूर्य और दूसरे तारों में भी मिलते है। तारों का तापमान इतना ऊंचा है कि उस गर्मी में वह पदार्थ, जो पृथ्वी पर ठोस रूप में पाया जाता है, गैस बन जाता है। सूर्य का तापमान ६ और ७ हजार डिग्री सेन्टीग्रेड है। सेन्टीग्रेड ताप नापने की उस शैली को कहते है, जिसके अनुसार बरफ का तापमान शून्य और उबलते जल का सौ माना जाता है। इन दोनों के बीच सौ विभाग होते है।

मैंने अभी कुछ देर पहले कहा था कि तारे कई रंग के होते है। ये रंग केवल उनकी शोभा बढाने के लिए नही दिए गए, बल्कि उनसे तारे की उम्र का कुछ पता चलता है। यदि हम धातु के किसी पिंड को गर्म करना आरम्भ करें, तो पहले उसका रंग लाल होगा, फिर क्रमशः पूरा श्वेत हो जाएगा, और वह इसके उलटे क्रम से ठंडा होगा। पूर्णतया ठंडा होने के पहले उसका रंग लाल होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन तारो का रंग बिलकुल श्वेत है, वे नक्षत्र परिवार में अपनी पूरी जवानी पर हैं। इनमें जिस किसी में हाइड्रोजन गैस का आधिक्य है, उसके रग में नीलापन होता है। सम्भवतः इन तारो में हाइड्रोजन और हीलियम जैसी हलकी गैस अधिक मात्रा में होगी। इसके बाद पीले तारे आते है, जिनमें हमारा सूर्य भी है। इनकी अवस्था ढल चली है। इनमें पतली गैस भी है, परन्तु भारी पदार्थ जैसे धातु भी गैस रूप से वर्तमान है। इसके बाद लाल रंग के तारे आते हैं, जिनको बूढ़े तारे कह सकते है। इनमें हलकी गैस कम है और प्राय. भारी पदार्थो का ही आधिक्य है। बहुत से ऐसे तारे भी है, जो एकदम काले है। साधारणतः वह देख नही पड़ते और हमको इनका ज्ञान नही हो सकता। परन्तु कुछ अवस्थाओ में हमको काले तारो का, जो सम्भवतः मृत तारे है, पता लगता है।

कुछ तारे, जैसे हमारा सूर्य, तो अकेले रहते हैं, परन्तु तारों के ऐसे पुंज भी हैं जो

एक-दूसरे के चारो ओर उसी प्रकार घूमते रहते हैं, जिस प्रकार उपग्रह ग्रह के चारो ओर घूमता है। कही दो और कही दो से अधिक तारो के इस प्रकार के भी कुछ गुच्छे होते हैं। किसी-किसी गुच्छे में तो तारो के अलग-अलग रंग होते हैं। यदि उनमें से किसी के साथ कोई ऐसा ग्रह होगा जिस पर मनुष्य जैसे प्राणी रहते होंगे तो उनको बड़े सुन्दर दृश्य देख पड़ते होंगे। उनके आकाश में कभी एक सूर्य और कभी अनेक रंगो के एक से अधिक सूर्य देख पड़ते होंगे, अस्तु। कभी-कभी किसी दो तारो वाले गुच्छे में से एक नक्षत्र रंगहीन होता है। वह नियत समय पर घूमता-घूमता अपने साथी के सामने आ जाता है और उसको थोडी देर के लिए ढक देता है। इस प्रकार ऐसे तारो के अस्तित्व का परिचय मिलता है। अस्तित्व ही नही उनके आकार, तौल और गति की भी गणना कर ली जाती है। कभी-कभी कोई काला सूर्य आकाश में घूमता हुआ बिखरे हुए रजकणो से टकरा जाता है। ऐसी दशा में थोड़ी देर के लिए उसका तापमान बढ जाता है और वह चमकने लगता है। ऐसे तारो को नवीन (Novae) कहते हैं।

सूर्य ही से पृथ्वी पर और यदि किसी अन्य ग्रह पर प्राणी हो तो उस पर भी, शक्ति की वह धारा आती है, जिससे सारे काम होते हैं। इस शक्ति के सैकडो रूप हैं, परन्तु क्या भौतिक और क्या बौद्धिक जगत में यदि सूर्य से शक्ति की अजस्र धारा थोडी देर के लिए भी रुक जाए तो प्राणिमात्र के लिए भयानक दुरवस्था उत्पन्न हो जाए। इसी से वेदो में कहा गया है कि 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। सूर्य सभी स्थावर-जगम पदार्थों में आत्मा की तरह है। बहुधा यह प्रश्न उठता है कि जब सूर्य करोडो वर्षों से शक्ति चारो ओर बिखेर रहा है तो अब तक वह रिक्त क्यों नही हुआ। कितना भी बडा भडार क्यो न हो, यदि उसमें से बराबर व्यय होता रहे, तो एक दिन उसे खाली हो ही जाना चाहिए। यह बात ठीक है, परन्तु यदि भंडार में बीच-बीच में कुछ पड़ता रहे तो खाली होने की नौबत बहुत दिन में आएगी। सूर्य अपने शक्ति भडार में से जहा व्यय करता है वहा कुछ न कुछ सग्रह भी करता है। उसमें वह दोनो क्रियाए होती रहती है, जो परमाणु बम और हाइड्रोजन बम में होती है। इनमें से एक को विभाजन और दूसरी को सयोजन कहते हैं। परमाणु बम में पहली क्रिया होती है। उदाहरण के लिए, हाइड्रोजन के परमाणु में धन विद्युत से युक्त कण के चारो ओर ऋण विद्युत युक्त कण घूमता रहता है। यदि किसी प्रकार यह बाहर वाला कण भीतर वाले कण से अलग कर दिया जाए तो परमाणु टूट जाएगा और उसके साथ ही बहुत सी शक्ति उपलब्ध होगी जिससे चाहे शातिकालीन सेवाए कराई जाए चाहे युद्ध करने के लिए सामान तैयार कराया जाए। इसके विपरीत यदि दो परमाणुओ को एक दूसरे से इस प्रकार मिलाया जा सके कि उनके भीतर वाले धन विद्युत कण एक हो जाए तो नया रासायनिक तत्व बन जाएगा। इस अवस्था में भी बहुत सी विद्युत् शक्ति मिल जाएगी। यदि चार हाइड्रोजन परमाणुओ के भीतरी कण मिल जाए तो हीलियम का भीतरी कण बन जाएगा। इस नए द्रव्य के बनने के साथ-साथ जो बहुत सी शक्ति उन्मुक्त होगी, उससे चाहे जो काम लिया जाए। अभी तक तो वे राष्ट्र, जिनमें इस प्रकार के प्रयोग करने की क्षमता है, उसका उपयोग युद्ध में ही करना चाहते हैं। इतना स्मरण रखना चाहिए कि इस समय रसायन शास्त्र को लगभग सौ तत्वो का ज्ञान है। इनमें से किसी भी तत्व के परमाणु उचित उपायो से काम ले कर विभक्त किए जा सकते हैं और नीचे के किसी भी तत्व के परमाणुओ से सयोजन क्रिया के द्वारा अधिक भारी तत्व बन सकते है। अभी मनुष्य की शक्ति सीमित है। तत्व से तत्वांतर की सृष्टि करने के लिए

जो साधन चाहिए वे पूरी तौर से जुट नही सके है, फिर भी उस मार्ग पर यात्रा आरम्भ हो गई है। विभाजन क्रिया से परमाणु बम में यूरेनियम के परमाणु का विभाजन किया जाता है।

जैसा कि मैंने अभी कहा है, सूर्य में दोनो प्रकार की क्रियाए होती रहती हैं। उसके प्रचड तापमान के कारण एक ओर तो परमाणु टूटते रहते है, दूसरी ओर नए परमाणु बनते रहते हैं। दोनो क्रियाओ के साथ-साथ शक्ति का उन्मोच होता है। इस तरह सूर्य की शक्ति नष्ट नही होने पाती। यह ठीक है कि यह सब होते हुए भी सूर्य एक दिन वृद्ध और फिर निष्प्राण होता हुआ नि शक्त हो सकता है। पर इसको अभी बहुत दिन हैं। कम से कम २० करोड़ वर्षों से सूर्य इसी प्रकार शक्ति बिखेरता चला आ रहा है। ऐसा मानना चाहिए कि जो बात सूर्य की है, वही दूसरे तारो में भी पाई जाती होगी।

मैंने नक्षत्रो की गति का ऊपर चर्चा किया। नक्षत्र होने के कारण हमारा सूर्य भी गतिमान है। वह आकाश में अपने सारे ग्रह, उपग्रह रूपी परिवार को लिए बढता चला जा रहा है। इस समय वह जिस दिशा में चल रहा है, उसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वह अभिजित नक्षत्र की तरफ जा रहा है। सूर्य किधर जा रहा है इसके जानने के जो उपाय है, उनमें से एक बहुत रोचक है और उसका समझना भी औरो की अपेक्षा बहुत-कुछ सुगम है। उसमें जो सिद्धान्त निहित है, उसको डोपलर का सिद्धान्त (Doppler's Principle) कहते है। यदि आप कही बहुत से मनुष्यो की भीड मे पड गए हो, तो जिधर की तरफ आप आगे बढ़ते होगे उधर की भीड छटती सी मालूम होगी और इसके साथ ही साथ आपके पीछे की तरफ भीड़ धनीभूत सी होती प्रतीत होगी। यही बात आकाश के बारे मे लागू है। सूर्य के साथ जिस दिशा में हम बढ रहे है, उधर के तारे कुछ छटते से प्रतीत होते है और पीछे के तारे एक दूसरे के पास आते प्रतीत होते है। इस बात को हम विभिन्न कालो मे बने आकाश चित्रो को मिलाने से देख सकते हैं। इतना तो स्पष्ट ही है कि यदि चित्रो में सैकड़ों वर्षों का अन्तर होगा, तभी कुछ फर्क प्रतीत होगा। जिस प्रकार सूर्य चल रहा है, उसी प्रकार और तारे भी चल रहे है।

हमारा सूर्य आकाश गंगा में है। पहले तो ज्योतिषी ऐसा समझते थे कि वह आकाश गंगा में मध्य बिन्दु के पास है, परन्तु अब यह धारणा जाती रही है। आजकल ऐसा माना जाता है कि आकाश गगा का केन्द्र-स्थान धनु राशि के बीच में है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य आदि सभी तारे इस बिन्दु की परिक्रमा कर रहे है। मनुष्य को इस बात का स्वप्न में भी अन्दाजा नही होता कि वह कितना और किधर चल रहा है। वह अपनी उसी गति से परिचित है, जो उसकी या समाज की इच्छा पर निर्भर है। पर अब हम यह जानते हैं कि वह पृथ्वी पर बैठा सूर्य के चारो ओर घूम रहा है। सूर्य के साथ-साथ अभिजित की दिशा में वह मुह किए एक बड़ा वृत्त बना रहा है, जिसका केन्द्र सम्भवत कही धनुराशि में है। धनुराशि स्वयं आकाश गगा में है। आकाश गगा अपनी धुरी पर घूम रही है तो फिर मनुष्य भी उसके साथ उस धुरी पर घूम रहा है। यहा तक तो अब निश्चित ही है, परन्तु क्या आकाश गगा आकाश में अचल और स्थिर है ? इस प्रश्न का उत्तर किसी अगले व्याख्यान में होगा, परन्तु इतने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य इस बात का कोई अन्दाजा नही कर सकता, कि वह आज कहा है और कल कहां रहेगा। स्वय आकाश गंगा की आकृति अण्डाकार तश्तरी जैसी है।

सूर्य से हमको गर्मी और प्रकाश की उपलब्धि होती है, उस प्रकार की शक्ति की लहरिया भी आती है जिनको इलेक्ट्रो मैगनेटिक कहते है। इनका मुख्य रूप विद्युत

है । परन्तु हमारे पास कोई ऐसी इन्द्रिय नही है जिससे हमको इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो सके। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य का भीतरी हिस्सा ठोस और काला-सा है। उसके ऊपर वे उद्दीप्त आवरण है, जिनमें से हर प्रकार की रश्मिया हमारे पास तक पहुचती है । कभी-कभी यह आवरण कही-कही से हट जाता है। उस समय उसमें गड्ढे से पड़ जाते हैं, जिनके भीतर मे सूर्य का भीतरी भाग देख पडता है । ऐसे काले धब्बे लगभग २५ दिन में सूर्य की परिक्रमा करते हैं क्योकि सूर्य, अपनी धुरी पर २५ दिन में घूमता है । हर बारहवें वर्ष धब्बो की संख्या बहुत बढ़ जाती है । धब्बो के घटने-बढ़ने पर पृथ्वी पर बहुत प्रभाव पड़ता है, जिसका कुछ अन्दाजा विद्युत के बारीक यन्त्रो से किया जा सकता है। सम्भवत: ऐसी बातें दूसरे तारो में भी होती होंगी।

अभी तक मैंने तारो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ नही कहा । ग्रहो की चर्चा करते हुए मैंने लाप्लास के मत का जिक्र किया था। उन्होंने तारो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, किसी न किसी रूप मे वह बात अब तक मानी जाती रही है। आकाश व्यापी गैस और रजकणो से ही तारे बने होंगे। आज भी जहा हम एक ओर लाल तारो के रूप में सम्भवत: कुछ तारों को ढलते देख रहे है, वही दूसरी ओर कुछ जगहो में गैस और कणो के घनीभूत होने के भी प्रमाण पाते है, जिसका अर्थ यह हुआ कि हम नए तारो, नए सूर्यो की उत्पत्ति के दृश्यो के भी साक्षी है।

—लखनऊ से प्रसारित



वीतराग का गीत

अजित कुमार

इस अत्यन्त व्यवस्थित मन मे
कोई भी उलझाव नही ।
कोई जटिल समस्या घेरे हुए नही,
कोई दिग्भ्रम का भाव नही ।
एक लकीर पकड़ ली,
उस पर चलते-चलते-चलते हैं,
नही किसी से जलते,
अपने सीधे-सादे रहते,
छलते नहीं किसी को,
कल्पित दुख से गलते नही
दयावश नही पिघलते हैं ।
हसते है तो संयत हो कर,
रोने का प्रसंग ही क्या ?
मद-मद मुस्काते है,
मुह ही मुह में हम गाते हैं,
रंग जमाए रखते है,
इसके अतिरिक्त ढंग भी क्या ?
ऐसा कुछ भी प्राप्य कहां था,
जिसे न पाते मर जाते ।
जीते रहे मज़े से अपने ।
सुख की मदिरा पीते-पीते
छकते रहे ।
बहक कर अकसर बकते रहे ।
और फिर अपने हाथों
अपने मुख को सीते रहे ।
कभी—बहकते होंगे—

अब तो 'सोबर' है ।
कभी चहकते होंगे,
उड़ते-मुड़ते,
और बिछुड़ते होंगे—शायद—
अब तो—
खिन्न नही, उद्विग्न नही,
औरों से कुछ भी भिन्न नही ।
हम पूरमपट्ट बरोबर हैं ।
हिमगिरि की ऊंचाई से ज्यादा ऊंचे हम,
सागर से भी गहरे है :
इस भ्रम मे रखना सबको
कुछ दिन की खातिर सभव था ।
पर उसके बाद ?
स्वयं हम अपनी कल्पित ऊचाई-गहराई से अभिभत हुए ।
फलतः
थे जहा
वहीं पर ठहरे है ।
सभी विवादो-प्रतिवादो के प्रति
हम लगभग बहरे हैं ।
राग नही, अनुराग नही,
इस चित्र-विचित्र जगत में अपना कोई, कुछ भी भाग नही ।
सबको अस्वीकृत करते,
बदले में अस्वीकृत होते ।
अर्जित करते नही, पास जो था निर्मम हो कर खोते ।
अस्फुट स्वर मे कभी-कभी हम अपने से ही कहते हैं—
चिनगारी तो थी, पर उससे
ढेर राख के जीत गए;
बीत रहा यो तो कुछ अब भी,
दिन थे कुछ जो बीत गए,
एक गीत था,
उसको गा कर नही,
भुला कर, बिसरा कर
हम रीत गए !

—इलाहाबाद से प्रसारि

हक-हलाल

मोहन राकेश

दो वर्ष पहले सितम्बर के महीने की ही बात है, मैं सायंकाल घर लौट कर आया तो देखा कि एक पहाडी युवती वहां घास काट रही है। उसकी आयु अट्ठारह से पच्चीस के बीच कुछ भी हो सकती थी। उसने कमीज़ की बाहें कुहनियो के ऊपर तक उठा रखी थी और शलवार पिंडलियो से ऊपर तक। गोरे मास के उन स्वस्थ युवा पिण्डों में निर्माण का कुछ ऐसा कौशल था कि क्षण भर के लिए किसी भी दृश्य में आस्तिकता का उदय हो जाता। उसने सिर पर अपने रंगीन दोपट्टे को पटके की तरह बाध रखा था। उसे पास से देख कर मुझे कुछ वैसा ही रोमांच हुआ जैसा भरी हुई नदी के तट पर से उसके मन्थर प्रवाह को देख कर होता है।

वह घास के साथ-साथ उलझे हुए फूलो को भी काट कर घास के ढेर में फेंकती जा रही थी।

—इन फूलों को क्यों काट रही हो?—मैंने उसके निकट रुक कर उससे पूछा।

—पण्डित ने कहा था कि आपने कहा है—बात कहते हुए उसके चेहरे का भाव कुछ बदला, यद्यपि उसकी आखो के भाव में अन्तर नहीं आया।

—मैंने उससे कहा है?—मैंने कुछ आश्चर्य के साथ पूछा।

—हां, उसने कहा था कि साहब ने कहा है—उसने स्वर में अधिक दृढ़ता लाकर उत्तर दिया।

—तुम पडित की... .

—मैं उसके घर से हू—कहते-कहते उसके चेहरे पर अनायास हल्की सी मुसकराहट आ गई। परन्तु तुरन्त ही मुसकराहट का स्थान गम्भीरता की रेखाओ ने ले लिया।

—गुलेरी साहब ने उससे कहा होगा—कह कर मैं आगे चल दिया।

—उन्होंने कहा होगा—उसने पीछे से कहा और पुनः अपने कार्य में व्यस्त हो गई।

गुलेरी साहब कोठी के दूसरे भाग में रहते हैं। वह गणित के अध्यापक हैं। उनकी आकृति के साथ उनके जगह-जगह से उघड़े हुए सूट और सूट के साथ फटे हुए जूते का सामजस्य देख कर अनायास याद हो आता है—ए इज़ इक्वल टु बी एण्ड बी इज़ इक्वल टु सी, देयरफोर ए इज़ इक्वल टु सी। गुलेरी साहब स्वभाव से उपयोगितावादी हैं। उन्हे सम्भवत कोठी में उतने ही फूलों का उगना पसन्द है, जितने प्रतिदिन फूलदानो में लगाए जा सकते हैं।

अब पडित जी की पत्नी कोठी में घास काटती दिखाई दे जाया करती। वह उसी तरह पटका बाधे और कमीज़ की बाहें ऊपर चढाए अपना काम किया करती थी। कभी-कभी वह खुले स्वर में कोई पहाड़ी गीत भी गाया करती थी। एक बार मैंने उसे सामने की पहाड़ी से उतर कर कोठी की ओर आते देखा।

और उसी समय मैंने पडित को भी सामने से आते देखा । मुझ से दो-तीन फुट क अन्तर पर जाकर वह जैसे चौंक कर मुसकराया और फिर हाथ जोड़ कर आगे वढ़ गया । चश्मा लगा रहने पर भी वह शायद दूर से व्यक्ति को नही पहचान सकता था। कुछ आगे जाकर उसने उसी तरह चौंक कर अपनी पत्नी को देखा और अखवारो का वण्डल अपनी ढीली वाह में सभाले हुए उससे वात करने लगा।

कुछ महीने वीत गए । वरसात के दिन थे। हल्के-हल्के वादल घाटियो में भरे थे। स्टोव पर केतली रख कर मै खिडकी के पास जा वैठा। वाहर नन्हे-नन्हे ओले पडने लगे। ऊपर टीन की छत पर ओलो के गिरने की एकतार ध्वनि वातावरण में एक उद्धत रोमाचक संगीत भर रही थी।

केतली में पानी खौल गया, तो मैंने उठ कर अपने लिए काफी की एक प्याली वनाई। प्याली मेज़ पर रख कर मैंने खिड़की के नीचे फर्श की ओर देखा, जहा पडित अखवार डाल जाया करता था । अखवार वहा नही था। वैसे तो पडित प्राय॰ रोज ही अखवार देर से देने आता था, पर इतनी देर कभी नही होती थी । मै वैठ कर काफी के घूट भरने लगा। फिर मैंने पढने के लिए दास्ताएवस्की का उपन्यास 'ब्रदर्स कैरेमेजाफ' उठा लिया, जिसके डेढ-दो सौ पृष्ठ पढने शेष थे।

कुछ देर वाद अंधेरा वढ़ जाने के कारण मैंने टेवल लैम्प जला लिया । मै अदालत में पब्लिक प्रासीक्यूटर द्वारा रूस की नैतिकता पर दिया गया भाषण पढ रहा था, जव सहसा वाहर से पडित का स्वर सुनाई दिया—अखवार जी!—और खिड़की के रास्ते अखवार अन्दर आ गिरा।

—यह अखबार देने का समय है, पडित?—मैंने अखवार उठाते हुए पूछा। मैंने खिडकी में से देखा कि पडित सिर पर एक वोरा ओढे हुए है, उसके कपड़े तीन-चौथाई भीग रहे थे, और उसके गीले वण्डल में कम से कम चालीस-पचास अखवार और है।

—आज तो जी, कही भी अखवार नहीं दे पाया—पडित ने कुछ दीनतापूर्ण स्वर में उत्तर दिया—इधर की चार कोठियो के अखवार देकर यह पांचवा अखबार आपका देने आया हू।

मुझे महसूस हुआ कि उसकी आवाज़ में वातावरण से भी अधिक नमी है।

—कोई खास वात तो नही?—मैंने पूछा।

—खास ही वात थी साहव—वह वोला—सवेरे से अव तक थाने की खाक छानता रहा हूं।

—क्यो ऐसी क्या वात थी?

वह जैसे असमजस में चुप रहा । मैने देखा कि सर्दी की वजह से उसके दात किटकिटा रहे है । मैंने उससे कहा कि वह अन्दर आकर चाय या काफी की एक प्याली पी ले।

पडित अन्दर आ गया और अखवारो का वण्डल फर्श पर रख कर उस पर वैठ गया। फिर मैंने केतली स्टोव पर रख दी । मेरी रुचि उस समय वंट गई थी । मै उपन्यास में पब्लिक प्रासीक्यूटर का भाषण भी पढना चाह रहा था, और पडित का किस्सा भी सुनना चाह रहा था। मैंने पुस्तक में अपनी पंक्ति ढूढते हुए पडित से पूछा— हां तो क्या वात हुई, जो आज थाने जाना पड़ा।

पडित ने अस्पष्ट स्वर में कुछ शब्द कहे, जिन्हें मैं ठीक से सुन नही सका । मैंने पुस्तक पर से आख उठा कर उसकी ओर देखा। एक वार वात न सुनी जाने पर उसे दोहराने में

जो लहजा आ जाता है, उस लहजे में पंडित ने कहा—हां, जी, मैंने कहा कि इस औरत ने आज पुलिस वालो के जूते भी दिखला दिए। इन्हें चाटना भी तकदीर में लिखा था।

—बात क्या हुई है?—मैंने पूछा।

—क्या बताऊं जी—वह बोला—अपनी औरत है, सो कहा भी नही जाता। जाने उसके मन में क्या समा गया ? कल रात वह घर से भाग गई है।

—भाग गई है ?—मैंने कुछ आश्चर्य के साथ कहा। मुझे स्वय लगा कि मेरे स्वर में सहानुभूति की छाया नही आ पाई। क्षण भर पडित के चेहरे को देख कर मैंने पूछा—वैसे यही पर है या कही बाहर चली गई है ?

—यह पता चल जाता तो मै उसे छोड़ता जी?—वह बोला—थाने में जा कर फरियाद करने की क्या जरूरत थी ? पता चल जाए तो मै उसे बालो से घसीट कर ले आऊं जी। वह मेरी ब्याहता औरत है।

मैंने एक बार तिरछे कोण से उसकी ओर देखा। उसका भाव उस समय कुछ ऐसा हो रहा था, जैसे उसे विश्व भर से शिकायत हो और प्रतिशोध न ले पाने का खेद हो।

—तुम्हारे ब्याह को कितने बरस हो गए पडित ?—मैंने पूछा।

—यही दस-आठ साल समझ लीजिए—उसने ज़रा कुठित स्वर में उत्तर दिया।

—तब कितने बरस के रहे होगे तुम ?

उसने स्वर को लम्बा करते हुए ज़रा रुक-रुक कर उत्तर दिया— यही जी समझ लीजिए बस, जितने बरस की उमर में ब्याह होता है वही उम्र थी। दो-चार साल शायद ज्यादा रही होगी। देखने में तो शुरू से ही ऐसा हू, जाने क्यों ?—और क्षण भर रुक कर वह फिर बोला—और जी, जब चार पैसे पास हो जाएं तभी तो ब्याह हो सकता है। हमारे इधर लड़की की कीमत लेते हैं। यह मैंने डेढ सौ रुपया देके ब्याही थी।

—डेढ सौ रुपया देकर ? —मेरे मुंह से आश्चर्य के साथ निकला।

मेरे आश्चर्य का और ही आशय लेते हुए पंडित बोला, इसकी बडी बहन सौ रुपये में मिल सकती थी जी। पर यह ज़रा खूबसूरत थी। उम्र छोटी थी, पर मैंने सोचा इसकी कोई बात नही। मुझे यह थोड़े ही पता था कि यह मेरे साथ इस तरह दगा करेगी।

पानी खौलने लगा था। मैंने उठ कर दो प्यालियो में काफी बनाई और चम्मच में चीनी लेते हुए पडित से पूछा—पडित, चीनी कम पीते हो कि ज्यादा ?

—कम जी—पडित ने नितान्त निर्लोभ व्यक्ति के ढग से कहा, मैंने दो चम्मच चीनी मिला कर प्याली उसके हाथ में दे दी।

काफी पीते हुए मैंने पंडित से पूछा—उसके बाप को पता चल गया है कि उसकी लड़की तुम्हारे घर से चली गई है ?

—मैं सवेरे उसके पास गया था जी—पडित बोला।—मैंने उससे कह दिया कि तेरी लडकी घर से भाग गई है। इसलिए मैं तुझ पर अढाई सौ रुपये का दावा करूगा। जी, डेढ सौ रुपया तो मैंने नकद दिया था और इतने दिन खाने और पीने के और इसके सौ से कम क्या लगेंगे ?

—फिर उसने क्या कहा?

—गरीब आदमी है जी, बहुत मिन्नत करने लगा, मैंने भी कहा कि रुपये के लिए तंग करना ठीक नही। बेचारा देगा कहा से ? मैंने कहा कि यह काम कर कि जब तक वह लौट कर नही आती, तब तक के लिए अपनी छोटी लड़की को मेरे घर भेज दे। हा, कम-से-कम मेरे घर का चूल्हा तो जलता रहे। मैं तुझ पर दावा नही करूगा।

—तो वह मान गया ?

—अभी उसने हामी तो नही भरी, पर उम्मीद है कि मान जाएगा । नही तो रुपये कहा से देगा ?—और खाली प्याली फर्श पर रख कर मुह पोछते हुए उसने कहा—वैसे आदमी खरा है । नीयत का बुरा नही है । दो आदमी समझाएगे तो समझ जाएगा । उसके भी भले की बात है, मेरे भी भले की बात है । अदालत मे जाना कोई अच्छा थोडे ही है ?—और उठ कर अखबारो का बण्डल सभालते हुए कहा—देखो क्या होता है !

और हुआ यह कि कुछ दिन बाद पडित की साली घास काटने के लिए आने लगी । आयु मे कम होती हुई भी वह देखने में पडित की पत्नी की तरह सुन्दर नही थी । वह भी उसी तरह दोपट्टे को पटके की तरह बाधे हुए गीत गुनगुनाती हुई घास काटा करती । परन्तु उसकी दृष्टि मे न वह चचलता थी और न वह विश्व भर के प्रति अवज्ञा का भाव । पडित की पत्नी के भाग जाने का किस्सा धीरे-धीरे पुराना पडने लगा । दो-चार-छ महीने और इसी तरह एक साल निकल गया । साल भर मे पडित की साली ने पूरी तरह उसकी पत्नी का स्थान ले लिया ।

रविवार का दिन था । मै खिडकी के पास बैठा कुछ पढने की चेष्टा कर रहा था । बाहर कुल्हाडी से एक वृक्ष पर आघात होने का शब्द सुनाई दे रहा था । गुलेरी साहब ने अपने नौकर गुलाबसिंह को आदेश दिया था कि लान के उस वाले भाग में जो छोटा-सा खुरमानी का पेड है, उसे काट दिया जाए और उसकी लकडी जलाने के काम में लाई जाए, क्योकि खुरमानिया उसमे साल में सेर भर ही उतरती थी और उसकी लकड़ी चार-छ: महीने जलाई जा सकती थी। उस समय खुरमानी का पेड कट रहा था और वह ठक् ठक् ध्वनि मुझे अपनी पूरी चेतना पर आघात करती प्रतीत हो रही थी।

मैं देवदारो में भटकती हुई एक चिडिया को देखने लगा। वह कभी ऊपर जाती और कभी नीचे और कभी उलझी हुई डालियो में गोल घूम जाती । सहसा वृक्ष के कट कर ज़मीन पर गिरने का शब्द सुनाई दिया । गुलाबसिंह ने पेड गिरा लिया था । तभी मैंने स्त्री कण्ठ से ये शब्द सुने—गुलाबसिह ! ऊपर की पतली टहनिया हमें दे दे।

मैंने स्वर तुरन्त पहचान लिया । वह स्वर पडित की पत्नी का था। मै खिडकी के पास चला गया । लान मे गिरे हुए वृक्ष के पास पण्डित की पत्नी और साली दोनो ही खडी थी।

—तू इन टहनियो का क्या करेगी ?—गुलाब सिंह पूछ रहा था।

—टहनिया जला लेगे और पत्ते गाय को खिला देगे—पडित की पत्नी ने कहा।

—तेरी मुन्नी सुना है बीमार थी, अब क्या हाल है उसका ?—गुलाबसिंह ने पूछा ।

—अब तो अच्छी है।

—इसकी कौन सी मुन्नी है रे ?—गुलेरी साहब ने कमरे से बाहर आते हुए पूछा।

यही जिज्ञासा मेरे मन में भी उदित हुई थी, क्योकि पण्डित की पत्नी के मातृत्व की कल्पना कुछ असगत सी प्रतीत होती थी।

—मुन्नी इसकी गाय का नाम है—कहता हुआ गुलाबसिह ज़रा सा हंस दिया।

—अच्छा, अच्छा !—गुलेरी साहब ने गिलगिली-सी हंसी हस कर कहा और फिर बोले—दे दे इसे दो-चार टहनियां। तोड़ ले पडितानी ! —और पंडितानी पर एक रसिकता-पूर्ण दृष्टि डाल कर वे कमरे के अन्दर चले गए।

पंडित की पत्नी और साली बैठ कर टहनिया तोड़ने लगी । गुलाबसिंह कुल्हाड़ी से वृक्ष की डालिया काटने लगा । बीच में एक बार उसने सिर उठा कर ऊपर की ओर देखा और कहा—वह लो पडित भी आ गया।

पडित अखबारो का बण्डल संभाले ऊपर की सड़क से उतर कर आ रहा था। लान में पहुंच कर वह कुछ देर अपनी पत्नी और साली के कार्य का निरीक्षण कर रहा था। फिर अखबार देने मेरी खिडकी की ओर आया । मैंने हाथ बढ़ा कर उससे अखबार ले लिया। पडित ने जैसे शेष अखबारो को सहेजते हुए क्षण भर का समय लिया और फिर अर्थपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देख कर बोला— आ गई है।

—अच्छा—मैंने अखबार पर दृष्टि दौडाते हुए सरसरी तौर पर कहा । पडित की पत्नी की उपस्थिति में उस विषय में बातचीत करना मैंने उचित नही समझा।

पडित ने एक बार पीछे अपनी पत्नी और साली की ओर देखा और फिर कमरे के अन्दर आ गया। मेरे बहुत निकट आकर वह ऐसे स्वर में जो उसके विचार में शायद धीमा था, पर वास्तव में इतना ऊचा अवश्य था कि बाहर सुनाई दे जाए, बोला—परसो थाने वालो ने मुझे शनाख्त के लिए बुलाया था । वो इसे मण्डी से पकड़ कर लाए हैं। इसके यार को भी उन्होने गिरफ़्तार कर लिया है । मैं तो जी बिल्कुल ही आशा छोड बैठा था। इतने दिन हो गए थे। पर जी नही, सरकार के घर में देर है अधेर नही ! उन्होंने भी खोज-खबर छोड़ी नही, कहां शिमला कहा मण्डी, पकड कर ले ही आए ।

मैं उसके शब्द सुन रहा था पर मेरा ध्यान बार-बार बाहर की ओर चला जाता था। पडित की पत्नी ने घृणापूर्ण दृष्टि से एक बार मेरी ओर देखा और फिर तोडी हुई टहनिया ऊपर उठा कर सडक की ओर चल दी । उसकी बहन भी उसके पीछे-पीछे चली गई। इधर पडित कह रहा था—कल इसके बाप ने इसे पीटा । पर जी, ऐसी ढीठ औरत है कि चुपचाप मार खा गई । मुह से बोली तक नही । वह तो मैं बीच में पड़ गया । नही तो वह तो इतने गुस्से में था, कि इसकी चमड़ी उधेड़ देता । मैंने कहा कि अब मार-पीट से क्या फायदा । जो मुह काला करना था, सो तो कर ही आई। आगे से अपनी निगरानी में रखेंगे। क्या कहते हैं ?

यद्यपि पडित की पत्नी कुछ दूर ही चली गई थी, फिर भी मुझे लग रहा था कि पडित के शब्द अभी तक उसके कानो मे जा रहे हैं। पडित उत्साह और उत्सुकता के साथ मेरे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था । मैं क्षण भर पडित की बूढी आखो को देखता रहा । फिर मैंने कहा—तो अब तुम्हारी साली अपने पिता के घर लौट जाएगी।

—वह अब कहा जाएगी जी—पडित बोला—बेचारी का बाप गरीब आदमी है । उसके पास खिलाने के लिए पैसा भी नही है । उसे इसका सौ-सवा सौ चाहिए, सो मैं ही उसे दे दूगा । इतने दिनो से घर में रह रही है जी, सो अब छोड़ने को दिल नही चाहता। आदमी को आदमी से मोह हो जाता है और कल को क्या पता यह फिर भाग जाए । ऐसी का कोई भरोसा थोड़े ही है।

पंडित की पत्नी और साली सडक का मोड़ मुड रही थी । गुलाबसिंह अब भी वृक्ष की डालियों पर कुल्हाडा चला रहा था । गुलेरी साहब उसे आदेश दे रहे थे कि लकड़ियां बारीक काटे जिससे जलाने में सुविधा रहे।

—पडित अखबार ज़रा जल्दी दे जाया करो —मैंने कहा—तुम बहुत देर से अखबार लेकर आते हो, आज भी देखो दो बज रहे है।

—कल से जल्दी लो जी!—पंडित ने तत्परतापूर्वक कहा और अखबारो को सहेजता हुआ बाहर की ओर चल दिया। कुछ देर बाद उसके गुलेरी साहब से उसी विषय में बात करने का शब्द सुनाई देने लगा।

—दिल्ली से प्रसारित



गप्प

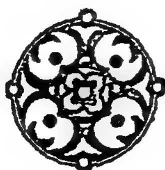
बेढब बनारसी

उत्तर प्रदेश के एक विख्यात नगर की घटना है। एक सज्जन को पेट की पीडा हुई। पढे-लिखे आदमी थे, डाक्टर को बुलाना आवश्यक समझा। अस्पताल जाना उचित न समझा। डाक्टर को बुलाया। उसने अन्दर जाकर देखा और पाच मिनट बाद आकर कहा—एक छेनी ला दीजिए। उनके पुत्र ने डाक्टर का मुह निहारा, छेनी लाकर दे दी। पाच मिनट बाद वह फिर आए और बोले—एक हथौडा चाहिए। अबकी वह चक्कर मे पडे। मगर सोचा डाक्टरी मामला है, कोई बात होगी। फिर हथौड़ा लाकर दे दिया। पाच मिनट बाद फिर डाक्टर ने कहा—एक आरी चाहिए। तुरन्त लाइए। इस बार न रहा गया, बोले—डाक्टर महोदय, आपने छेनी मागी, फिर हथौडा मागा, अब आरी माग रहे है। आपरेशन ही करना है तो क्या इस प्रकार आपरेशन होगा? डाक्टर ने जोरदार आवाज में कहा—अरे जनाब, आपरेशन को गोली मारिए, मेरा औजार का बैग नही खुल रहा है। उसी को काटना है।

× × ×

एक सज्जन विलायत से लौट कर आए। उनका एक जगह भाषण था। उन्हें बातें बहुत बढ़ा-चढा कर कहने की आदत थी। उनकी श्रीमती ने कहा, बहुत बढा कर कुछ न कहना। नही तो लोग मूर्ख समझेंगे। कितने लोग इग्लैण्ड से लौट कर आ चुके है। सब लोग वहा की बातें जानते है। उन्होने पत्नी को समझाया—नही, ऐसा क्या कहूगा। क्या मैं बेवकूफ हू। फिर भी यदि कोई बात हो, तो तुम मेरे पैर पर इशारा कर देना। तुम तो बगल में ही बैठोगी। वह लगे कहने—मैंने वहा पार्लियामेंट भवन देखा। क्या कहना है। दस मील लम्बा और पाच मील चौडा है। उसी समय उनकी पत्नी ने पाव मे इशारा किया। वह सजग हो गए। बोले—हा, और ऊचाई पाच इंच है।

—इलाहाबाद से प्रसारित



एक दीवार

फणीश्वरनाथ रेणु

सामने दीवार पर फिर एक नया इश्तहार चिपका दिया गया। टेढे-मेढ़े बड़े-बड़े अक्षरो ने मिल कर एक शब्द की सृष्टि की और शब्द ने नई पुकार शुरू कर दी।

सामने की दीवार को पिछले आठ साल से देखता आ रहा हू। जबसे इस कस्बे में आया, आकर इस कमरे की इधर वाली खिडकी खोली, तभी से इस दीवार को देख रहा हूं। दीवार को देख कर कभी उसके उदार मालिक को जानने-पहचानने की जिज्ञासा नही जगी मन में। एकाध बार, मन ही मन, इस भूल-भुलैया में अवश्य पड़ गया कि इश्तहार चिपकाने के लिए ही इस दीवार की रचना तो नही हुई? दीवार की रचना, यानी ईंट-ईंट जोड कर खड़ी की गई दीवार . . . . पुश्ता। किसी चप्पे पर कार्य भी कार्यक्रम होने-हवाने की बात तय पाई, और इस दीवार की छाती पर गीली-गीली लेई में लिपटा-लिथड़ा छोटा या बड़ा. . .रंगीन या सादा कागज का एक इश्तहार चिपक गया।

और, मैंने कहा न, अक्षरो ने मिल कर एक नए शब्द की पुकार शुरू कर दी। मैं, आपको यहा विश्वास दिला देना चाहता हूं कि इश्तहार की बोलियो को मैंने पहले-पहल इसी दीवार की हृत्तन्त्री के तारों पर सुना, रनरनित होती बोलियां।

अक्षरो यानी लिपियों की कारीगरी सिर्फ कारीगरी के लिए होती है. . . .यह मैं कैसे मान लू? मोटे ठिगने पाए वाले और उखड़ी-उखड़ी शीर्ष रेखा वाले अक्षरो की आवाज़ पतली कैसे हो सकती है? टेढे-मेढे कलापूर्ण अक्षरों की आवाज़ फटी हुई मैंने कभी नही सुनी। आठ साल पहले, पहली बार जिस इश्तहार पर निगाह पड़ी और निगाह पडते ही जिससे एक किलकिलाती हुई ध्वनि प्रतिध्वनित हुई, वह एक सर्कस कम्पनी की थी। आखो के आगे साइकिल पर सवार बन्दर, बाघ की पीठ पर जुगाली करता हुआ बकरा, हवा में तैरती हुई औरतें और सर्कस के विदूषक की वह मुखमुद्रा; कान के पास गूंज उठी पुकार, एक अद्भुत पुकार—दि ग्रेट वन्डरफुल सर्कस कम्पनी आफ वर्ल्ड— आखिरी रात, लास्ट नाइट, आखिरी मौका। याद है, कुछ क्षणो तक बस यही सदा आती रही इस दीवार से।

इसके बाद दीवार पर चिपके पुराने, थोड़े पुराने, बहुत पुराने, हाल के, कल तक नए, रग-बदरंग और दुबके चीरे-फाड़े, उघाडे दर्जनो इश्तहारो पर निगाह फिरी और अस्पष्ट, दबी हुई आवाजो का एक हल्का कोलाहल कर्णगोचर हो गया।

. . . . नही। यह नही हो सकता कि मैं इस दीवार को न देखू। उदारतापूर्वक अनेक सूचनाएं मुफ्त ही. पुकार पुकार कर दे जाने वाली यह दीवार।

इस पर उस दिन फिर एक नया इश्तहार चिपका दिया गया। पागलपन की मशहूर दवा की एक बार परीक्षा करने की चुनौती देने वाला इश्तहार। किसी लिथो प्रिंटिंग प्रेस में छपा था। कातिब ने तर्जनी से संकेत करती हुई कलाई सहित हथेलिया बनाने की चेष्टा

में मय सूड से हाथी बना दिया था, और जिसके बिंदीदार हरूफों की हार्मनी से इस तर्ज़ की आवाज निकलती थी— हथेली पर सरसो जम गई पागलपन की दवा बन गई . एक बार आजमा कर देखिए! और यह इश्तहार एक सार्वजनिक अनुष्ठान के प्रोग्रामो की आवाज को दबाती हुई जोर-जोर से पुकार रही थी। उसी के नीचे कोई साहब एक हज़ार रुपये नकद इनाम की घोषणा कर रहे थे, न जाने किस चीज़ को नकली साबित कर देने पर। हालांकि संख्या के दो शून्य किसी दूसरे विज्ञापन के नीचे आ गए थे, जो किसी के आने की सूचना देने के लिए आ चिपका था . . आ रहा है, आ रहा है। पता नही क्या आ रहा है, कहां आ रहा है? कहने का तात्पर्य यह है कि इस दीवार पर कभी कोई ऐसा इश्तहार नही चिपका जिसकी आवाज मैंने नही सुनी। किन्तु, उस दिन के इश्तहार की पुकार से सारी देह झनझना उठी। इतने दिनो के बाद आखिर एक ऐसा भी विज्ञापन चिपका जो सिर्फ ध्वनित ही नही होता, बल्कि झटके भी दे गया।

नरमुड यानी खोपडी और उसके नीचे क्रास की हुई दो हड्डिया . किसी मशहूर जादूगर का इश्तहार भले ही हो.... उसकी रहस्यमयी और डरावनी आवाजो की मुझ पर कभी कोई प्रतिक्रिया नही हुई। लाख बार चोरैट-चोरैट चीखता रहे . तीन दर्जन तमगे लटकाने वाला और नाम के आगे प्रो० लगाने वाला टेढी मूछो वाला मशहूर जादूगर! किन्तु, सच कहू . . यह जो, उस दिन इश्तहार टगा, इसके अक्षर, शब्द और शब्दो की पुकार ने मेरे मन की कोई जकडी हुई खिडकी खोल दी। मन को एक नया परस मिला। इसी कस्बे के कुछ कठपुतली वालो की सतान ने मिल कर बडे पैमाने पर एक प्रयोग किया है। कस्बे में पहली बार दिखला रहा है अपना तमाशा। कठपुतली नाच में किसन-लीला, कस्बे के कलाकारो ने ही एक-दो कठपुतलियो के सफल रेखाचित्र अंकित करके कठ-पुतली अक्षरो में ही लिख दिया राधा नाचे, गोपी नाचे, नाचे किसुन कन्हैया। . . ...क्या जाने क्यो, इस इश्तहार की पुकार को सुन कर मेरा मन भी डोल गया। कठपुतली नाच में किसुन-कन्हैया और राधा को क्या नाचते देखा, वह अलग से कहने की बात है। यहा इतना ही कहू, देखते समय मुझे लगा मेरी देह के जोड-जोड में तार लगा हुआ है। मेरा चलना-फिरना मेरे वस की बात नही। मै तो कठपुतली नही कठपुतला हू। मन के पर्दे के पार बैठा सूत्रधार मनचाहे मुझे चलाता फिराता है।. ... इस कस्बे के दादे-परदादे अपने बचपन म जिस नाच के पीछे पागल रहे होगे, उस नाच की एक झाकी देखने को मिली। इतने दिनो के बाद, मै भी पडोसी के जवान बेटे की तरह दीवार पर चिपके पोस्टर को पढ कर चिल्ला उठा, देख ले, देख ले, देखने वाले देख ले! पागलपन की मशहूर दवा का लियोग्राफिक इश्तहार किन्तु पुकारता रहता है—हथेली पर सरसो जम गई, पागलपन की दवा बन गई एक बार आजमाइश . . .।

मुझे यह बात पहले ही मालूम थी, कि यह दीवार इसी सप्ताह तोडी जाने वाली है। चहारदीवारी के अन्दर जो बगला था ... वह नीलाम हो गया है। नए मालिक ने दीवार गिरा देने का फैसला कर लिया है। किन्तु मुझे दुख नही। गिरते-गिरते मेरे मन को फिर से आशा और आस्था से भर गई है यह दीवार।

—पटना से प्रसारित

आखिरी अदालत का मुकदमा

विजयदेव नारायण साही

बहुत दिन पहले, जब मैं बूढा था, तब की बात है। जिस शहर में मैं रहता था, उसी शहर, में, मेरे मकान से दूर एक दूसरी गली में एक शख्स का मकान था। वह बहुत जल्लाद था। उसका मकान बहुत बडा था। उसके दरवाज़े पर दरबान बैठता था। दरबान बहुत बदमाश था। गाली बकता था। उस शख्स से मैंने इश्क किया। ऐसा मुझको नही करना चाहिए था। लेकिन फिर भी मैंने किया। मेरी देखा-देखी और लोगो ने भी उससे इश्क किया। उन लोगो को भी ऐसा नही करना चाहिए था। लेकिन उन लोगो ने भी ऐसा किया। इससे मेरी और दूसरे लोगो की दुश्मनी हो गई। वे लोग उस जल्लाद से मिल गए।

मैंने कई बार उस जल्लाद के घर में जबर्दस्ती घुस जाने की कोशिश की। मगर मैं उसके मकान में घुस नही पाया। दरबान ने रोका। इस पर बड़ी गाली-गलौज हुई। मगर मैंने गाली नही दी। गाली दरबान न ही दी। मैं सिर्फ सजीदा हो गया। क्योकि मैं शरीफ आदमी था। दरबान बदमाश था लेकिन मैं वहां से हटा नही। इस पर बडी मारपीट हुई लेकिन मैंने नही मारा। मारा दरबान ने ही। मैं सजीदा का सजीदा रह गया। इस पर बड़ी धक्कम-धुक्की हुई लेकिन धक्का मैंने नही दिया। धक्का दरबान ने ही दिया। उसने धक्के दे कर मुझे गली के बाहर निकालने की कोशिश की। इसमें वह सफल हुआ। क्योकि मेरा स्वास्थ्य खराब था। दरबान स्वस्थ था।

मैं घर चला आया। मेरे घर में एक चारपाई थी। मैं उस पर लेट गया। उस जल्लाद और मेरे दुश्मनो ने मुझे मार डालने के लिए बहुत-से जाल रचे। लेकिन मैं बचता गया। एक बार उसने मेरे पास खबर भिजवाई कि वह मुझसे मिलने आवेगा। इस पर मुझे बहुत खुशी हुई लेकिन मैं बहुत बीमार था। मारे खुशी के मुझे लगा कि मैं मर जाऊगा। तब मुझे बहुत डर लगा। क्योकि मैं मरना नही चाहता था। इसलिए मैंने एक चालाकी की। मैंने उसके वादे का एतबार नही किया। इससे खुशी में कमी हो गई। मेरी जान बच गई। दुश्मनो की एक न चली।

तब मैंने सोचा कि अब क्या करू। मैंने धीरज नही खोया। और चारपाई पर लेटे-लेटे उस जल्लाद का इन्तज़ार करने लगा। लेकिन वह नही आया। इसमें बहुत दिन लग गए। आखिरकार मैं मर गया।

मरने के बाद मेरा जनाज़ा निकला। इस पर मेरी बडी बदनामी हुई। मुझे इस बदनामी पर बड़ा अफसोस हुआ। मैंने सोचा कि इससे तो अच्छा था कि नदी में ही डूब गया होता। तब न जनाज़ा निकलता, न बदनामी होती। बडी गलती हुई। लेकिन अब क्या हो सकता था? अब तो मैं मर ही चुका था। इस गलती का मुझे जिन्दगी भर अफसोस रहा।

फिर मेरी कब्र बनी। उसमें मैं लिटा दिया गया। कब्र में लेटे-लेटे मैंने शेर कहना शुरू कर दिया। इससे मेरी बड़ी प्रसिद्धि हुई।

मेरे मरने की खवर उस जल्लाद ने सुनी, तो वह दौडा-दौडा मेरी कब्र पर आया और वहुत अफसोस जाहिर करने लगा। कहने लगा कि आपके मरने की खवर सुन कर वहुत गम हुआ। आप वहुत अच्छे आदमी थे। ईश्वर आपकी मृतात्मा को शान्ति प्रदान करे। मैंने कहा—भाई, अपने घर जाओ। अव पछताने से क्या होता है ?

इस पर वह शख्स जिद करने लगा कि मेरे साथ चलो, लेकिन मैंने चालाकी की। मै जानता था कि यह शख्स मेरी जान लेने पर तुला हुआ है और इसका अफसोस करना सिर्फ अखवार में छपवाने का दिखावा है। अगर मै इसके साथ गया तो यह मुझे जीता न छोड़ेगा। इसलिए मैंने कब्र में लेटे ही लेटे कहा कि अव मै जिन्दगी भर तुम्हारे यहा नही आऊगा। मै गया नही। मेरी जान वच गई।

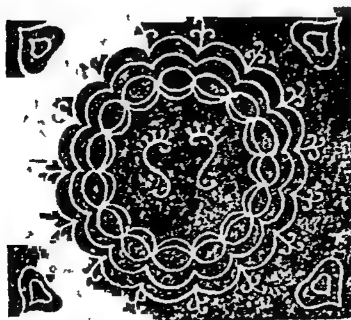
लेकिन उसने जिद नही छोडी। वह अक्सर मेरी कब्र पर आता रहा। आसू वहाता था और कहता था कि मेरे साथ चलो। आखिरकार मै एक दिन उसके साथ उसके घर चला गया। हुआ वही जो होना था। वहा उसने मेरी हत्या कर दी। वहुत दर्द हुआ। इस पर मुझे वहुत गुस्सा आया। मैंने कहा कि जीता रहा तो मै इसका वदला ले कर रहूगा।

वहा मेरे दुश्मन पहले से ही मौजूद थे। वे लोग मेरी यह वात सुन कर हसने लगे।

मौका पाकर मै वाहर निकल आया। वाहर आकर मैंने उस जल्लाद पर अपनी हत्या का मुकदमा चला दिया। अभी वह मुकदमा अपील की अदालत में चल रहा है। लेकिन वह शख्स पहले की कई अदालतो से छूट चुका है। लोग कहते है, कब्र से आए हुए आदमी की हत्या करना जुर्म नही है। मुझको कब्र से नही आना चाहिए था। कानून मैंने ही तोडा है। फासी मरी ही होनी चाहिए। लेकिन मै छोड़ूंगा नही। आखिरी अपील की अदालत तक लड़ूगा। यह भी कोई वात है। वदतमीजी की भी हद होती है।

यह सव गप नही है। विल्कुल सच है। मैंने पूरा हाल लिख कर किताव मे छपवा दिया है। किताव शेर में है। मेरा नाम मिर्जा गालिव है। मै दिल्ली का रहने वाला हू। पहले मै वड़े काम का आदमी था। वाद मे धीरे-धीरे निकम्मा हो गया। ऐसा मुझको इश्क ने किया।

—इलाहावाद से प्रसारित



उत्तराखण्ड की यात्रा

सेठ गोविन्ददास

. उत्तराखण्ड के यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ और वदरीनाथ की जिस यात्रा के सम्वन्ध में मै आपसे यहां चर्चा कर रहा हूं, वह यात्रा वड़ी लम्वी और कठिन है। मै देश में निरन्तर घूमता रहता हूं और विदेशो में भी अनेक वार गया हू। किन्तु, इतनी लगातार लम्वी पैदल और कठिन यात्रा मैंने कभी नही की। अत. अनेक शारीरिक कप्ट इस यात्रा में हुए। किन्तु इन कप्टो के विपरीत जो मानसिक आनन्द हमें यहा के प्राकृतिक दृग्यो के कारण मिला उससे ये कप्ट हमें अधिक दुख न दे सके। यहां के प्राकृतिक सौंदर्य की तुलना में न कश्मीर के दृश्य है, न स्विटजरलैण्ड के। कश्मीर के अमरनाथ के कुछ दृश्य अधिक सुन्दर हो सकते है किन्तु, जो एक प्रकार की महानता हमें यहा इन दृश्यो में दृप्टिगोचर हुई, वह अन्यत्र कही नही।

उत्तराखण्ड के चारों धाम चार पवित्र नदियो के तट पर स्थित है। यमनोत्तरी का मार्ग यमुना के किनारे-किनारे, गंगोत्तरी का मार्ग गंगा के किनारे-किनारे, केदरनाथ का मार्ग मदाकिनी के किनारे-किनारे तथा वदरीनाथ का मार्ग अलकनन्दा के किनारे-किनारे गया है। यात्रा के प्रारम्भ में पहले हमें साधारण वृक्षो के जगल मिले फिर एक खास ऊचाई पर चीड़ के। चीड़ का वृक्ष वड़ा सुन्दर होता है। इसकी शाखाए पत्र गुच्छो से लदी रहती है। आप इन वृक्षो को दिल्ली में सेक्रेटरियट के समीप देख सकते है। इन वृक्षो के वहां घने जंगल है। फिर हमें देवदार के वृक्ष मिले। देवदार के वृक्ष चीड के वृक्षो से भी सुन्दर होते है। इनमें चीड़ के वृक्षो की अपेक्षा अधिक हरे पत्र-गुच्छ रहते है। सघन देवदार के वृक्षों से पर्वत की शोभा द्विगुणित हो जाती है। ऊचे-ऊचे शिखरो से गिरते अगणित जल-प्रपातो से तथा हिमानी शृगो से इस वन-प्रदेश की शोभा में चार चाद लग गए है। जिस प्रकार के यत्र-तत्र शोभायमान हो रहे हिम शृंग हमें यहा दिखे और विशेपकर केदारनाथ की वह हिमानी जिसकी ऊंचाई तेईस हज़ार फुट है, उस प्रकार की इतनी विशाल, भव्य और ऊंची हिमानी ससार में हमने कही नही देखी।

फिर चारो नदियो का आप प्रवाह देखिए। यमुना का श्याम, गगा का श्वेत, मदाकिनी का हरा और अलकनन्दा का नीला नीर भिन्न-भिन्न उद्गमो से निकल कर भिन्न-भिन्न मार्गों से वह कर, भिन्न-भिन्न धामो को जाने वाले हम लोगो को अत्यन्त सुखदायक लगा। अव ज़रा इनके प्रवाह की गति देखिए। कल-कल करती कालिन्दी अपना श्याम-वर्ण लिए श्याम पाषाणो पर वहती है, भागीरथी अपने श्वेत नीर से श्वेत और नीले पाषाण खण्ड को चीरती किस शान, किस तूफानी वेग से तुमुलनाद करती चलती, जिसके रूप और गति को देख हम चकित, स्तंभित और भयभीत भी हो जाते। ऐसा प्रवाह मैंने दुनिया की किसी नदी में नही देखा। अलकनन्दा भी कही वेग से और कही शाति से भागीरथी के अनुसरण में किसी विरह वाला की तरह दौड़ी जाती है। फिर

जहा इन नदियो के संगम हैं, वहा के दृश्य और भी मनोहर हैं। इन सगमो से आगे जो प्रवाह बहता है, उसके नामकरण में हमारे ऋषि-मुनियो की अन्तर्दृष्टि का हमें आभास मिलता है। रुद्रप्रयाग में मन्दाकिनी का हरित नीर, अलकनन्दा के नीले नीर में समा गया है। अत रुद्रप्रयाग के आगे के प्रवाह का नाम अलकनन्दा है। देवप्रयाग में अलकनन्दा का नीला पानी भागीरथी के श्वेत नीर में समा जाता है और भागीरथी का श्वेत प्रवाह आगे बढ़ता है। इसीलिए इसका नाम गगा ही आगे माना गया। प्रयागराज मे ही देखिए, यमुना का श्याम जल परिमाण में अधिक होते हुए भी गगा में मिलते ही विलीन हो जाता है, अत आगे गगा का ही नाम चला।

उत्तराखण्ड के चारो धामो में यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी का मार्ग जितना बीहड और सकीर्ण है, उतना केदारनाथ और बदरीनाथ का नही। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी मे एकदम सीधी और विकट चढाइया है, और फिर दो-ढाई और तीन फुट तक का सकरा मार्ग, हजारो फुट नीचे गहरे भयानक खंदक, और इन सरिताओ का प्रवाह। कही-कही ऊपर सिर पर कच्चे पहाड, जिनके टूटने का भय बना रहता है। यमुनोत्तरी के मार्ग में एक जगह तो पहाड़ो में चर रही भेडो ने कुछ पत्थरो की वर्षा भी इन कच्चे पहाडो के कारण कर दी थी। हा, केदारनाथ और बदरीनाथ का मार्ग अच्छा है। चढाई है, पर एकदम सीधी नही। मार्ग चौडा है, घुमाव पर मेड़ें बना दी गई है।

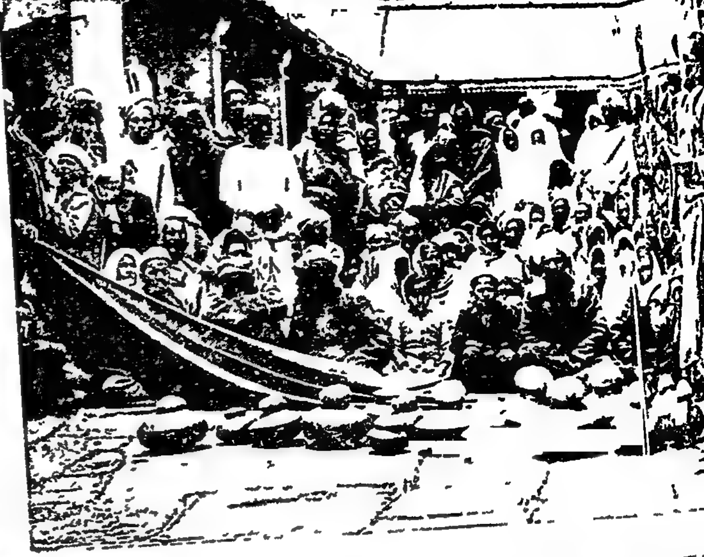
हम लोग यात्रा पर धार्मिक भावना से गए थे। वहा हमने देखा किस प्रकार का पूजन होता है। मै वल्लभ सम्प्रदाय का हूं और वल्लभ सम्प्रदाय में पूजा न होकर सेवा होती है। प्रसिद्ध सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो के पदों के साथ यह सेवा भी अलौकिक ही है। केदारनाथ और बदरीनाथ में पूजा होती है। यहा की पूजा की जो विधि मैंने देखी, उससे भी मै अत्यन्त प्रभावित हुआ। रुद्री के महामत्र के साथ केदारनाथ के रुद्राभिषेक और शुक्ल यजुर्वेद की स्वर सहित ऋचाओ के साथ बदरीनाथ के पंचामृत स्नान ने हमें गद्गद कर दिया। इस तरह की विधि-विधान से पूर्ण पूजा जैसी मैंने वहा देखी वैसी कही नही।

ऐसा सुन्दर धार्मिक और सास्कृतिक भव्य वायुमण्डल का यह दृश्य केदारनाथ और बदरीनाथ के इन मन्दिरों में देख कर मुझे हमारी सगुण उपासना, मूर्त्ति पूजा का जो रहस्य अनुभव हुआ वह वर्णनातीत है। कुछ लोगों का यह कहना है कि पहले निर्गुण ब्रह्म की उपासना होती थी और मूर्त्ति पूजा नही थी, यह तो बाद में आई। यह मैं स्वयं मानता हूं। किन्तु, उन्हीं लोगो द्वारा जब यह कहा जाता है कि हिन्दुओ की मूर्त्ति पूजा अथवा सगुणोपासना एक ढोग है, तो मुझे उनका यह कथन अत्यन्त हास्यास्पद प्रतीत होता है। मैं ऐसे लोगो से निवेदन करूंगा कि जब मूर्त्ति पूजा नही थी और यहां केवल केदारवन और बदरीवन थे, तब कितने लोग यहा इन बीहड़ वनो को देखने आते थे। आज भी कितने लोग प्राकृतिक सौंदर्य के अद्वितीय स्थल कैलास और मानसरोवर को जाते है। उत्तर स्पष्ट है, जब हमारे ऋषि-मुनियो ने इन पवित्र तीर्थों की स्थापना की, मूर्त्ति पूजा की सगुण उपासना के महत्व को बढाया, तबसे हमारी आस्तिक धर्म प्राण जनता का यहा हर वर्ष मेला लगा रहा है और आज भी मार्ग की अनन्त असुविधाओ और पहाड़ो की भीषण दुर्गमताओ के होते हुए भी यात्रियो की यह संख्या दिनो दिन बढती ही जाती है। कदाचित कोई यह कहे कि अब पहले की अपेक्षा मार्ग अच्छे हो गए है, इसलिए लोग आते है। किन्तु, मैं उनसे फिर निवेदन करूंगा कि अमरनाथ के अत्यन्त दुर्गम मार्ग में आज भी जो लोग जाते है, क्या वे वहां के प्राकृतिक दृश्यो को देखने जाते है? बात

अलकनन्दा और मन्दाकिनी का संगम, रुद्रप्रयाग







वदरीनाथ मन्दिर के केरल से आए रावल भाग लगा

केदारनाथ मन्दिर का द्वार और उसके मैसूर से आए रावल



वदरीनाथ मन्दिर का मुख्य द्वार

गंगोत्री मन्दिर

यमनोत्तरी मन्दिर

ऐसी नही है। यदि वहां भी कैलास और मानसरोवर के सदृश ही केवल प्राकृतिक सौंदर्य मात्र होता तो कोई कदापि नहीं जाता। लोगों को जहां उनकी धार्मिक भावनाओं के साकार दर्शन इन पवित्र देवालयो में होते है, वे भले ही कितने ही ऊंचे शिखर और कितने ही दुर्गम मार्ग द्वारा उन्हें प्राप्त हो, श्रद्धा और भक्ति के आसरे अनन्त कठिनाइयो को झेलते लोग आतुरभाव से दौड़े जाएंगे। तपोवनो का समय अब बीत गया है और निर्गुण उपासना का भी। अब तो हमारी धार्मिक भावनाओ के उद्गम इन तीर्थ स्थलो, देवालयों का यह समय है, जहां से हमारे धर्म और सस्कृति मे प्राणों का सचार होता है।

मैं सगुणोपासना और मन्दिरों की मूत्तियो को हिन्दू धर्म के विकास का एक बहुत बड़ा साधन मानता हू। बदरीनाथ की मूर्त्ति को लीजिए। इस मूर्त्ति मे 'जा की रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' के अनुसार दर्शन होते हैं। यह मूर्त्ति डेढ़ फुट ऊंचे श्याम संगमर्मर की है। हम वैष्णवो को इस मूर्त्ति में भगवान विष्णु के दर्शन हुए। शैवों को शिव के होते हैं, जैनियो को तीर्थंकर के और बौद्धो को भगवान बुद्ध के। अत्यन्त हर्ष का विषय है कि कम-से-कम एक मूर्त्ति तो ऐसी है ही जिसमे भारत के विभिन्न वर्गों, क्षेत्रो और सम्प्रदायों के लोगों के इष्टदेव प्रतिभासित होते है। यह भारत की समन्वयकारी सस्कृति की प्रतीक बन गई है। किन्तु, इसका दूसरा पहलू भी है, वह है झगडे का। यदि कोई बौद्ध, कोई जैन अथवा अन्य कोई मतावलम्बी मन्दिर पर अधिकार का दावा करे, तो यह एक अनिष्टकारक घटना होगी।

महर्षि वेदव्यास और शंकराचार्य आदि के कार्यों में उनके निवास स्थान के हमें आज भी यहां प्रत्यक्ष दर्शन हुए। वेदव्यास ने यही महाभारत की रचना की थी। इसके प्रमाण में महाभारत में उनके द्वारा की गई इस स्थल की बंदना में लिखा गया महाभारत का पहला श्लोक यहा देना पर्याप्त होगा—

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततोजयमुदीरयेत्॥

यहीं निकट जो व्यास गुफा है, उसके समीप नर और नारायण पर्वत तथा सरस्वती का पावन प्रवाह है। गुफा से तीनो के सुन्दर दर्शन होते हैं। इस श्लोक में एक ओर व्यास जी ने नर, नारायण और सरस्वती की बंदना की और दूसरी ओर नर नारायण, पर्वत तथा सरस्वती नदी की।

ज्योतिर्मठ में हमने शहतूत का वह वृक्ष भी देखा, जिसके नीचे तपोभूत शकराचार्य को ज्योति के दर्शन हुए और उसके निकट ही उनकी वह शकर गुफा भी देखी जिसमें वह निवास किया करते थे। इसी वृक्ष के नीचे भगवान शकराचार्य ने तत्वज्ञान के उस महान ग्रन्थ शाकरभाष्य की रचना की थी। ज्योतिर्मठ का सेब, नासपाती, अखरोट आदि फलो से लदे पौधो का बगीचा, संस्कृत का विद्यालय आज भी जगतगुरु शकराचार्य के पवित्र प्रयत्नो और संकल्पो को दुहरा रहा है जिसके दर्शन मात्र से हमने महान प्रेरणा पाई।

हमारे ऋषि-मुनियों ने दूर तपोवनो में एकान्त साधना द्वारा सदैव भारत की जो एकता तथा हित की चिन्तना की है, वह उनके कार्यो द्वारा सिद्ध हो जाती है। यहा उनकी इस भारतीय एकता की भावना की पुष्टि में एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारत के उत्तर में स्थित इन दो देव मन्दिरो, केदारनाथ और बदरीनाथ के पुजारी जिन्हें रावल कहा

जाता है, उत्तर के न होकर केदारनाथ के कर्नाटक से और बदरीनाथ के केरल से आते है। आज पर्यन्त उनके द्वारा निर्धारित की गई पद्धति और नियम का पूर्णतया पालन हो रहा है। भारत को एकसूत्रता मे बांध रखने की जिस भावना का दर्शन हमारे इन ऋषि-मुनियों में हमें होता है, उसे इन मन्दिरों के पूजन नियम में अनुभव कर किस भारतीय का मस्तक श्रद्धा से इन ऋषि चरणों में न झुक जाएगा।

हम यद्यपि इस यात्रा के लिए प्रधानतया धार्मिक भावना से ही गए थे, तथापि जव तक आधिभौतिक शरीर है, जिसके लिए कहा गया है ··· 'शरीर माद्यं खलु धर्म सावन' तव तक मानव किस प्रकार रहता है और क्या-क्या सहता है, इससे भी आंखें नही मूदी जा सकती है। अत . आध्यात्मिक प्रेरणा से इन सात सप्ताहो का जीवन ओत-प्रोत रहने पर भी हम यहां की गरीवी को देख दुखी हुए विना न रह सके। यो, तो सारा भारत देश ही गरीब है, किन्तु, जहा प्रकृति ने विपुल सम्पत्ति विखेरी है, वहां मानव के कुछ न करने के कारण गरीवी और उत्कट स्थिति में है। यहां इतना पानी है, जितना अन्यत्र कही नही। उसका सिंचाई मे कम-से-कम उपयोग होता है। इस सिंचाई से केवल अधिक अन्न ही नही उपजाया जा सकता परन्तु लम्बे-चौड़े फलों के उद्यान भी लगाए जा सकते है। खनिज पदार्थों की खोज करके उन खनिज पदार्थों को पर्वतराज के पेट से निकाल जन-उपयोग में लाया जा सकता है, जंगली वृक्षो और वास से कागज की उत्पत्ति की जा सकती ह। भेड़ों की नस्लों का सुधार कर उनसे ऊन की उत्पत्ति वढा ऊन के गृह-उद्योग जारी किए जा सकते हैं। न जाने क्या-क्या किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रदेश जितनी आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करता है, उतना ही आधिभौतिक दृष्टि से सम्पन्न वनाया जा सकता है।

—दिल्ली से प्रसारित

होनहार

हरिशंकर परसाई

एक स्त्री अपने छोटे से पुत्र को ले कर एक ज्योतिषी के पास गई और कहा—पंडित जी, इस लड़के का कुछ भविष्य वतलाओ।

ज्योतिषी ने कहा—माता, तू इसके कुछ लक्षण वता। इसमे तूने कोई विलक्षण वात देखी?

स्त्री ने कहा—यह लड़का रात को सोते-सोते वड़े ज़ोर से चिल्लाता है 'जागो, जागो! ······आगे वढो, आगे वढ़ो!'

ज्योतिषी ने पूछा—माता, जव यह 'जागो' और 'आगे वढ़ो' चिल्लाता है, तव यह क्या करता है?

—यह तो ऐसा रहता है पत्थर सरीखा! पर चिल्लाता है 'जागो! आगे वढ़ो!'

ज्योतिषी ने कहा—माता, तेरे लड़के का भविष्य उज्ज्वल है। यह नेता वनेगा।

—इलाहाबाद से प्रसारित

टेलीविज़न

पी० एल० देशपाण्डे

अपने अनुभव की बातो को दूसरों के सामने व्यक्त करने का मनुष्य का विलक्षण स्वभाव है। चाहे बाज़ार में दो पैसे का नीबू ही क्यो न खरीदने जाए, यह स्वाभाविक है कि घर आने पर बाज़ार की भीड़ के बारे में, या जाते समय बस किस प्रकार छूट गई थी, उसके बारे में, या पहले जैसे नीबू अब नही मिलते उस बारे में, कुछ न कुछ चर्चा करने की इच्छा होती ही है। उसके बगैर मन को एक प्रकार से संतोष भी नहीं मिल पाता। सभी कलाओ का आधार इस अनुभव का आदान-प्रदान है। चाहे साहित्य हो या शिल्प हो, चित्र हो अथवा संगीत हो, सभी की अभिव्यक्ति इसी आधार शिला द्वारा होती है। नाट्य शास्त्र, अभिव्यक्ति के प्रगट करने का अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम है। वास्तव में प्राचीनकाल में गद्य अथवा पद्य के द्वारा कथाओं की अभिव्यक्ति हुआ करती थी। महाकाव्य गाकर सुनाए जाते थे और कथाएं श्रोताओ के आमने-सामने बैठ कर सुनाई जाती थी। इस परम्परा के पंथ पर पहला प्रहार मुद्रणकला के द्वारा हुआ। जिन लोककथाओ और काव्यो को पहले सुना जाता था, अब उनका वाचन आरम्भ हो गया। नाटक भी छपने लगे थे। जनता पहले जिन नाटको को केवल देखा करती थी, अब पढने लगी थी। सौभाग्य से, पुस्तको के प्रकाशन ने नाट्यकला पर ऐसा भयंकर प्रहार नही किया। जिस प्रकार से मोदक का आनन्द खा कर मिलता है, उसी प्रकार से नाटक का रसास्वादन देख कर ही हो पाता है। शताब्दियों तक यह कला और इसका व्यवसाय भली भांति टिका रहा और जब, उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में रजतपट पर चित्रो का नर्तन आरम्भ हो गया, तब अवश्य इस व्यवसाय को एक हलका-सा झटका लगा। अब जनता नाट्यगृहों को छोड़ कर मूक चित्र देखने के लिए जाने लगी थी। परन्तु वहां जनता को पूर्णरूप से सतोष प्राप्त नहीं होता था। आखों की प्यास अवश्य बुझ सकी, परन्तु कानों के द्वारा मिलने वाला रस प्राप्त न होने से यह अभिव्यक्ति अपूर्ण रह गई। यह सत्य है कि चित्र देख कर ध्वनि के संस्कार जागरूक होते हैं, परन्तु नाट्य जगत में ध्वनि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मूक चित्रपट के ज़माने में रजतपट के सामने तबला पेटी वाले और निवेदक बैठा करते थे और जहा चित्रपट में आवश्यकता होती थी संगीत दिया करते थे। निवेदक, जहां-तहा चित्र के सम्बन्ध में कुछ वाक्य बोला करता था। परन्तु, समय बीत जाने पर मूक चित्रपट को वाणी प्राप्त हुई, और फिर नाट्यगृहो को छोड़ कर चित्रशालाओं में भीड़ होने लगी। परन्तु, रंगमच की मर्यादा है, जब कि बोलते हुए चित्रों में कोई प्रतिबंध नही था। समुद्र के घन जैसे गम्भीर गर्जन से ले कर नायिका की मंजुल निःश्वास तक ऐसी कोई भी ध्वनि नही है, जिसकी चित्रपट के द्वारा अभिव्यक्ति सम्भव न हो। छाया चित्रण करने वालों ने अपनी समग्र यत्र सामग्री के द्वारा पृथ्वी का पर्यटन कराया और ध्वनि लेखक ने फिल्म के एक टुकड़े पर ध्वनि का मुद्रण करके सिनेमा घर में बैठने-वाले दर्शकों को बैठे-बैठे पृथ्वी की प्रदक्षिणा करा दी। क्योंकि इस माध्यम में इतनी शक्ति थी। नाट्यशालाओं में यह जादू सम्भव नहीं था। शत-प्रति-शत

नाचती, गाती फिल्मो के आने के बाद नर्तकों, गायकों, लेखको, कवियों के लिए एक नए जगत का द्वार खुल गया और जिस प्रकार अमेरिका में कंचन प्राप्ति का समाचार सुन कर दौड आरम्भ हुई थी, उसी प्रकार सिनेमा जगत में प्रवेश पाने के लिए कलाकार और यंत्रमर्मज्ञ दौडने लगे और रंगभूमि के कुछ गिने-चुने सेवको ने नाट्यशालाओं के खाली रहने पर भी, रात-रात भर भूखे पेट रहते हुए भी अपनी मर्यादा के आसन को नही छोडा। यह शोर मचा कि नाट्यकला मर गई। लेकिन देखा जाए तो नाट्यकला नही मरी। हा नाट्यव्यवसाय अवश्य समाप्त हुआ। क्योकि चित्रपट में, नाट्यकला ने ही एक नवीन स्वरूप धारण किया था। रंगमंच के नाटको का समावेश ही चित्रजगत की छाया कथाओ में हुआ। तंत्र नया था, लेकिन उसकी आत्मा तो वही थी। चाहे वह चित्रपट की कथा हो या रंगमंच के नाटक की, कथावस्तु वही रही। दोनो ही जगह कथानक के प्रवाह में सघर्ष की चिनगारी के द्वारा ही बल मिला। परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि बोलपट की शक्ति अधिक थी और आज भी है। चित्रजगत में कला को विज्ञान का बहुत बडा अवलम्ब मिला, जबकि नाटक का प्रभाव एक खेल के साथ समाप्त हो जाता था। नाट्यगृहके अन्दर वहा के पाच या सात सौ दर्शको और रगमच पर अभिनय करने वाले कुछ कलाकारो की एक सीमा थी। एक बार फिर उसी नाटक का खेल करने का अर्थ होता था, एक बार फिर आरम्भ से ले कर अन्त तक कलाकारो के साथ वही परिश्रम और दर्शको की फिर वही जमावट जबकि सिनेमा-जगत मे यह बात नही है। एक बार जो मेहनत करनी होती है, उसके समाप्त होते ही फिर पुस्तकों के छापे खाने की तरह उस खेल की छपाई आरम्भ हो जाती है और उसे दुनिया भर में कही भी भेजा जा सकता है। कलाकार अपनी कला का जो चमत्कार एक बार दिखा देते है, वह भी एक प्रकार से मुद्रित हो जाता है। सकलन कर्ता, यदि अपनी उसमें कुछ बुद्धिमानी दिखाता है, तभी कुछ बदलने की सम्भावना होती है, अन्यथा नही।

दूसरा चमत्कार ससार की किसी भी भाषा मे चित्र के भाषांतर की यान्त्रिक सुविधा है। नाटक करने वाले कलाकार अधिक से अधिक एक या दो भाषाओ के द्वारा अपने नाटक खेल सकते है। परन्तु, चित्रपट के संसार में किसी भी काल और किसी भी भाषा के शब्दों का सम्बन्ध, फिल्म की पट्टी के साथ, भाषातर वाणी द्वारा जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार इन सभी साधनो के द्वारा चित्रपट को ही मनोरजन का बडा साधन माना जा सकता है। कुछ समय तक, चित्रपट ने अन्य सभी कलाओ को कुचल कर अपना राज्य प्रस्थापित कर लिया था, उन्ही के द्वारा चित्रपट का एक अनोखा प्रतिद्वद्वी रेडियो के रूप में उत्पन्न किया गया। नाटक और चित्रपट देखने के लिए लोगो को घर छोड कर बाहर जाना पड़ता था। अब जनता को यह नन्ही-मुन्नी जादू की पिटारी रेडियो के रूप में घर बैठे ही नाटक और गीत सुनाने लगी। पहले लोग संगीत सुना करते थे, नाटक देखा करते थे। अब वे नाटको का दर्शन भी सुन कर करने लगे। यह जानते हुए भी कि यह केवल ध्वनिमाध्यम का चमत्कार है, कला के इस बालक रेडियो को नाटक और चित्रपट से अधिक यश मिला। साथ ही इस माध्यम को यह शक्ति प्राप्त है, कि ध्वनि निरूपण के द्वारा यह अपने घरों तक देश-देश की कलाकृतियों को पहुचा पाता है। चित्रपटो ने नाट्यगृहो को सूना किया और रेडियो ने महफिलो की भीड़ कम कर डाली। नाटको में रंगमच की सीमा थी, चित्रपटो मे सजीव दृश्यो की सीमा थी, और रेडियो को श्रवण शक्ति के द्वारा आनन्द प्रदान करने की शक्ति थी। परन्तु बीसवी शताब्दी की चालीसवी सीढ़ी को पार करने वाले शास्त्रज्ञानियो ने इस कला क्षेत्र में एक और नूतन क्रान्ति का दर्शन कराया, मनोरंजन का एक नया साधन प्रस्तुत किया। रेडियो से कान लगा कर हम सारे

संसार की बाते सुन सकते थे। परन्तु, पुराणो के त्रिकालदर्शी दर्पण के समान नूतन आविष्कार टेलीविज़न अथवा 'दूर दर्शन' नाम का यह दर्पण अब हमें विश्व के दर्शन कराने लगा। रेडियो के द्वारा ध्वनि-नाट्य घरों में आए थे, और टेलीविज़न द्वारा रंगमंच और नाटक ही नही, बल्कि विशाल क्रीणांगणो की क्रीणा तक को टेलीविज़न के द्वारा हम अपने दीवानखाने में रखी हुई मेज़ पर देखने लगे। टेलीविज़न केवल नाटको के लिए ही नही, बल्कि सामाजिक और सास्कृतिक जीवन के लिए एक चुनौती है। अब हमको सिनेमा के दरवाज़े पर लाइन लगा कर खडा नही होना पड़ता। भीड़ का डर नही है। केवल बटन दबा कर, मनोरंजक या शैक्षणिक जो भी कार्यक्रम चाहते हैं, टेलीविज़न के द्वारा घर बैठे उसका दर्शन हो जाता है। ससार के विचारक इस विचार में खोए हुए हैं, कि शास्त्रज्ञानियो ने मोहिनी का निर्माण किया है, या भस्मासुर का। अभी इस यंत्र का इतना अधिक प्रचार नही हुआ है। परन्तु जिस देश में इसका प्रचार हुआ है, वहां के सामाजिक जीवन पर टेलीविज़न ने अपना अद्‌भुत प्रभाव दिखाया है। सुबह हो, या दोपहर, या शाम घर के छोटे, बड़े-बूढे इस छोटे से परदे पर टकटकी लगाए देखते रहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि घर में किसी मेहमान के आने पर उससे बाते करने का समय भी नही मिल पाता। वैसे ही सिनेमा का प्रभाव बहुत काफी है, उसके साथ ध्वनिनिरूपण की सहायता से इस कार्यक्रम के निर्माता उत्कृष्ट कार्यक्रम प्रस्तुत करते है, तो दर्शक घंटो बैठे-बैठे उसे देखते ही रहते है। टेलीविज़न देख कर ऐसा लगता है जैसे हम चित्रपट और नाटक के सम्मिलित रूप को घर बैठे देख रहे हैं। यह मेरा आत्मविश्वास है कि सजीव कलाकारो के द्वारा किए गए नाटक, चित्रपट पर दिखाए गए चित्र, लेखको के द्वारा सुनाई गई कथा और रेडियो पर गाए हुए गीत का अलग ही महत्व है। परन्तु सजीव कलाकारो की कला के दर्शन की बात कुछ और ही है। और जिस देश में नाटको की परम्परा है, वहा रेडियो अथवा टेलीविज़न द्वारा उससे समाप्त करने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। यह सत्य है कि मनोरंजन के साम्राज्य में नाट्यकला का एकाधिपत्य हो चुका है। दोनो के बीच में स्पर्धा अवश्य उत्पन्न हुई, परन्तु रगमंच के सजीव मनुष्यो की कला के उत्तम प्रयोग की झलक न रुपहरी परदे पर आई, न दूरदर्शन यन्त्र के द्वारा प्राप्त हुई। और इसीलिए इस बात को मैं स्वीकार नही करता कि टेलीविज़न दीवानखाने का रगमच है। वह एक प्रभावशाली शिक्षक हो सकता है, उत्कृष्ट मार्गदर्शक हो सकता है, संवाददाता हो सकता है, घर बैठे दुनिया भर की सैर करा सकता है परन्तु नाटको के समान प्रत्यक्ष प्रमाण देने वाली कला के जिस सजीव अंग को चित्रपट नही छीन सका, उसे टेलीविज़न भी नही छीन सकेगा। देखा जाए तो टेलीविज़न का प्रभाव सिनेमागृहो के दर्शको की सख्या पर पड़ा है, नाट्यशाला के स्नेहियो पर नहीं। आज विदेश में भी रेडियो, चित्रपट और टेलीविज़न की शक्तिशाली स्पर्धा में, एक विशाल वृक्ष के समान नाट्यकला अपने सजीव रूप में सुसज्जित खडी है। उसे चैतन्य शक्ति का आधार प्राप्त है। रंगमंच पर कला को वास्तविक आकार देने वाले कलाकार और दर्शक दोनों का जीवन पर्यन्त अटूट सम्बन्ध है। वे दूध और पानी की तरह घुल-मिल गए हैं। मनुष्य-मनुष्य से एकरूप हो सकता है। परन्तु यंत्र के द्वारा परदे पर दिखाए हुए मनुष्य के साथ वह एकरूप नही हो सकता। नाटको को देख कर हम भूल जाते है, लेकिन चित्र इतने जल्दी नही भूल सकते। इसीलिए आज भी मुझे ऐसा ही लगता है, कि टेलीविज़न सजीव नाटकों को नहीं मिटा सकेगा। दोनो की अपनी अलग-अलग शक्ति है। टेलीविज़न में हम घर में बैठाने की शक्ति है, और नाटक में घर से बाहर निकाल कर नाट्यगृह में बैठाने की।

—बम्बई से प्रसारित

आज का दिन

जी० एन० फिराक़

दुखी-दिलों को दाग जिगर के फिर हो आए याद,
शालिमार से 'न्याय-न्याय' का फिर उठता है नाद,
विरही के अंतर मे गूजा फिर प्रिय का संवाद।
आज दिवस आया, खुशियों का, हास का,
आज दिवस आया उत्सव-उल्लास का,
गिरा रहे है सरफरोश अब सम्राटों का ताज,
सूली पर मंसूर चढ़ा कल, गरज रहा है आज,
आज जालिमों पर विजयी है कल का दलित समाज।
दिन है आज कसाला करने वालों का,
दिन है आज उजाला करने वालों का।
आज ज़िदगी की हलचल से मौत हुई वदरंग,
आज सत्य के लिए छिड़ा मानव-मानव मे जंग,
लगी गगन मे आग, कापता है धरती का अंग।
आज दिवस है वीरों के संकल्प का,
आज दिवस है जग के कायाकल्प का।
आज मुहब्बत के सपनों मे आई फिर से जान,
आज जिंदगी के उपवन पर छाई है मुसकान,
आज सुनाओ अरमानों को फिर वसंत का गान।
आज दिवस है इन्कलावी नाद का,
आज दिवस है दलितों के आह्लाद का।
आज करो प्रण, वतन करेंगे हम फिर से आवाद,
कभी न होने देगे अपने सपनों को वर्वाद,
सदा करेंगे अमर शहीदों की गाथाएं याद।
निकलेंगे हम आज नए अंदाज से,
मांग संवारेंगे नव युग की, नाज से।

[रूपान्तरकार : डा० हरिवंशराय बच्चन] —दिल्ली से प्रसारित

चेरी की डाल वाला इंसान

डा० धर्मवीर भारती

चीड के लम्बे नाजुक पेड, ढलानो पर खिले सफेद नीले फूल, एक पर एक छाई हुई हरी-नीली पहाडियो की कटी-फटी गिख रेखाएं, घुमावदार पहाड़ी रास्तो और चढ़ते-उतरते आवारा बादलो की पृष्ठभूमि में वह अजब-सा लग रहा था। गोया वह वहा है नही, किसी सचित्र पत्रिका में से काट कर चिपका दिया गया है। सर पर पुलिस की पुरानी लाल पगड़ी, चिथडी खाकी पोशाक, घुटनो तक फटी जुर्राबें, चटका हुआ खुरदरा जूता, कमर में पेटी और कधे पर सूखी पत्तियो और पुराने कागजो का बोरा—कमर की पेटी में डडे की जगह एक चेरी की फूल-लदी डाल, काला झुर्रियो पड़ा बूढा चेहरा!

टेढ़े-मेढे पहाड़ी रास्ते पर चक्कर खाती हुई बस उतर रही थी। सामने सुन्दर घाटी थी, चीड़ के जंगल थे। बादलो की परतें थी। पहाडी फूल के यह सब पीछे थे। उनके ऊपर थी वह रंग-बिरगी विचित्र मूर्त्ति जो स्थिर नही खड़ी थी, चल भी नही रही थी। बीच रास्ते में खडी हाथ कभी ऊपर गिरा कर कभी दाए उठा कर, कभी बाएं फैला कर इशारे दे रही थी। मानो चौराहे पर ट्राफिक कन्ट्रोल कर रहा हो। बस अपनी गति से चलती हुई जरा आगे बढ कर अड्डे पर खड़ी हो गई। वहा मुसाफिरो के परमिट देखे जाते है। सवारियो की गिनती होती है और फिर बस चल देती है। बस के रुकते ही वह हाफता और भागता हुआ पीछे-पीछे आया और ठीक बस के आगे जाकर इंजन के सामने खड़े होकर उसने अटेन्शन की मुद्रा में पाव मिलाए, बदन ताना और खटाक से एक सैल्यूट दिया!

—पगला है।—किसी मुसाफिर ने दबी जबान कहा। बाकी अपनी-अपनी सीट पर चुपचाप बैठ रहे। वह चक्कर काट कर बस के बगल में आया और एक खिडकी के सामने खड़ा हो गया। बोला—हाथ को अन्दर करना बस चलने पर, नही खतरा होना, चोट लगना, पत्थर गिरना। खिड़की पर भद्र महिला बांह रखे बैठी थी। उन्होने बांह अन्दर कर ली। उसके चेहरे पर सफलता और अधिकार का कृतज्ञता-भरा भाव आया और उसने अटेन्शन होकर खटाक से सैल्यूट दिया। एक-एक कर उसने सभी की ओर देखा ....कुछ इस भाव से कि पहाड़ी रास्तों का जिम्मा उस पर है, वह न हो तो बसें खड्ड में जा गिरें, मुसाफिर जान-माल से जाएं।. कुछ इस भाव से कि अगर आप आना-दो आना उसे दे दें, तो वह मना नहीं करेगा। .. मुसाफिर सब चुपचाप बैठे रहे। जिससे उसकी नजर मिली उसने मुह अन्दर कर लिया।

उसने अपनी कमर से चेरी की फूल लदी डाल निकाली और उससे बस का रास्ता झाड़ने लगा और फिर सहसा खड़ा हो गया और जोर से बोला—हमारे मुलुक का आज़ादी खुसी का बात है, परसनता का बात है। पहाड़ का सीज़न जाता है, दीवाली आता है।

आना-दो आना बखसीस सिपाही फूलासिह की खातिर। ' सब चुप ! मुसाफिरों पर कोई असर नही।

—अरे भाई ! तुम्हें कप्तान साहब पूछ रहे थे। तुम्हारे साथी लोग पूछ रहे थे, कभी शहर हो आओ न —ड्राइवर ने उसे छेड़ते हुए कहा।

वह बोलते-बोलते रुक गया। उसके चेहरे पर अजब ममता भरी याद छा गई क्षण भर को। और फिर गर्व से बिना ड्राइवर की ओर देखे बोला—जाएगा, जरूर जाएगा। अभी हमारा तनखाह नही बांटा है। तनखाह आएगा, फूलासिंह जाएगा।

कुछ मुसाफिरो को रस आने लगा। उनके चेहरे की मुसकान देख कर ड्राइवर बोला—इसने शाब एक चोर को भगा दिया। उसका औरत बच्चा इसका पाव पडके रोता था। साहब डिसमिज बोल दिया इसको।

उसे जैसे चोट लगी। बस से दूर हट गया। बोला उसी मशीनी स्वर मे—आजादी चोर का, आज़ादी साहब का। आजादी गुण्डा का, आज़ादी साहब का ·

—चुपबे।—उसकी बात काट कर क्लीनर बोला और इजन ठंडा करने के लिए जो कवर खुला था, उसे गिरा दिया। अब बस चलेगी।

उसके मुह पर निराशा छा गई। किसी ने कुछ भी तो नही दिया। आना-दो आना तो दूर, पैसा-दो पैसा भी नही। अब अगली बस चौबीस घण्टे बाद आएगी। 'उसने एक बार फिर आवाज़ दी—सीज़न जाता है, दीवाली आता है। आजादी का दीवाली खुशी से मनाता है। बच्चा लोग को खिलौना देता है—सिपाही लोग को बखसीस देता है।

मुसाफिर सीट पर संभल कर बैठ गए। अब बस स्टार्ट होगी। किसी ने एक सिगरेट की डब्बी फेकी। उसने उठाई, खोली, खाली थी। उसकी पन्नी फेंक दी, दफ्ती बोरे में डाल दी।

इंजन घरघराया। बस चल दी। उसके मुख की निराशा आहत अभिमान में बदल गई। नही कोई कड़वाहट नही, कोई शिकायत नही। वह बैठ गया और बोरे में हाथ डाला। एक मुट्ठी कागज़ बिखेर दिए—फरमान पर फरमान ! कागज आएगा, कागज़ जाएगा। वह फिर बोला—फूलासिंह का तनखाह आएगा; कागज इधर से, कागज उधर से। कागज़ का आजादी, कागज का चोर।

बस ने घुमाव ले लिया था। एक फर्लांग निकल गया था कि फूलासिंह ने ज़ोर से बोरे को ठोकर मारी। हजारो कागज बिखर गए और प्राणपण से ज़ोर लगा कर फूलासिंह बोला—फूलासिंह का कागज ऊपर से आएगा, ऊपर से।—और उसने अटेन्शन खडे होकर एक बाह नीचे गिरा कर एक सीधी ऊपर की ओर उठा दी ···

कितनी देर तक वह ऐसे खड़ा रहा, नही मालूम। चीड के लम्बे नाजुक पेड, घुमावदार पहाड़ी रास्ते। हरे-भरे ढलानो पर कागज से काट कर चिपकाई गई तस्वीर की तरह। धीरे-धीरे बस आगे बढ़ी। पहाड़ियां उस पर छा गई। जंगलो ने उसे समेट लिया। एक विराट हरियाली की भवर में डूब गया वो, ओझल हो गया।

—इलाहाबाद से प्रसारित



रमेशचन्द्र दत्त

मन्मथनाथ गुप्त

रमेशचन्द्र दत्त एक योग्य प्रशासक, देशभक्त और उच्च कोटि के साहित्यकार थे। इतने सद्‌गुणो का एकत्र समावेश बहुत कम लोगो में होता है। साहित्यकार के रूप में उनकी गिनती बंगाल के युगप्रवर्तक साहित्यकारो में हैं। प्रशासक के रूप में उनकी स्थिति यह थी कि १९वीं शताब्दी में कमिश्नर के उच्च पद तक पहुंचने वाले एकमात्र भारतीय वही थे। रही उनकी देशभक्ति सो उसका परिचय उनके प्रशासन और साहित्य दोनो में हम पाते हैं। एक प्रशासक के रूप मे उन्होने हमेशा जनता का पक्ष लिया और नौकरशाही का विरोध किया।

वह एक प्रख्यात कुल में पैदा हुए थे। उनके प्रपितामह नीलमणि दत्त कलकत्ता के एक मशहूर हिन्दू नेता थे। उनके चाचा रसमय दत्त कलकत्ता के संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल थे और फिर इसके बाद जज हुए। श्री रसमय दत्त में भी हम प्रतिभा की वही विविधता देखते हैं, जो हम रमेशचन्द्र दत्त मे देखते हैं। रमेशचन्द्र के पिता ईशानचन्द्र दत्त बंगाल के सर्वप्रथम डिप्टी कलेक्टरो में से थे। यह वह युग था जब भारतीयों को डिप्टी कलेक्टर बहुत कम बनाया जाता था। कुमारी तरुदत्त का नाम एक अंग्रेज़ कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध है। वह रमेशचन्द्र दत्त की नजदीकी बहन लगती थी।

रमेशचन्द्र दत्त का जन्म इसी वातावरण में कलकत्ते में १८४८ के १३ अगस्त को हुआ। उनके पिता डिप्टी कलेक्टरी के सिलसिले में सारे बंगाल में घूमते रहते थे। इस प्रकार बालक रमेशचन्द्र को बंगाल के जिलो का अच्छा ज्ञान हुआ। यह स्मरण रहे कि उन दिनों रेलें नही थी और सारी यात्रा नाव, घोड़ा गाडी आदि से ही करनी पड़ती थी।

वह कम उम्र में ही मातृ-पितृहीन हो गए और अपने चाचा शशिचन्द्र की देखरेख में शिक्षा प्राप्त करने लगे। शशिचन्द्र स्वयं साहित्य प्रेमी थे और उनके घर में साहित्य की चर्चा बराबर हुआ करती थी।

रमेशचन्द्र १८६४ में मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। अपने स्कूल से परीक्षा देने वाले छात्रो में उनका नम्बर सबसे ऊपर रहा। १८६६ में उन्होने एफ० ए० की परीक्षा दी 'और उसमें वह विश्वविद्यालय में द्वितीय हुए। इसके बाद उनके जीवन में एक अजीब छलांग आती है। अब तक वह एक साधारण मेधावी छात्र की तरह चल रहे थे, पर अब उनमें जो प्रतिभा थी, उसने जोर मारा और वह एकदम असाधारण मार्ग पर चल निकले।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बिहारी लाल गुप्त और रमेशचन्द्र दत्त इन तीन युवकों ने षड्यन्त्र किया और ३ मार्च, १८६८ को वे इंग्लैंड रवाना हो गए। इनमें से केवल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने पिता की सम्मति से यात्रा की थी। बाकी दोनों घर से भाग गए थे। इसीलिए स्टीमर में जो तीन आसन लिए गए थे, उनमें तीनों का नाम नही था बल्कि वे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और उनके दो मित्रो के नाम से लिए गए थे। स्मरण रहे कि उन दिनो विलायत जाना,

यहा तक कि घर से भाग कर जाना केवल एक साहसिक कार्य ही नही था, बल्कि उसमें और भी तरह-तरह की बाते थी, जिन पर उन्हें सोचना पड़ा था। अभी हिन्दू समाज में समुद्र यात्रा निषिद्ध समझी जाती थी और जो लोग समाज के बाधा-निषेध को बिना माने हुए समुद्र यात्रा करते थे, उन्हें समाज निकाला दे दिया जाता था, पर इन तीनो नौजवानो ने इन बातो की परवा नही की।

उन्हें भविष्य की चिन्ता नही थी और यदि थी तो वे यह सोचते थे कि जब कोई बुरा काम नही किया है, तो समाज से क्यों डरना। इन भागने वालो मे से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी बाद को बगाल के बहुत बडे नेता हुए, यहा तक कि उन्हें बंगाल का मुकुटहीन राजा कहा जाता था। बिहारीलाल गुप्त आई० सी० एस० के एक प्रसिद्ध सदस्य रहे और बहुत सालो तक प्रशासक के रूप मे कार्य करने के बाद वह कलकत्ता हाई कोर्ट के जज के पद से निवृत्त हुए।

ये भागे हुए युवक इंग्लैड पहुचे और उन्होने वहा पढना शुरू किया। १८६९ की आई० सी० एस० परीक्षा में तीन सौ अग्रेज परीक्षार्थी थे, पर रमेश चन्द्र दत्त को तीसरा स्थान मिला। अग्रेजी साहित्य में उनका स्थान दूसरा था। संस्कृत मे उनका स्थान प्रथम रहा, सो उसमे कोई आश्चर्य की बात नही।

रमेशचन्द्र दत्त जब छात्र के रूप मे इंग्लैंड में रहे, तो वह केवल पठन-पाठन मे ही लगे रहे, ऐसी बात नही। वह बडी सावधानी से वहा के सारे आन्दोलनों का निरीक्षण करते रहे। वह अक्सर ब्रिटिश संसद में जा कर बैठते और ग्लैडस्टन तथा डिजराइली के भाषण सुनते थे। उन दिनो भारत के विशेष मित्रो में जान ब्राइट और हेनरी फाकेट प्रसिद्ध थे। रमेशचन्द्र दत्त इन लोगो से मिले।

इस प्रकार ब्रिटिश राजनीति के साथ चाक्षुष परिचय प्राप्त करने के अलावा वह वहा के साहित्यकारों तथा विद्वानों के सम्पर्क में भी आने का प्रयास करते रहे। हितवाद के प्रतिपादक जान स्टुअर्ट मिल जिन सभाओं में भाषण देते थे, वह उनमें भी जाते थे। कई बार वह प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स की सभाओं में भी गए, जहा चार्ल्स डिकेन्स अपने उपन्यास का कुछ अंश पढ़ कर सुनाते थे। लन्दन विश्वविद्यालय कालेज में उन्होने हेनरी मार्ले और थियोडोर गोल्डस्टकर नामक उस समय के दो प्रसिद्ध अध्यापको के साथ अन्तरंग परिचय प्राप्त किया।

इस प्रकार जब तक वह इग्लैंड में रहे, तब तक वहां की सर्वोत्कृष्ट प्रतिभाओ के सम्पर्क मे आते रहे और अपने मन को ऐश्वर्यशाली और विस्तृत बनाते रहे।

जब वह आई० सी० एस० हो कर लौटे तो उन्हे बंगाल के विभिन्न ज़िलो में प्रशासक के रूप मे काम करना पडा। १८७४ में नदिया जिले में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, वहा उनकी नियुक्ति की गई और उन्हें लोगो को सहायता पहुचाने के कार्य में दिल खोल कर भाग लेने का मौका मिला। इसी प्रकार जब १८७६ में दक्षिण पूर्व बंगाल मे भयंकर तूफान आया और हज़ारो लोग बेघरबार हो गए तो उन्ही को इस कार्य के लिए भी भेजा गया। गंगा के मुहाने के पास दक्षिण शहबाजपुर नामक द्वीप मे प्रशासन बिल्कुल खतम हो गया था। वहां उसे पुन. संगठित करने के लिए उन्हें ही भेजा गया। इसी प्रकार उन्हें कही हैजे के रोगियों की मदद और कही अव्यवस्था दूर करने के लिए भेजा गया। उन दिनो बगाल के साहित्य-संसार मे बकिमचन्द्र बहुत ज़ोर से चमक रहे थे, वह भी सरकारी नौकर थे। इन दोनो महारथियो का परिचय हुआ और यह संयोग बंगला साहित्य के लिए बहुत फलप्रद

प्रमाणित हुआ। रमेशचन्द्र दत्त का यह खयाल था कि क्योंकि उन्होंने अंग्रेजी में शिक्षा पाई है और इंग्लैंड में ही उनका बहुत सा समय गया है, इसलिए वह अंग्रेजी में ही लिख सकते है, पर बंकिमचन्द्र ने उनसे कहा नहीं आप बंगला में लिखिए, आपको अवश्य सफलता मिलेगी। रमेशचन्द्र दत्त को शंका थी कि मुझे तो बंगला की साहित्यिक शैलियों का परिचय नही है, इसलिए मैं कैसे बंगला में लिख पाऊंगा।

बंकिमचन्द्र ने कहा कि आपके जैसा विद्वान और अपनी संस्कृति में पगा हुआ व्यक्ति जैसे भी लिखेगा वही अच्छी शैली होगी। इस पर रमेशचन्द्र ने बंगला में लिखना शुरू किया और बंकिमचन्द्र ने यह भविष्यवाणी की कि बंगला साहित्य में उनका स्थान बहुत ऊंचा होगा।

रमेशचन्द्र दत्त ने हिन्दू शास्त्रो का बहुत अच्छी तरह अध्ययन किया था और चाहते थे कि इस सम्बन्ध में एक ऐसी पुस्तक लिखें जिसमें सारे हिन्दू शास्त्रो का निचोड़ आ जाए और जो घर-घर में पहुंच सके। इस दिशा में भी उन्हें बंकिमचन्द्र से अनुप्रेरणा मिली। बाद को चल कर उन्होने दो खण्डों में प्रकाशित हिन्दू शास्त्र नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा—"आज से तीन साल पहले एक दिन प्रात स्मरणीय बंकिमचन्द्र के साथ भेंट हुई, तो मैंने बातों-बातों में उनसे यह जिक्र किया कि विपुल हिन्दू शास्त्रों का सार-संग्रह करके एक पुस्तक में पेश करना सम्भव है कि नही? मैंने यह पूछा था कि यह ऐसी पुस्तक हो जिससे हिन्दू अपनी नीति के सम्बन्ध में शिक्षा प्राप्त कर सकें। बंकिमचन्द्र उदारचेता, उत्साही और स्वदेश हितैषी व्यक्ति थे। जिस प्रस्ताव को सुन कर दूसरे लोग सिमट जाते थे, वह उसी को सुन कर प्रफुल्लित होते थे। दूसरे लोग जिस कार्य से पनाह मागते थे, वह उसी में उत्साह का प्रदर्शन करते थे। उन्होने मेरे प्रस्ताव का समर्थन किया। यदि वह आज जीवित होते तो यह पुस्तक गौरव मंडित हो कर प्रकाशित होती।"

रमेशचन्द्र ने बंगला लिपि में सारी ऋग्वेद संहिता प्रकाशित की, साथ ही उसका बंगला अनुवाद भी किया। उन्होंने ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया। हमारे देश की अवस्था उस समय ऐसी थी कि उन कामों पर खुश होने की बजाय बहुत से लोगों ने रोड़े अटकाए और उन लोगों ने इस पर दुख और आश्चर्य प्रकट किया कि ऋग्वेद की पवित्र वाणी अब एक अब्राह्मण के द्वारा अनूदित हो कर साधारण जनता के सामने आ रही है। बंगला भाषा के पत्रो में इस पर बहुत से लेख निकले और रमेशचन्द्र दत्त को अनधिकारी और जाने क्या-क्या कहा गया। अजीब बात तो यह है कि अनुवाद प्रकाशित होने के पहले से ही लोगो ने यह प्रचार किया कि अनुवाद ठीक नही है। पर इस अपप्रचार का परिणाम विपरीत ही रहा। यदि एक तबका ऐसा मौजूद था जो ऋग्वेद का भाषानुवाद करने पर नाराज हो रहा था, तो दूसरा तबका ऐसा था जो इस पर बहुत खुश था। इन सारी बातो का नतीजा यह हुआ कि पुस्तक का प्रचार बहुत तेजी के साथ हुआ। १८८६ तक यह अनुवाद पूरा हो गया। इस प्रकार रमेशचन्द्र दत्त को बंगला में ऋग्वेद का अनुवादक होने का भी श्रेय प्राप्त है।

इस महान कृति के अतिरिक्त उन्होंने कुल मिला कर छः बंगला उपन्यास लिखे, जिनमें 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' (१८७८) 'राजपूत जीवन सन्ध्या' (१८७९) सबसे प्रसिद्ध हैं। इन उपन्यासो से यह प्रमाणित होता है कि रमेशचन्द्र दत्त संकीर्ण प्रादेशिकता के दायरे में मातृ-भूमि की कल्पना नही करते थे। महाराष्ट्र और राजस्थान ने जो वीर पैदा किए उन्हीं को आधार बना कर इन उपन्यासों की रचना हुई। जो लोग बिना जाने बूझे और

सोचे-समझे यह कह सकते है कि बंगाल में प्रादेशिकता का ही बोलबाला रहा, उन्हें यह भूलना नही चाहिए कि बंगला के उपन्यासकारो ने, विशेषकर बंकिमचन्द्र और रमेशचन्द्र ने अखिल भारतीय देशभक्ति को ही अपने उपन्यासो की भूमि बनाई।

इस सम्बन्ध में मै वैयक्तिक जानकारी से यह भी बता दू, कि रमेशचन्द्र दत्त और बंकिमचन्द्र के इन देशभक्तिमूलक ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रयोग क्रांतिकारी दल में क्रातिकारी साहित्य के रूप में होता था। उनसे वह वातावरण बनता था जिसमें क्रातिकारी विचार पनप सकते थे। यहां यह बता दिया जाए कि एक बगला उपन्यास से ही भारत को वन्देमातरम् मिला। अस्तु!

उक्त दो उपन्यासो के अतिरिक्त रमेशचन्द्र ने वगविजेता (१८७४), माधवी कंकण (१८७७), संसार (१८९३) और समाज (१८९४) भी लिखे। वगविजेता और माधवी कंकण भी ऐतिहासिक उपन्यास है। वगविजेता का समय १६ वी शताब्दी का मध्य भाग है तथा राजपूत जीवन सन्ध्या, माधवी ककण और महाराष्ट्र जीवन प्रभात का काल १७वी शताब्दी है। ये चारो उपन्यास बाद को चल कर 'शतवर्ष' नाम से भी प्रकाशित हुए थे, क्योकि इनमें अकबर, जहांगीर, शाहजहान और औरगज़ेब, इन चार बादशाहो के सौ वर्ष व्यापी राज्यकाल का विवरण दिया गया था।

इन उपन्यासो मे देश-प्रेम के अलावा लेखक की अद्भुत सृजन शक्ति का भी परिचय मिलता है। डाक्टर सुकुमार सेन के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यासो में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि सुन्दर रूप से होने के साथ ही सामाजिक उपन्यासो में यानी 'संसार' और 'समाज' मे गांव का जो चित्रण हुआ है, वह बहुत ही अभूतपूर्व है। गाव के शात, कोमल, मधुर जीवन के चित्रण में भी रमेशचन्द्र अग्रगामी थे। इनके पहले लालबिहारी दे ने वर्द्धमान के ग्रामीण इलाको का चित्रण किया था, पर उन्होंने ऐसा अंग्रेजी में ही किया था। बंगाल मे इस प्रकार के चित्रण का प्रारम्भ करने का श्रेय रमेशचन्द्र को ही है।

रमेशचन्द्र प्रशासक के रूप में काम करते रहे और साथ ही अत्यन्त महत्वपूर्ण साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्य भी करते रहे। १८८३ के आसपास उन्होने बंगीय साहित्य परिषद् की स्थापना की। इस परिषद् ने बाद को चल कर बहुत बड़े काम किए और बंगला साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध मे बहुत से शोध भी इसी के तत्वावधान में हुए।

ग्यारह साल सेवा करने के बाद वह जिला मजिस्ट्रेट हो गए, यह एक बहुत बड़ी घटना थी और अग्रेज़ों ने इसका बहुत विरोध किया था। जब उनकी सेवा २२ साल की हो चुकी तब यह समझा गया कि अब उन्हें कमिश्नर बनने से किसी भी तरह रोका नही जा सकता। अंग्रेज़ अधिकारी यह नही चाहते थे कि रमेशचन्द्र किसी भी हालत में कमिश्नर बनाए जाएं, पर उनका कार्य इतना अच्छा रहा और सारे कार्य उन्होने इतनी योग्यता से किए थे कि १८९४ के अप्रैल मे वह वर्द्धमान डिवीज़न के कमिश्नर बना दिए गए। १८९७ के अक्तूबर में २६ साल की सेवा के बाद उन्होने आई० सी० एस० से छुट्टी ले ली।

वह चाहते थे कि अब और भी स्वतन्त्रता पूर्वक साहित्य सेवा करें तथा राजनीति में भाग लें, पर यह द्रष्टव्य है कि उन्होने सारी साहित्यिक रचनाएं, जिनके कारण उनकी आज विशेष ख्याति है, सेवा के ज़माने में ही प्रस्तुत की थीं। १८९९ में वह लखनऊ कांग्रेस में गए। इस प्रकार वह डबल्यू० सी० बनर्जी आदि नेताओ के साथ कार्य करते रहे। उन दिनो कांग्रेस न तो जन-संस्था थी और न कोई संग्राम-शक्ति

संगठन। उन दिनों वह आवेदन-निवेदन का एक सगठन था और रमेशचन्द्र दत्त इसमें वहुत सफल रहे। उन्होने इग्लैंड में जाकर भारतीयो की अवस्था पर भाषण भी दिए और अग्रेजो को यह समझाया कि भारतीयो को अधिकार सौंप देना चाहिए। इस सिलसिले में उन्हें एक बार लार्ड कर्जन से भी लोहा लेना पड़ा। लार्ड कर्जन इस मत के प्रतिपादक थे कि भारतीय जिम्मेदार शासन करने के योग्य नही है। रमेशचन्द्र दत्त ने इसका विरोध किया।

हमने रमेशचन्द्र दत्त के सम्वन्ध में अव तक जो कुछ कहा, उससे यही लगता है कि वह उच्च कोटि के साहित्यकार और प्रशासक थे, पर उन्होने 'ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास' नामक एक पुस्तक लिखी जिससे यह ज्ञात होता है कि वह अर्थशास्त्र के भी वहुत बड़े विद्वान थे। उन्होने भूमि के वन्दोवस्त सम्वन्धी रिकार्डों और कागजो का अच्छी तरह अध्ययन किया, न जाने कितनी फाइलें देख डाली और तव यह पुस्तक लिखी।

उन दिनो गायकवाड़ एक प्रगतिशील राजा समझे जाते थे। उन्होने रमेशचन्द्र को अपने यहा प्रशासन में भाग लेने के लिए वुलाया और रमेशचन्द्र ने यह देखा कि ब्रिटिश भारत में जो सुविधा नही है, वह यहा है। तदनुसार उन्होने बड़ौदा का राजस्व मन्त्री होना स्वीकार किया। उन्होने इन दिनो भगिनी निवेदिता को जो पत्र लिखा, वह यहा उद्धृत किया जाता है—मैं यह कोशिश कर रहा हूं कि खेतिहरों की जमीन पर जो अत्यधिक टैक्स है, उससे उन्हें वचाऊं। मैं यह चेष्टा कर रहा हूं कि पूजीपतियो को समझाऊ कि वे नई मिलें खोलें और उद्योग चालू करें। यदि मैं व्यवस्थापिका परिषद् का ढंग से निर्माण कर सकू और राज्य का कार्य जनता के हित में और जनता के सम्पर्क में चलवा सकू तो अपना श्रम सार्थक समझूगा। सव कुछ खुला होगा। कोई भी वात पीठ पीछे गुप्त तरीके से कष्ट देने के ढग से या तानाशाही ढग से नही होगी। कुछ लोग जरूर कहेंगे कि यह तो स्वप्न द्रष्टा है, पर कुछ भी हो, निष्क्रियता और अवरुद्धता में जागते रहने की अपेक्षा कार्य और प्रगति के विषय में स्वप्न देखना भी अच्छा है। मैं तो प्रथम ढग ही अपना सकता हूं, शेष मेरी प्रकृति के विरुद्ध है।

रमेशचन्द्र दत्त ने केवल स्वप्न ही नहीं देखे वल्कि उन्होने गायकवाड से वहुत से काम करवाए। किसानो का लाखो का लगान माफ करवाया, धनियो पर टैक्स लगवाया। पहले धनी टैक्स नही देते थे, वल्कि गरीव ही टैक्स देते थे। यह उस युग में वहुत वडा कार्य था।

वाद को रमेशचन्द्र दत्त इसी राज्य में उच्चतर पद पर नियुक्त हुए और उनके हुक्म से सारे राज्य में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रवर्त्तन हुआ। आगे चल कर वह विकेन्द्रीकरण कमीशन के सदस्य वनाए गए। वहां भी वह कमिश्नरो और कलेक्टरो की तानाशाही और गैरजिम्मेदाराना अधिकारो के विरुद्ध लड़ते रहे।

सुदीर्घ कर्ममय जीवन के वाद १९०९ के ३० नवम्वर को उनकी मृत्यु हुई। प्रशासन सम्वन्धी उनका कार्य शायद भुला दिया जाए क्योकि उन्होने विदेशी शासन की ओर से कार्य किया, पर एक साहित्यकार और देशभक्त के रूप में उनका नाम अमर रहेगा।

—दिल्ली से प्रसारित

तिल कन्या

शेख गुलाव

अंधियारी और उजियारी दो सगी वहनें थी। अंधियारी बड़ी और उजियारी छोटी थी। अंधियारी का रूप काली रात जैसा और उजियारी का रूप चन्दा जैसा था। सब लोग उजियारी के रूप की सराहना करते थे पर अंधियारी के नाम से मुह बिचकाते थे। इससे अंधियारी के मन में अपनी छोटी वहन के लिए बड़ी जलन होती थी। वह मनौती मनाती कि कोई ऐसी बीमारी आ जाए, जिससे उजियारी या तो कुरूप हो जाए अथवा मर जाए। जब बहुत दिनो तक उसकी यह इच्छा पूरी नही हुई, तब एक दिन खुद ही अपनी वहन की हत्या करने के लिए तैयार हो गई।

एक दिन जब वे दोनों पानी लाने कुए पर गई थी, अंधियारी ने मौका पाकर उजियारी को कुए मे ढकेल दिया। उजियारी कुएं में तो गिर गई पर डूबी नही। कुएं में एक जड़ लटक रही थी, वह उसी को पकड़ कर लटक गई। कुएं के पास पीपल का एक वृक्ष था। उसकी डाल पर एक कबूतर बैठा था जो यह सब तमाशा देख रहा था। वह अपनी गुटर-गू आवाज मे अंधियारी से वोला—ए लड़की! तूने अपनी वहन को कुएं में तो ढकेल दिया पर तू क्या यह समझती है कि इससे तेरा रास्ता साफ हो गया है। देख कही तेरी दशा भी तिल कन्या जैसी न हो जाए, क्योकि संसार की सदा से यही रीति है कि जो जैसा व्यवहार दूसरे के साथ करता है, उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार होता है। भले का बदला भला और बुरे का वदला बुरा मिलता है।

अंधियारी ने कहा—भला वता तो ऐसा किस तरह होता है।

कबूतर ने कहा—तू बैठ जा, मै तुझे तिल कन्या की कहानी सुनाता हूं।

अंधियारी कुए की जगत पर बैठ गई और कबूतर ने कहानी कहनी आरम्भ की। कबूतर बोला—बहुत पुरानी बात है, किसी गाव में एक ठाकुर रहता था। वह गरीब था। दिन भर मेहनत-मजदूरी करना और रात को चैन से सोना, यही उसका काम था। उसके कोई सन्तान नही थी, इसका दुख उसकी स्त्री को अधिक था। वह रोज नहा-धो कर पीपल के वृक्ष मे जल चढाती और आंचल फैला कर सन्तान का वरदान मागती थी। एक दिन जब वह आंचल फैला कर मनौती मान रही थी, उसके आंचल में पीपल के दो फूलों में तिली भरी थी, एक में काली और दूसरी में सफेद तिली। एक-एक फूल इन्ही कोठियों में उसने रख दिया।

वात पुरानी हो गई। एक रात जब ठाकुर-ठकुराइन सो रहे थे तो तिल की कोठी में से एक आवाज उन्हें सुनाई दी। ऐसा जान पड़ा जैसे कोई लड़की मधुर-सुर में गा रही है। आवाज इस तरह की थी—

ए री मेरी मातु लडैंती, मत होवे दुखियारी।
तेरी कोठी में तो खेले, तिल कन्या ये प्यारी॥

भाग जगा ले, गोद खिला ले, हो जा री सुखियारी।
मेरी मातु लड़ैंती ।।

ऐसी मीठी धुन को सुन कर ठकुराइन के मन में माता की ममता जाग उठी। उसने झपट कर कोठी का मुह खोल डाला। कोठी का मुंह खुलते ही क्या देखती है कि कोठी के भीतर एक सुन्दर कन्या खेल रही है। रंग उसका सांवला है। ठकुराइन ने झट से कन्या को गोद में उठा लिया और छाती से चिपका कर प्यार करने लगी। ठाकुर भी प्रसन्न हो गया। भगवान ने कोठी फोड़ कर मनमानी मुराद दे दी थी। अब दोनो कन्या के प्यार में मग्न हो गए।

थोड़ी देर के बाद दूसरी कोठी से जिसमें सफेद तिली भरी थी, वैसी ही गाने की आवाज़ आने लगी—

ऐ री मेरी मातु लड़ैंती, मत होवे दुखियारी।
तेरी कोठी में तो खेले, तिल कन्या ये प्यारी ।।
भाग जगा ले, गोद खिला ले, हो जा री सुखियारी।
मेरी मातु लड़ैंती ।।

आवाज सुन कर दोनो कोठी के पास गए और जैसे ही कोठी का मुह खोला, चन्दा के समान सुन्दर एक कन्या उन्हें खेलती हुई दिखाई दी। ठकुराइन ने फिर लपक कर कन्या को उठा लिया और सीने से लगाकर चूमने लगी।

अब ठाकुर और ठकुराइन दोनो बड़े सुखी थे। उनकी दो लड़कियां थी। एक काली और दूसरी गोरी। काली का नाम उन्होने श्यामकली रखा, गोरी का नाम चन्द्रकली रखा। मा-बाप का प्यार पा कर दोनो लड़किया बडी हुई। अब दोनो के विवाह की चर्चा चलने लगी। होते-होते चन्द्रकली की सुन्दरता की चर्चा राजा के कान तक पहुची। राजा ने ठाकुर के पास चन्द्रकली के विवाह का प्रस्ताव भेजा। भला राजा का प्रस्ताव कौन टाल सकता था? चन्द्रकली की बात पक्की हो गई। इस पर श्यामकली को बुरा लगा और उसी रोज से चन्द्रकली से ईर्ष्या रखने लगी।

अन्त में शादी का दिन आ पहुंचा। खूब धूम-धाम से राजा के साथ चन्द्रकली की शादी हुई। माता-पिता ने खूब रो-धो कर बेटी को विदा किया। श्यामकली भी बहन के साथ उसकी ससुराल चली। बारात राजधानी क पास आ गई, तो राजा ने शहर के बाहर बगीचे में डेरा डलवा दिया। रात के समय सब लोग नाच-रंग में मस्त हो गए। इधर चन्द्रकली को साथ लेकर श्यामकली बगीचे की बहार देखने डेरे से निकल पडी। चादनी रात थी। दोनो घूमत-घूमत कुए क पास पहुच गई। कुएं को देख कर श्यामकली के मन का सोया हुआ पाप जाग पड़ा। उसने चन्द्रकली से कहा—बहन अपने गहने-कपडे थोड़ी देर के लिए मुझे दे दे। मैं पहन कर कुए में ज़रा अपना रूप तो निहारू। भला देखू तो मैं कसी लगती हूं।

चन्द्रकली ने अपने सारे गहने-कपडे उसे दे दिए और उसके खुद पहन लिए। अब श्यामकली गहने-कपडे पहन कर तैयार हो गई और कुए में झांक कर अपना रूप देखने लगी। चन्द्रकली भी उसके साथ कुए में झुक गई। बस इसी समय मौका पाकर श्यामकली ने चन्द्रकली को कुएं में ढकेल दिया। चन्द्रकली कुए में डूब गई। श्यामकली अपने डेरे में वापस आ गई। दूसरे दिन बारात राजमहल पहुंची, अब श्यामकली नई बहू थी। सबने नई रानी का स्वागत किया। राजा ने इसके पहले कभी चन्द्रकली को नही देखा था अतः

उसने श्यामकली को ही अपनी विवाहिता पत्नी समझा। श्यामकली राजा के साथ आनन्द से महलों में रहने लगी।

कुछ दिन वाद, एक दिन राजा अपने मित्रो के साथ उसी वाग मे घूमने के लिए आ गया। घूमते-घूमते राजा को प्यास लगी। नौकर पानी लेने कुएं पर दौडा। जैसे ही नौकर ने पानी खीचने के लिए वाल्टी कुएं में डाली, एक सुन्दर फूल खिच आया, पर जैसे ही उसने उसे पकडने के लिए हाथ वढ़ाया फूल झट से कुएं में उतर गया। नौकर को वड़ा अचम्भा हुआ। उसने दो-चार वार फिर कोशिश की पर फूल हर वार वाल्टी में ऊपर तक आकर नीचे कुएं में उतर जाता था। नौकर भागा-भागा गया और उसने राजा को फूल का चमत्कार वताया। वात सुनते ही राजा कुएं पर आया। सव मित्र लोग भी साथ आए। सवने पारी-पारी से फूल तोड़ने का प्रयत्न किया पर वार-वार फूल उन्हें धोखा दे गया। किसी के हाथ में वह नही आया। अन्त में राजा ने वाल्टी खीची और फूल तोड़ने के लिए हाथ वढाया। हाथ वढाते ही फूल राजा के हाथ में आ गया। राजा वड़ा प्रसन्न हुआ। उसने फूल को तोड कर अपने कोट के कालर में लगा दिया। फूल की खुशवू से सारा वगीचा महकने लगा। राजा के सव साथी भी प्रसन्न हुए। खुशी-खशी राजा घर आया और आज की सारी घटना वड़ी वड़ाई के साथ रानी को सुनाई। फूल का किस्सा सुन कर श्यामकली का माथा ठनका। उसने मन में सोचा कि हो न हो चन्द्रकली ने ही फूल के रूप में जन्म लिया है। अव वह फूल वन कर अपने पति के सीने से लगी रहेगी, उनके हाथो में खेलेगी और उनका प्यार पाएगी। ऐसा विचार आते ही श्यामकली मन ही मन जल उठी। वह चन्द्र-कली की छाया को भी अपने पति के पास फटकने नहीं देना चाहती थी। रात का समय हुआ। राजा ने फूल को निकाल कर गुलदस्ते में सजा दिया और सो गए। आधी रात को श्यामकली उठी। उसने गुलदस्ते में से वही फूल निकाला और उसे सभाल कर खिडकी के वाहर फेंक दिया। श्यामकली ने देखा कि फूल के वाहर फेंकते ही एक चिड़िया वही से फुर्र से उड़ गई। उसने इस पर कोई ध्यान नही दिया और वगीचे से उसी रंग का फूल लाकर गुलदस्ते में सजा दिया। वड़े सवेरे राजा ने फूल मुरझाया देखा। राजा ने कोई खयाल नही किया और उसे वाहर फेंकवा दिया।

राजा के आगन में कदंव का एक वृक्ष था। दूसरी रात एक चिड़िया वहां आई और डालियों पर फुदक-फुदक कर यह गीत गाने लगी :

चन्द्रकली तो वन वन डोले, श्यामकली सुख पाए।
ऐसे राजा मोरे ! संग सारी कोरा सोए।
राजा रे निर्मोही, तैंने सूरतिया विसराई।
रंग चूं चूं, रंग चूं चूं!

गीत गाने के वाद चिड़िया हसी, तो हंसी के साथ इतने फूल झरे कि सारा आंगन फूलों से पट गया। हंसने के वाद चिड़िया रोई। उसके रोते ही आसू की वूंदें मोती वन कर जमीन पर गिरने लगी। इतने मोती गिरे कि सारा आंगन उनसे भर गया। महल का दरवान जो पहरे पर था, यह सव तमाशा देख रहा था। रोने के वाद भिनसार हुए चिड़िया न जाने कहां उड गई।

आंगन में फूल और मोतियो का ढेर देख कर सव चकित हो गए। राजा भी रग महल से आ गए। उन्होने दरवान से इस वारे में पूछा। दरवान ने रात में जो कुछ देखा-सुना था सव हाल ज्यों का त्यों राजा को कह सुनाया। श्यामकली को चिड़िया पर शक हो

गया । उसे विश्वास हो गया कि चन्द्रकली ही चिड़िया के रूप में यहां आती है। अब उसने राजा से उस चिड़िया को पकड़वाने का हठ किया। राजा उसकी बात मान गए, उसी रात वृक्ष में चिड़िया को फसाने का फन्दा लगा दिया गया। आधी रात को चिड़िया आई और वृक्ष पर बैठते ही फन्दे में फस गई।

सवेरे चिड़िया राजा के सामने लाई गई। राजा ने जैसे ही हाथ बढाया चिड़िया उड कर उनकी गोद में बैठ गई। राजा प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। प्यार पाते ही चिड़िया ने गीत आरम्भ किया।

चन्द्र कली तो बन बन डोले, श्यामकली सुख पाए।
ऐसे राजा मोरे! संग सारी कौरा सोए।
राजा रे निर्मोही तैंने सूरतिया बिसराई।
रंग चूं चूं, रंग चूं चूं!'

गीत के बाद चिड़िया हसी तो फूल झरने लगे और उसके बाद रोई तो मोती गिरने लगे। फूल और मोती से राजा की गोद भर गई। सब दरबारी जमा हो गए। गीत का अर्थ समझने की बड़ी कोशिश की गई पर अर्थ किसी की समझ में नही आया। गीत का अर्थ श्यामकली समझ गई थी। वह ईर्ष्या और डर के मारे वहां से अपने महल में भाग गई थी। जब कोई भी आदमी बात की तह तक नही पहुंचा, तो राजा ने चिडिया ही से उसकी कहानी पूछी।

राजा की बात सुन कर चिड़िया बोली :

सुन ले राजा मेरे, है यही कहानी मेरी।
श्यामकली और चन्द्रकली हम दो बहनें थी प्यारी।
काली रात सी श्यामकली मे चन्दा सी उजियारी।
श्यामकली मन में जलती थी, देख बड़ाई मेरी।
एक समय राजा के संग में हुई सगाई मेरी।
श्यामकली संग मेरे आई, मुझको कुआं ढकेला।
मेरा साज-सिंगार पहन कर किया महल में डेरा।
फूल बनी मैं तुमको पाने, उसे मसल कर फेंक दिया।
चिड़िया बन कर बन बन डोलूं, यही मेरा है हाल किया॥

अब राजा को सच्चा हाल मालूम हो गया कि श्यामकली ने धोखा दिया है। वह मेरी विवाहित रानी नही है। यह जान कर राजा को श्यामकली पर बड़ा क्रोध आया और उसने श्यामकली को उसी कुए में फेंकने की सजा दे दी। हुक्म की देर थी। श्यामकली तुरन्त कुएं में फेंक दी गई।

अब राजा चिड़िया को लेकर रंग महल में आ गया। चिड़िया के लिए तुरन्त सोने का पिंजरा बनवाया गया। राजा अपने हाथ से चिड़िया को दाना चुगाता, पानी पिलाता और नहलाता-धुलाता था। चिडिया राजा को गीत सुनाती और तरह-तरह की कहानी सुना कर उसका मन बहलाती थी। बहुत दिनो बाद एक दिन राजा दरबार गया। यहा सूना पाकर चिडिया पिंजरे से बाहर निकली और चिड़िया का भेष उतार कर पिंजरे पर टाग अब वह वही रूपमती चन्द्रकली थी। उसने रंग महल का सारा काम किया और राजा की वापसी का वक्त जान चिडिया बन कर फिर पिंजरे में आ गई। संध्या को राजा आया। वह अपने कमरे की सफाई और सामान की व्यवस्था देख कर बड़ा चकित हुआ। उसे चिडिया पर सन्देह हुआ।

दूसरे दिन उसने कचहरी जाने का वहाना किया और महल के एक कोने में छिप गया। ठीक समय पर चिड़िया पिंजरे से निकली । उसने चिड़िया का भेष उतार कर पिंजरे पर टाग दिया। अब वह सुन्दर कन्या वन गई। इसके बाद वह घर के काम-धाम मे जुट गई। राजा झरोखे से यह सब चमत्कार देख रहा था । जैसे ही वह किसी काम से दूसरे कमरे में गई राजा चुपके से पिंजरे के पास गया और उस पर टंगी हुई चिड़िया की खाल को लेकर वहा से चल दिया। उसे वगीचे में ले जाकर जला डाला । अब फिर राजा महल में आया । राजा को आता जान कर चन्द्रकली पिंजरे के पास भागी और वहा चिड़िया की खाल न पाकर असमंजस में पड गई। राजा पास आ गया, उसने रानी को अपनी वाहो मे जकड़ लिया और वोला—अव चिड़िया नही वन पाओगी । मैंने तुम्हारे भेष को जला कर सदा के लिए खतम कर दिया है।

चन्द्रकली राजा को पाकर प्रसन्न हुई । राजा-रानी दोनो मिले, उनकी गृहस्थी सुखी हुई और धोखा देने वाली श्यामकली उस कुएं में कांटे की झाड़ी वनी । जो भी पानी पीने आता वह उसी से उलझती और उसके पैर में चुभती और उसके द्वारा मारी काटी जाती । इस तरह वुरे काम का फल वुरा होता है। जो दूसरो के लिए गड्ढा खोदता है, उसके लिए पहले से कुआ तैयार रहता है।

कवूतर की वात सुन कर अंधियारी की आख खुली। उसने तुरन्त रस्सी डाल कर अपनी वहन को कुएं से निकाला । वह वहुत पछताई । वहन से क्षमा मागी और उस दिन से उसने सदा के लिए दूसरों से ईर्ष्या रखना छोड दिया। अब दोनो वहने प्यार से हिल-मिल कर रहने लगी। तिल कन्या की कथा ने वास्तव में अंधियारी के मन में उजियारी पैदा कर दी।

—भोपाल से प्रसारित

संतुलन

लक्ष्मीकान्त वर्मा

सजल-नयन हो गया दीन कहते ही कहते,
सुनते-सुनते भर आईं दानी की आंखे
तृषा न उसके रुद्ध कंठ से व्यक्त हो सकी,
भरे हृदय से उसके करुणा छलक न पाई ।
छोड़ दीर्घ निःश्वास, मौन रह गए देखते,
वंधे हुए सादृश्य-सूत्र मे निष्क्रियता के—
फैला ही रह गया हाथ याचक अभाव का,
उद्यत ही रह गया दान वनने को वैभव ।

—इलाहावाद से प्रसारित

(१) अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम

डा० वैजनाथ पुरी

सुरेन्द्र नाथ वनर्जी ने अपने एक भाषण में कहा था. . . . .राजनीतिक परतन्त्रता नैतिक और आध्यात्मिक पतन का प्रतीक है। स्वतन्त्र और परतन्त्र की विचारधाराए एक समान नहीं हैं। वास्तव में स्वतन्त्र रहने की भावना तो प्रत्येक व्यक्ति में रहती है, पर जो देश किसी वडी शक्ति के अधीन है, उसे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ा बलिदान देना पड़ता है। कोई भी शक्ति खुशी से आज़ादी नही देती है। अमेरिका का स्वतन्त्रता-संग्राम ब्रिटिश उपनिवेश स्थापना के कोई १५० वर्ष के अन्दर हुआ। सत्रहवी शताब्दी में और अठारहवी के आरम्भ में, सौ वर्ष तक यूरोप से अमेरिका में जाकर बसने वालों का एक प्रवाह सा चलता रहा। उन्होने एक अज्ञात महाद्वीप में जाकर अपनी छोटी-छोटी बस्तियां बनाई, जिन्हें राज्यो का रूप दिया गया और आगे चल कर ये संयुक्त राज्य का अंग बनी। अन्य यूरोपियन देशों की औपनिवेशिक नीति के विपरीत, इंग्लैंड की सरकार ने आरम्भ से ही इस दिशा में उपेक्षा दिखाई। उपनिवेशो की स्थापना में सरकार का कोई हाथ न था, और राज्य से पट्टा या चार्टर प्राप्त कम्पनियां अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर साहसिक और धन प्राप्ति की इच्छा वाले पुरुषार्थी व्यक्तियो को वहां ले जाकर बसाती थी। वर्जीनिया और मैसेच्युसैट्स इसी प्रकार से कम्पनियो द्वारा बसाए गए थे। कुछ उपनिवेश दूसरी बस्तियो की शाखा के रूप में बसे। १७वी शताब्दी के प्रथम तीन-चौथाई भाग में जो यूरोपियन अमेरिका आए, उनमें अंग्रेज़ों की संख्या सबसे अधिक थी। पर बाद में इंग्लैंड प्रधान स्रोत नही रहा। अमेरिका की आबादी धीरे-धीरे बढने लगी और ११११५ तक यह २५ लाख हो गई। वहा के बसने वालो ने अग्रेज़ी भाषा, कानून, रीति-रिवाज और विचारधारा को अपना लिया पर पीछे से आने वाले औपनिवेशको के सतुलन से अमेरिकन सस्कृति में परिवर्तन हुआ। इन औपनिवेशिकों ने अपनी मेहनत से अमेरिका में औद्योगिक क्रान्ति पैदा कर दी। वर्जीनिया की तम्बाकू ने यूरोप में अपना स्थान बना लिया। इस औद्योगिक विकास ने ब्रिटेन के राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में संशय उत्पन्न कर दिया। उपनिवेशों की स्थापना में सरकार का कोई हाथ न था। सम्राट ने धनी व्यक्तियो को पट्टे या चार्टर दिए थे, अत: ब्रिटिश पार्लियामेंट का इन पर किसी प्रकार का नियंत्रण न था। उपनिवेशो की पैदावार और उनके व्यापार ने ब्रिटिश व्यापारिक क्षेत्र में यह भावना डाल दी कि आगे चल कर ब्रिटेन के व्यापार को धक्का पहुंचेगा, क्योंकि वहा के व्यापारी यूरोप के दूसरे देशो में अच्छे दामो पर अपना कच्चा माल बेच सकेंगे और वहा से सस्ते दामो पर चीज़ें खरीद सकेंगे। अमेरिकन स्वतन्त्रता सग्राम का बीज इन्ही राजनीतिक और व्यापारिक भावनाओ को लेकर बोया गया। इसने ५० वर्ष के अन्दर एक विशाल संघर्ष के वृक्ष का रूप धारण कर लिया; जिसके फलस्वरूप ब्रिटेन को अपने अमेरिकी उपनिवेशो से हाथ धोना पड़ा।

१७६३ तक ग्रेट ब्रिटेन ने इन उपनिवेशो के विषय में कोई सुसम्बद्ध नीति निर्धारित नही की थी। इंग्लैंड का सिद्धान्त केवल इनसे कच्चा माल लेना और वहां पर अपना तैयार

किया सामान भेजना था। उपनिवेशो ने अपन आपको इग्लैंड का अग नही समझा। वे पूर्ण-तया स्वतन्त्र थे, पर धीरे-धीरे उनको पार्लियामेंट के नियत्रण में रखने का प्रयास किया गया और इसका वहा पर विरोध होना स्वाभाविक था। नियंत्रण पार्लियामेंट द्वारा कर लगा कर, तथा इन उपनिवेशो में सम्राट की ओर से स्थानीय शासन में हस्तक्षेप के रूप में था। ब्रिटिश सम्राट द्वारा नियुक्त उपनिवेशो के गवर्नर शक्तिशाली न थे। वे निर्वाचित सभाए जो स्थानीय स्वतन्त्रता और लोकतांत्रिक सिद्धान्त के आधार पर बनी थी, गर्वनरो के अधीन न थी। ब्रिटेन ने साम्राज्यवादी नीति अपनानी चाही। सप्तवर्षीय इंग्लैंड और फ्रांस के बीच युद्ध की समाप्ति पर १७६३ में कैनेडा और ओहियो की घाटी ब्रिटेन को मिली। उसने वहां के फ्रासीसी और रेड इडियन निवासियो के विरोध को शात करने के लिए, यह प्रान्त केवल उन्ही के लिए निर्धारित करना चाहा। औपनिवेशिकों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही थी और वे भी पूर्वी तट से पश्चिम की ओर बढ़ना चाहते थे। १७६३ में एक राजकीय घोषणा के द्वारा उलीगिनी, फ्लोरिडा, मिसिसिपी और क्यूबेक के मध्य का समस्त पश्चिमी भाग रेड इंडियनो के लिए सुरक्षित रखा गया। नीति का पालन न हुआ पर औपनिवेशिकों ने इसको अपने भौगोलिक अधिकारों की पूर्ण रूप से अवहेलना समझा।

गम्भीर परिस्थिति १७६४ के शुगर ऐक्ट से हुई। १७३३ के मोलेसिज ऐक्ट द्वारा शीरे के आयात पर भारी कर लगा हुआ था। नए ऐक्ट के अनुसार रेशम, काफी, शराब, और अन्य वस्तुओ पर भी कर लगने लगा। कस्टम अधिकारियो को अधिक दृढ़ता और तत्परता से कर वसूल करने का आदेश दिया गया और सम्राट के कर्मचारी बिना नाम के वारट द्वारा लोगों को पकड़ सकते थे। इसी तरह १७६४ के रेवेन्यू ऐक्ट, तथा १७६५ के बिलेटिंग ऐक्ट भी औपनिवेशिक दृष्टि से आपत्तिजनक थे। इसके द्वारा सम्राट की सेनाओं के लिए स्थानीय व्यक्तियों को वस्तुएं देने के लिए बाध्य किया गया। अंतिम कानून स्टाम्प ऐक्ट था, जिसके अतंगत कागजो और दस्तावेजों पर स्टाम्प लगाना आवश्यक हो गया। इन कानूनो का बड़ा विरोध हुआ और वैम्यूसैट्स के सैम्यूएल एडेन्स के नेतृत्व में क्रान्तिकारी प्रतिरोध की भावना भड़क उठी। १७६५ के अक्टूबर में सब उपनिवेशो के प्रतिनिधियो की एक काग्रेस बुलाई गई। नौ उपनिवेशो के २७ प्रतिनिधियो ने दृढ़तापूर्वक यह प्रस्ताव पास किया कि स्थानीय धारासभाओ के अतिरिक्त किसी अन्य संस्था को उपनिवेशो के लिए कानून बनाने या कर लगाने का कोई अधिकार नही है। उनका सम्बन्ध चार्टरों के अनुसार केवल ब्रिटिश सम्राट से है। पार्लियामेट का हस्तक्षेप अवैध है। इस आंदोलन के फलस्वरूप स्टाम्प ऐक्ट वापस ले लिया गया। व्यापार पुन. आरम्भ हो गया पर शान्ति केवल थोड़े समय तक रही।

१७६७ में इंग्लैंड के वित्त मत्री टाउन शेड ने नई वित्त नीति निर्धारित की और ब्रिटेन से अमेरिका जाने वाले कागज, सीसे और चाय पर नए कर लगा दिए। कर वसूली के कठोर तरीकों से इन उपनिवेशो में पुन. ब्रिटेन के विरुद्ध भावना जागृत हो उठी। ५ मार्च १७७० में बोस्टन में ब्रिटिश सैनिको और नागरिकों में दंगा हो गया। पार्लियामेंट ने शांति के लिए चाय को छोड़ कर अन्य सब कर वापस ले लिए। १७७० के पश्चात चाय का कानून-विरुद्ध व्यापार बहुत बढ़ गया था। टाउन शेड द्वारा निर्धारित चाय कर के कारण उपनिवेशी व्यापारी अन्य देशो से चाय लेते थे। इधर १७७३ म ईस्ट इडिया कम्पनी ने उपनिवेशों को चाय भेजने का एक मात्र अधिकार ले लिया। वे अपनी चाय को सस्ते मूल्य पर बेचने लगे, जिससे स्थानीय व्यापारियो को धक्का पहुचा। १६ दिसम्बर की रात को बोस्टन में एक गिरोह इंडियनो का वेश धारण करके चाय के तीन जहाजों पर चढ़ गया और ब्रिटिश चाय के बक्सों को समुद्र में फेंक

दिया। बोस्टन का बन्दरगाह व्यापार के लिए तब तक बन्द कर दिया गया, जब तक चाय का मूल्य न चुके। राजनीतिक क्षेत्र में भी सम्राट की ओर से मैसेच्युसैट्स के कौन्सिलर अब निर्वाचित किए गए। नगर सभाओं के निर्माण में गवर्नरो की अनुमति आवश्यक थी। अन्य कानूनो द्वारा मसेच्युसैट्स को दबाने का प्रयास किया गया पर इससे प्रतिशोध की भावना भड़क उठी। ५ सितम्बर १७७४ को फिलौड लकिया में उपनिवेशो के प्रतिनिधियो की एक सभा हुई। अधिकारों और शिकायतों की घोषणा का प्रार्थनापत्र तैयार किया गया। ब्रिटिश सरकार इसके लिए तैयार न थी। बोस्टन नगर राजनीतिक केन्द्र बन चुका था और वहां ब्रिटेन की ओर से जनरल गेज नियुक्त था। उसने सैम्युएल ऐडम्स और जौन हैनकाक को पकडने के लिए २५०० जवानो की एक सेना भेजी। अमेरिकी स्वतन्त्रता युद्ध का प्रथम बलिदान ८ अमेरिकी देश-भक्तो ने दिया। जो वार्शिगटन अमेरिकी सेनाओ का कमांडर-इन-चीफ नियुक्त हुआ। अभी युद्ध की घोषणा नहीं हुई थी। ४ जुलाई १७७६ की स्वतन्त्रता की घोषणा फिलाडेलफिया में हुई। इस घोषणा के पश्चात युद्ध छिड़ गया। कुछ महीनो तक अमेरिकनो को असफलता मिली। वार्शिगटन को न्यूयार्क छोड़ कर पीछे हटना पडा पर ट्रेन्टन और प्रिस्टन की जीतो से अमेरिकनों को प्रोत्साहन मिला। ब्रिटिश जनरल हाव ने सितम्बर १७७७ में फिला-डेलफिया पर अधिकार कर लिया था, पर १७७७ की शरद में अमेरिकनो की युद्ध में बड़ी जीत हुई और इसने क्रांति का रुख मोड़ दिया। ११ अक्तूबर १७७७ को बरगौइन न अपनी ५ हज़ार सेना सहित इसे सम्पूर्ण कर दिया। अमेरिकनो को फ्रास से बराबर गोला-बारूद मिल रही थी, क्योकि वे अपनी पराजय अभी भूले नही थे। जनरल रोशाम्बो की अध्यक्षता में ६०० जवानो की एक फ्रांसीसी सेना भी सहायता के लिए आई। स्पेन और नीदरलैण्डस भी ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध में कूद पड़े। अंग्रेज़ो को १७७८ में फिलाडेलफिया खाली कर देना पड़ा और ओहियो की घाटी में भी युद्ध का पांसा उनके विरुद्ध पड़ा। दक्षिण में चार्लसटन पर उनका अधिकार हो गया और कैरोलाइना भी कुछ समय के लिए उनके पास रहा। १७८१ में उन्होने वर्जीनिया जीतना चाहा पर १६ अक्तूबर १७८१ को कार्नवालिस ने यार्क टाउन में ८ हज़ार सेना सहित वार्शिगटन और रोशाम्बो के सामने आत्म समर्पण कर दिया। ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स ने युद्ध की समाप्ति की घोषणा कर दी और अप्रैल १७८२ में शाति का वातावरण स्थापित हुआ। १७८३ में अन्तिम रूप से सधि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए और १३ स्टेटों की स्वतन्त्रता मान ली गई त । मिसिसिपी नदी तक उनकी उत्तर की सीमा निर्धारित हुई। इस प्रकार अमेरिकन स्वतन्त्रता का युद्ध समाप्त हुआ।

— लखनऊ से प्रसारित



(२) १९१७ की रूसी जनक्रांति

ए० डी० पन्त

आधुनिक काल में योरोप में दो महत्वपूर्ण क्रान्तिया हुई है, जिन्होने न केवल योरोप के समाज तथा राज्यों के विकास को ही प्रभावित किया परन्तु जिनका प्रभाव वास्तव में विश्वव्यापी हुआ है । फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने सामन्तशाही व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया तथा योरोप में राष्ट्रवाद की धारा प्रवाहित की। 'समता, स्वतन्त्रता, तथा बन्धुत्व,' का नारा, जो इस क्रान्ति के स्रष्टाओ के द्वारा घोषित किया गया था, आधुनिक प्रजातंत्रवाद का मूल आधार हो गया है । १९१७ की रूसी जनक्राति का आदर्शात्मक आधार इस पूर्ववर्ती क्रान्ति से भिन्न था । इसका उद्देश्य समाज में आर्थिक-शोषण को समाप्त कर एक वर्गविहीन समाज की स्थापना करना था, जिसमें कि उत्पादन के साधन किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति न हो कर समाज के स्वामित्व में हो । इस क्रान्ति का आधार मार्क्स के क्रान्तिकारी विचार थे, जिन्हें साधारणत साम्यवाद कहा जाता है । इसीलिए रूसी क्रान्ति साम्यवादी क्रान्ति कहलाती है ।

आधुनिक काल में रूस का अभ्युदय एक विशाल साम्राज्य के रूप में सत्रहवी शताब्दी के मध्य से होता है । अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दियो में रूस के शासको ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया, पश्चिम में तथा पूर्व में भी । परन्तु सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टियो से रूस योरोप का सब से पिछड़ा देश बना रहा । जब कि पश्चिम योरोप में विद्या तथा ज्ञान का नव जागरण हो रहा था, विज्ञान उन्नति कर रहा था, औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप औद्योगिक विकास तथा सगठित मध्यम वर्ग का जन्म हो रहा था और प्रजातंत्रीय विचारो के प्रसारण के कारण शासन से अधिकाधिक जनता का सम्पर्क बढ रहा था तथा निर्वाचित विधान-मण्डलो के हाथो में सत्ता हस्तातरित हो रही थी, रूस उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में भी लगभग वही था जहा वह एक शताब्दी पूर्व था ।

रूस मुख्यतः कृषिप्रधान देश बना रहा । वहा के किसानो की वास्तविक अवस्था अर्ध-दासो से अच्छी नही थी । रूस महान आर्थिक विषमताओ का देश था । एक ओर धन-वैभव का नग्न प्रदर्शन तथा दूसरी ओर निर्धनता का नग्न नृत्य, दोनो ही उस समय रूस में दिखलाई देते थे । कुछ नगरों में, जैसे पीटर्सबर्ग तथा मास्को में उद्योग-धंधो की स्थापना हुई थी । इन क्षेत्रो में पूजीवाद के बढ़ने के साथ ही साथ श्रमिकवर्ग भी शीघ्रता से बढा था तथा इस वर्ग में साम्यवादी विचार फैलने लगे थे । राजनीतिक क्षेत्र में सम्पूर्ण सत्ता रूस के सम्राट के हाथ में केन्द्रित थी, जो निरंकुश रूप से शासन करता था और अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था । जनता का शासन से कोई सम्पर्क नही था और न उनकी इच्छाओ तथा सकल्पो का शासन की नीति निश्चित करने में कोई प्रभाव था ।

परन्तु उन्नीसवी शताब्दी से ही रूस मे इस निरकुश शासन-व्यवस्था तथा आर्थिक कष्टो के विरुद्ध भावनाए उगने लगी थी । प्रारम्भ मे यह केवल कुछ उच्चवर्गीय व्यक्तियों तक ही

सीमित थी परन्तु शनै- शनै यह आम जनता में उतरने लगी तथा असतोप व्यापक रूप से फैलने लगा। रूस में कुछ आतकवादी सगठनो का निर्माण हुआ। परन्तु आतंकवादी कुछ अधिक कर सकने में सफल नही हुए। इसका प्रमुख कारण यह था कि ये सगठन स्वभावत. ही गुप्त रूप से कार्य करते थे और इस कारण इनका जनता से कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नही था। श्रमिक वर्ग की वृद्धि के साथ ही साथ मार्क्सवादी विचार बढने लगे तथा इन मार्क्सवादियो ने आतकवादियो तथा उनकी क्रियाशैली का विरोध किया। मार्क्सवादियो ने अपने दल का नाम 'सामाजिक लोकतंत्रीय श्रमिक दल' रखा था। इनका उद्देश्य श्रमिकवर्ग का सगठन, उसमें सामूहिक चेतना का विकास तथा इसके द्वारा रूस में जार की निरकुशता का अत करके एक वर्गहीन श्रमिक-तत्र की स्थापना करना था। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों में इस दल का नेतृत्व लेनिन के हाथो में आ गया और लेनिन के विचारो के अनुसार ही इस दल ने क्रान्ति की योजना का निर्माण किया।

जैसे-जैसे रूस में निरकुशता तथा अन्याय के विरुद्ध असतोप बढता गया तथा क्रान्तिकारी दल सगठित होते गए वैसे-वैसे ही शासन का अत्याचार भी बढता गया। वहा राजनीतिक असन्तोप बढता गया। अनेक राजनीतिक हड़तालें हुई तथा एक बहुत बड़ा जन-आन्दोलन हुआ। १९०५ में समस्त रूस में एक व्यापक हडताल हुई तथा पीटर्सबर्ग और मास्को में एक नवीन प्रकार के श्रमिक-सगठन की स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य राजनीतिक सत्ता को हस्तगत करना था। इसे 'सोवियत' कहा गया। जार की सरकार इस आन्दोलन से कुछ घबडाई और उसने मताधिकार तथा विधानमण्डल की स्थापना करने का वचन दिया। इस आश्वासन से वैधानिक दृष्टिकोण वाले तो सतुष्ट हो गए और जार की सरकार ने क्रान्तिकारियो को अपनी सैनिक शक्ति से कुचल दिया। इस क्रान्ति में अनुमान है कि लगभग चौदह हजार व्यक्ति मरे।

यद्यपि १९०५ की क्रान्ति असफल रही, तथापि इससे एक बात स्पष्ट हो गई कि सगठित श्रमिकवर्ग जिसमें राजनीतिक चेतना व्याप्त है, क्रान्ति का सफलतापूर्वक नेतृत्व कर सकता है। १९०५ की क्रान्ति की असफलता क्रान्ति के ठीक प्रकार से सगठित न होने के कारण भी थी। इसलिए लेनिन और उसके अनुयायियो ने इस असफलता से हतोत्साहित होने के स्थान पर यह निष्कर्ष निकाला कि रूस में जार और प्राचीन व्यवस्था के केवल कुछ ही दिन शेप रह गए हैं।

रूस की सरकार ने इस क्रान्ति से कुछ भी नही सीखा और न अपने व्यवहार अथवा दृष्टिकोण में ही कुछ परिवर्तन किया। रूसी सम्राट की शक्ति का मुख्य आधार सेना थी और उसे उच्चवर्गीय सामन्तो तथा उद्योगपतियो का समर्थन प्राप्त था। परन्तु मध्य-वर्ग भी राजनीतिक सुधार चाहता था क्रान्तिकारी सुधार नही। जार किसी भी प्रकार अपनी सत्ता पर नियन्त्रण लगाने के लिए प्रस्तुत नही था। लेनिन तथा उसके दल का काम रूस में पर्याप्त रूप से चल रहा था। राजनीतिक हड़तालें बढ़ रही थी, देश की आर्थिक स्थिति बिगड रही थी, भूमिहीन कृपको की सख्या बढती पर थी, देश में भुखमरी तथा बेकारी भी चारो ओर दिखाई देती थी, शासन भ्रष्ट होने के साथ ही दिन पर दिन अशक्त हो रहा था, शासक अयोग्य था तथा कुछ स्वार्थी व्यक्तियो के कहने पर था और इनके साथ ही साथ सुधार के लिए माग बढ़ती जा रही थी।

इसी समय योरोप का वातावरण अशान्त होता जा रहा था। इग्लैंड तथा जर्मनी के मध्य विरोध बढ़ता जा रहा था और अन्त में एक छोटी सी बात को लेकर १९१४ का महायुद्ध

प्रारम्भ हो गया। रूस ने इस युद्ध मे इग्लैंड का साथ दिया। रणक्षेत्र में रूसी सेना को भयकर क्षति उठानी पड़ी। उसकी हार पर हार होती चली गई। देश की आर्थिक अवस्था इतनी विगड़ गई कि अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई। लेनिन तथा उसके दल ने युद्ध का प्रारम्भ से ही विरोध किया तथा इसे साम्राज्यवादी कुचक्र वतलाया।

मार्च १९१७ में इन परिस्थितियों के कारण क्रान्ति अपने आप पैदा हो गई, और एक सप्ताह के अन्दर ही यह सफल भी हो गई। इस क्रान्ति में श्रमिकवर्ग तथा सेना के सिपाहियो के मध्य एकता पैदा हुई और यही इस क्रान्ति की सफलता का मुख्य कारण भी था। यह क्रान्ति पैट्रोग्राड मे, जो कि पीटर्सवर्ग का नया नाम था, शुरू हुई थी। यह क्रान्ति नीचे से उठी थी और इसमे सवसे महत्वपूर्ण वात यह थी कि इतिहास में यह सर्वप्रथम उदाहरण था कि जव क्रान्ति का नेतृत्व सगठित श्रमिकवर्ग द्वारा किया गया था। इस समय लेनिन तथा उसके मुख्य सहयोगी या तो निर्वासित थे या वन्दी थे। परन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि वे श्रमिक जिन्होने यह क्रान्ति की थी, साम्यवादी विचारो से प्रभावित थे। पैट्रोग्राड के पश्चात मास्को में भी क्रान्ति फैली तथा सफल हुई। इस क्रान्ति का फल यह हुआ कि ज़ार ने राजगद्दी त्याग दी। इस समय की परिस्थिति मे क्रान्तिकारियो के सम्मुख कोई निश्चित कार्यक्रम नही था और न वे राज्य-शासन का भार लेने के लिए प्रस्तुत थे। इसलिए उन लोगो ने शासन-भार ज़मीदार वर्ग तथा उच्च मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली एक सभा को, जिसे 'डूमा' कहते थे, सौंप दिया। परन्तु यह जो सरकार वनी वह रूढिवादी थी, तथा उसका प्रधानमंत्री एक राजवंशी था। इसलिए इस सरकार द्वारा क्रान्ति के उद्देश्य सफल होंगे, यह आशा नही थी। इसी समय १७ अप्रैल १९१७ को लेनिन ने रूस में प्रवेश किया। उसके प्रवेश करते ही रूसी परिस्थिति में एक महान परिवर्तन हो गया और क्रान्ति को अपना नेता मिल गया। श्री नेहरू ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' में इन शब्दो में इस परिवर्तन को व्यक्त किया है

> लेनिन के दिमाग में न तो कोई शका थी, और न अस्पष्टता। . . जो क्रान्ति अभी तक नेतृत्व-विहीन और विना मार्गदर्शक के अनिश्चित दिशा में चली जा रही थी, उसे आखिर अपना नेता प्राप्त हो गया। उपयुक्त अवसर ने उपयुक्त व्यक्ति पैदा कर दिया था।

रूस मे श्रमिक वर्ग के उद्देश्यों तथा इस नई सरकार के उद्देश्यो के मध्य खाई वढ़ती चली गई। इस सरकार ने लेनिन तथा उसके दल के लोगो को वन्दी वनाना चाहा परन्तु लेनिन छिप गया। इस समय उसके दल की शक्ति दिन-प्रतिदिन वढ़ती जा रही थी। श्रमिको के प्रतिनिधि एक क्रान्तिकारी पग उठाना चाहते थे और अन्त में ७ नवम्वर, १९१७ को उन्होने सरकारी सत्ता हस्तगत कर ली। लेनिन उस नई सरकार का अध्यक्ष निर्वाचित हुआ। उसके सम्मुख कई जटिल प्रश्न थे। वाह्य नीति उसकी शान्ति की थी, क्योकि यह क्रान्ति को वचाने के लिए आवश्यक थी और आन्तरिक नीति उसकी यह थी कि क्रान्ति का कार्य पूरा हो और पुन व्यवस्था स्थापित की जाए। उसके सम्मुख अनेक कठिनाइयां थी। लेकिन वह अपने निश्चित मार्ग से विचलित नही हुआ। अन्त में उसका उद्देश्य पूरा हुआ।

रूस की जनक्रान्ति का विश्व-इतिहास मे अत्यन्त महत्व है। इसके द्वारा एक नवीन प्रकार की समाज-प्रणाली तथा शासन-व्यवस्था की स्थापना हुई। यह इतिहास में अपने प्रकार की पहली क्रान्ति थी, और इसने न केवल वाह्य जगत मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किए, परन्तु मनुष्य के सोचने के ढग को भी इस प्रकार वदल दिया कि आज यह सम्भव नही है कि हम उस प्रकार फिर सोचना प्रारम्भ कर दें, जैसा कि लोग १९१७ की क्रान्ति के पूर्व करते थे।

—इलाहावाद से प्रसारित

दूरानुभूति या टेलीपैथी

इलाचन्द्र जोशी

मनुष्य की यह अकाक्षा जन्मजात है कि दूसरे के मन तक अपने मन की बात सीधे विना किसी प्रकट सकेत के पहुचा सके। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण के क्षेत्र में मानव मन की यह प्रवृत्ति पूरे जोरो से काम करती है। मानवीय विकास के प्रारम्भिक काल से ले कर आज तक इस प्रवृत्ति के मूल रूप में कोई अन्तर नही आया।

इसलिए इस प्रवृत्ति के अस्तित्व के सम्वन्ध में विवाद की विशेष गुजाइश नही है। विवाद तव उठता है जव कुछ खोजी लोग इस वात का दावा करते हैं कि मनुष्य के भीतर अपनी इस प्रवृत्ति या इच्छा की पूर्ति की क्षमता भी वर्तमान है। मानवीय उप-चेतना के रहस्यो के सम्वन्ध में खोज करने वाले इन विशेषज्ञो का यह दावा है कि अभ्यास द्वारा मनुष्य अपनी इस विस्मयकारी क्षमता को वढा सकता है। इस शक्ति का विकास इस सीमा तक किया जा सकता है कि सैकडो मील दूर स्थित दो व्यक्ति एक निर्दिष्ट समय पर एक दूसरे के मन तक अपना-अपना सदेश ठीक उसी प्रकार पहुचा सकते है, जिस तरह दो तारघरो के वावू।

पर इस दावे को प्रमाणित करना कोई आसान काम नही है। आज के यंत्र युग के मनुष्य का मन इस हद तक यात्रिक और कृत्रिम हो गया है कि सूक्ष्म चेतना तरंगो को वह सहज मे पकड़ ही नही पाता। वर्वर मनुष्य का मन अत्यन्त चेतनाशील होता था और उसके मन के तार असावारण रूप से अनुभूतिशील होते थे। आज भी संसार में जगली जातियो के जो अवशिष्ट रूप वर्तमान है, उनमें ऐसे व्यक्ति मिलते है जो एक-दूसरे से वहुत दूर होने पर भी केवल मानसिक तरगो के घात-प्रतिघात द्वारा परस्पर विचार विनिमय या भावो का आदान-प्रदान करने में समर्थ है।

सभ्य मनुष्यो के भीतर यह क्षमता सहज रूप में नही पाई जाती, पर कभी-कभी आकस्मिक रूप से जगती हुई दिखाई देती है। प्रति दिन के जीवन के कुछ सावारण दृष्टान्तो से यह वात समझाई जा सकती है। मान लीजिए कि आप कुछ मित्रो के साथ एक कमरे में वैठे हुए गपशप कर रहे है। दुनिया भर के विपयो की चर्चा के वाद एक स्थिति ऐसी आती है, जव आप और आपके साथियो का जोश कुछ ठडा पड जाता है और आपेक्षिक सन्नाटा सा छा जाता है। सहसा एक व्यक्ति एक ऐसे सहमित्र की चर्चा छेड देता है जिसकी कोई चर्चा पहले नही चली थी। मान लिया जाए उस सहमित्र का नाम दीपक है। उसी कमरे में वैठा हुआ कोई दूसरा व्यक्ति तत्काल वोल उठता है—मैं भी अभी-अभी दीपक की ही वात सोच रहा था। वहुत दिनो से उससे भेंट नही हुई, पता नही आजकल वह कहा है और क्या कर रहा है।

मित्रो के आश्चर्य और प्रसन्नता का ठिकाना नही रहता जव उसी क्षण दीपक सशरीर उसी कमरे में आ पहुंचता है। तव सभी लोग वोल उठते हैं—आओ भाई आओ! तुम्हारी वडी उम्र है, अभी तुम्हारी ही चर्चा हो रही थी।

स्वभावत: इस तरह की घटना को आप एक काकताली मानेंगे, जिसे अंग्रेज़ी में कहते हैं 'कोइन्सिडेन्स'। और मैं आपकी इस धारणा का खडन करने में असमर्थ हू। पर आपसे मैं केवल एक निवेदन करूगा। वह यह कि आप ठीक इसी तरह की काकतालियो की एक सूची तैयार करें और फिर मनोयोग से उनका विश्लेपण करते हुए उन पर वारीकी से विचार करें। बहुत सम्भव है कि इस प्रकार के विचार और विश्लेपण के वाद आपको ऐसी काकतालियो के अंतराल में कोई निश्चित नियम निहित दिखाई दे।

जो लोग दूरानुभूति या टेलीपैथी पर विश्वास करते हैं, वे इस प्रकार की काकतालियो की व्याख्या इस प्रकार करते हैं। अपने जिस मित्र की याद आपको तथा आपके एक दूसरे वधु को एक साथ ही, सहसा विना किसी पूर्व चर्चा के आई, उसका कारण यह था कि आपका वह बहुत दिनों से विछुडा हुआ मित्र आप लोगों से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक था और आपके घर की ओर आता हुआ एकात मन से आप ही लोगो की वात सोच रहा था। इस प्रकार उसकी मूलगत चेतना से निकली हुई सूक्ष्म भाव तरंगें आपकी तथा आपके दूसरे मित्रो की उपचेतना पर वार-वार आघात कर रही थी। ज्यो-ज्यो वह व्यक्ति आपके मकान के निकट पहुचता जाता था, त्यो-त्यो ये चेतना तरगें अधिकाधिक तीव्र होती जाती थी।

मैंने व्यक्तिगत रूप से इस सम्वन्ध में कुछ साधारण-सी खोजें की है। जव-जव किसी व्यक्ति की याद आते ही वही व्यक्ति सामने उपस्थित हो गया तव-तव मैंने उस व्यक्ति से पूछा कि क्या वह रास्ते में केवल मेरे ही सम्वन्ध में सोच रहा था। पता लगा कि वह केवल मेरे विपय में सोच ही नही रहा था, वरन उसकी चेतना पूरी तन्मयता से मुझमें विलीन सी हो गई थी।

दिन में कितने ही व्यक्ति आपको याद करते रहते हैं, पर सभी आपकी चेतना को छू नही लेते। केवल वही व्यक्ति टेलीपैथिक माध्यम से आपकी चेतना के सूक्ष्म तारो को झंकृत करते हैं, जो तद्गत और तन्मय भाव से किन्ही विशेप क्षणो में आपको याद करते हैं।

अव प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यो होता है, और इस चमत्कार के पीछे कौन से नियम काम करते हैं। कुछ वर्प पूर्व प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक अपटन सिक्लेयर ने एक पुस्तक इसी विपय पर लिखी थी, जिसका नाम रखा गया था 'मेन्टल रेडियो' या 'मानसिक रेडियो'। इस पुस्तक में लेखक ने अपने कुछ प्रयोगों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया था कि जिस प्रकार रेडियो द्वारा, विना किसी तार के माध्यम के, एक प्रेपक यत्र की सहायता से किसी दूर स्थित रिसीविंग सेन्टर तक वार्ताए प्रसारित की जा सकती है, उसी प्रकार किसी एक मनुष्य की उप-चेतना से किसी दूर स्थित मनुष्य की उपचेतना तक भाव-तरंगें प्रेपित की जा सकती हैं। पर क्यो ऐसा सम्भव होता है, और विशेप तथा असाधारण परिस्थितियो मे ही ऐसे प्रयोग क्यों सफल होते है, इसका निश्चित कारण इस सम्वन्ध में प्रयोग करने वाला कोई भी विशेपज्ञ अभी तक नही वता पाया।

हम केवल इतना ही वता सकते हैं, कि टेलीपैथी या दूरानुभूति अव केवल मनुष्य का आकांक्षित स्वप्न मात्र नही रह गया। विभिन्न देशो के कुछ लव्धप्रतिप्ठ वैज्ञानिक जो केवल कोरी भावना या आकांक्षा को महत्व देने वाले कल्पना-प्रिय कवि नही हैं, वल्कि ठोस यथार्थ को ही अपने अनुसंधानों का आधार मानने वाले मनीपी हैं, टेलीपैथी की वास्तविकता का पता लगाने के उद्देश्य से नियमित रूप मे प्रयोग कर रहे है। अपने प्रयोगो मे वे कुछ निश्चित परिणामो पर भी पहुंच चुके हैं।

उदाहरण के लिए, नार्थ केरोलाइना के ड्यूक विश्वविद्यालय में स्वनामधन्य डा० राइन ने इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोग वैज्ञानिक विधि से किए है। इन प्रयोगो का ढंग यह है कि कुछ कार्डो में विविध प्रकार के चित्र अकित किए जाते हैं। परीक्षक पर्दे के इस पार बैठता है और जिस व्यक्ति की दूरानुभूतिशीलता की जाच होती है, उसे उस पार बिठाया जाता है। दोनो एक-दूसरे को देख नहीं सकते और न परस्पर किसी प्रकार के सकेत के अदान-प्रदान की कोई सभावना रहती है। परीक्षक एक-एक कार्ड उठा कर उस पर अकित चित्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करता जाता है, तब अपनी तत्कालीन-चेतना तरग को उस पार बैठे व्यक्ति की ओर प्रेषित करने का प्रयत्न करता है। परीक्षित व्यक्ति एकाग्र मन से परीक्षक की उस चेतना तरग को ग्रहण करने का प्रयत्न करता हुआ उस अदृश्य चित्र की प्रतिलिपि बनाता जाता है। डा० राइन ऐसे हजारो प्रयोग कर चुके है और उन सबके आधार पर वह इस परिणाम पर पहुचे हैं कि २५ प्रतिशत से भी अधिक व्यक्तियो के अनुमान इस सम्बन्ध में यथार्थ सिद्ध हुए है। प्रतिशत की यह संख्या ऐसी है, जो दैवयोग या काकताली की सभावित परिधि से बहुत आगे निकल जाती है, और यह सिद्ध करती है कि दूरानुभूति या टेलीपैथीक अनुभूति आकाक्षित कल्पना की चीज न हो कर वास्तविक अस्तित्व रखती है।

लदन के प्रसिद्ध गणितज्ञ डा० एस० जी० सोल ने भी कुछ इसी तरह के प्रयोग किए है। अपने निरंतर प्रयोगो द्वारा डा० सोल एक नए परिणाम पर पहुचे है। उनके प्रयोगो का ढग यद्यपि डा० राइन के चित्रित कार्ड वाले प्रयोगो से मिलता-जुलता है, पर उनका ध्यान एक नए तथ्य की ओर गया। उन्होने देखा कि जिन व्यक्तियों को उन्होने कार्डो में अकित चित्रो का सही सही अनुमान लगाने के लिए माध्यम बनाया था, उनमें से अधिकाश माध्यम निर्दिष्ट कार्ड का ठीक अदाजा न लगा कर उसके ठीक बाद या ठीक पहले वाले कार्ड का सटीक अनुमान लगाने में समर्थ हुए। इससे डा० सोल इस परिणाम पर पहुचे कि दूरानुभूति या टेलीपैथी द्वारा केवल वर्तमान की घटनाओ का ही नही, बल्कि भूत में घटी या भविष्य में घटने वाली घटनाओ का भी आभास मिल सकता है।

पाश्चात्य देशों में तो अपराधो का पता लगाने के लिए भी टेलीपैथी का प्रयोग किया जाने लगा है। कुछ वर्ष पूर्व कैनेडा के एक कसबे में एक महिला की हत्या अत्यन्त रहस्यपूर्ण परिस्थितियो में हुई। अपराधी का पता ही नही लग पाता था। हत्यारा शिनाख्त के लिए कोई चिह्न नही छोड़ गया था। बहुत खोज-बीन के बाद पुलिस को घर के ही एक व्यक्ति पर सन्देह हुआ। पर इस बात के कोई निश्चित प्रमाण नही मिल रहे थे कि उसने कैसे और किस उद्देश्य से वह हत्या की थी। उसे सन्देह पर हवालात मे रखा गया और एक ऐसे व्यक्ति को उसके साथ बिठा दिया गया, जिसकी सूक्ष्म अनुभूतिशील चेतना दूसरो के मस्तिष्क में उठने वाली चेतना-तरगो को रेडियो रिसीवर की तरह ठीक-ठीक पकड लेती थी। और उस प्रकार सारे रहस्य का पता आदि से अंत तक सही सही लग गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूरानुभूति या टेलीपैथी सम्बन्धी तथ्य आज केवल एक अनुमानित कल्पना भर नही रह गए है, ठोस वैज्ञानिक परीक्षणो से भी उनकी वास्तविकता सिद्ध की जा रही हैं।

—लखनऊ से प्रसारित



हास्य के मूल स्रोत

भगवतीचरण वर्मा

अनायास ही मेरे सामने एक प्रश्न उठ खड़ा होता है. .जीवन की उपलब्धि क्या है ?

मनुष्य जन्म लेता है, मनुष्य मर जाता है। जन्म और मरण की अवधि के भीतर वह कर्म करता है। न जन्म लेने के पहले उसके पास कुछ होता है, न मरने के बाद वह अपने साथ कुछ ले जाता है। ऐसा लगता है कि इस सृष्टि का क्रम ही कुछ अजीब तरह से चलता है। कार्य जीवन का प्रतीक है, मृत्यु निष्क्रियता है। इस कर्म की उपलब्धिया है . . .यश-अपयश, वैभव-दरिद्रता। लेकिन यश-अपयश, वैभव-दरिद्रता .यह सब तो हमारे शरीर की उपलब्धि है। शरीर से परे जो है, मनुष्य की आत्मा या उसका चेतन तत्व, उसकी उपलब्धि ही वास्तव में जीवन की उपलब्धि मानी जा सकती है।

मुझे तो कुछ ऐसा लगता है, कि जीवन की केवल दो उपलब्धिया है . सुख और दुख। इन दो उपलब्धियो की दो अभिव्यक्तिया है. . .हसना और रोना।

हरेक आदमी हसता है और रोता है। स्वाभाविक उत्फुल्लता से लेकर खिलखिला कर हस पडने की अवस्था के बीच की जितनी अवस्थाए है, वे सब हास्य की है . .बौद्धिक मानव ने इन अवस्थाओ का वर्गीकरण करके इन्हें अलग-अलग नाम भी दे दिए है, लेकिन इससे इन्कार नही किया जा सकता कि हास्य सुख की अभिव्यक्ति । आखो की चमक, हाथ-पैर का थिरकना, ओठो पर की स्मिति, मन्द हास्य और अट्टहास—यह सब सुख की अभिव्यक्ति ही तो है।

पर यहा मेरे सामने ऐसी अवस्थाए भी आ जाती है, जहा घोर दुख की हालत में एक हलकी-सी मुसकान मुख पर आ जाती है, यद्यपि इस प्रकार की मुसकान में एक भयानक कटुता रहती है, जहां क्रोध के पागलपन में मनुष्य जोर से हंस पड़ता है, यद्यपि उस अट्टहास में भयानक हिंसा निहित रहती है जिसे हम उपहास कहते है, अथवा जिसे हम व्यग्य की सज्ञा दे सकते है। . . .उसे हम सुख की अभिव्यक्ति कैसे कह सकते है ?

इस स्थान पर हमें सुख के रूप को समझ लेना पडेगा। मनुष्य की आतरिक प्रवृत्ति और बाहरी परिस्थितियो के सामजस्य को मै सुख की स्थिति मानता हू। यह कोई आवश्यक नही कि मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्ति कल्याणकारिणी ही हो। हिंसा, घृणा, असत्य, यह सब व्यक्ति विशेष की आन्तरिक प्रवृत्तिया हो सकती हैं। जिस मनुष्य की आन्तरिक, प्रवृत्ति अविश्वास है, जब वह दुनिया की आस्थाओ और मान्यताओ को टूटता हुआ देखता है, तब उसकी आन्तरिक प्रवृत्ति में और बाहरी परिस्थिति में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। उस समय उसका हंस पडना स्वाभाविक है। यद्यपि इस हसी को हम कुरूप व्यग्य के रूप में देखते हैं। हिंसा की प्रवृत्ति के बाहरी परिस्थितियों से अनुप्राणित विस्फोट में अट्टहास का रूप स्पष्ट हो जाता है। घोर दुख के समय हम जिससे सहानुभूति और संवेदना की आशा करते है, जब उसके व्यवहार से हमें क्लेश होता है, तब हमारे अन्दर के उत्सुकताजनित ज्ञान की बाहरी परिस्थितियो से वृद्धि ही होती है।

जीवन की दो मूल भावनाएं हैं, जिनसे समस्त जीवन प्रेरित और अनुशासित है, जिनमें मनुष्य का चरम विकास है, जो बुद्धि और ज्ञान से एक रस और एक प्राण हैं—उत्सुकता और कौतूहल। शुद्ध हास्य इस कौतूहल द्वारा जनित होता है, . . ऐसा मेरा मत है। साहित्य में यह हास्य ही सर्व प्रथम आता है। हमारी नैतिक परिभाषा में भी यही हास्य सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। यह भी सत्य है कि जीवन में इस प्रकार का हास्य बहुत कम दीखता है। संघर्षों की तीव्रता में, प्रतिक्रियात्मक विकृतियो के आवेग में हम जीवन की इस महान उपलब्धि को खो बैठते हैं। इस प्रकार का शुद्ध हास्य हम केवल बच्चों में ही देख पाते है।

बच्चों के हास्य को जो हम पवित्र और भोला हास्य कहते हैं, वह केवल इसलिए कि बच्चो का हास्य शुद्ध उत्सुकता और कौतूहल की आन्तरिक प्रवृत्ति द्वारा जनित है। एक नया खिलौना बच्चे के हाथ में आया और वह खिलखिला कर हस पड़ा, एक नई बात का उसे पता लगा और असीम आनन्द मिला उसको। आषाढ़ के प्रथम मेघ आकाश पर छाए और बच्चो के झुंड के झुंड उत्सव मनाने के लिए निकल पडे।

० ० ०

साहित्य में अद्‌भुत हास्य से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। जो हास्य अद्‌भुत से उत्पन्न होता है, वही सात्विक और शुद्ध हास्य कहलाता है। वैसे यह अद्‌भुत हमारे जीवन के हर कदम पर मौजूद है, लेकिन अपनी विकृतियो से ग्रस्त, संघर्षों में रत, अपनेपन में डूबे हुए हम इस अद्‌भुत को देख नही पाते। इस अद्‌भुत में मूर्खता सबसे प्रधान तत्व है।

दुनिया में जितनी भी विचित्र परिस्थितिया पैदा होती हैं, वह सब लोगो की मूर्खता के कारण। मूर्खता को दुर्भावना समझने के कारण हम उत्तेजित होकर लड़ पडते है, मूर्खता को मूर्खता समझ कर हम हस देते है। साहित्य वाला शुद्ध हास्य रस इस प्रकार मूर्खता से उत्पन्न हास्य के निरूपण से मनुष्य में भावना का उदात्तीकरण कर सकता है। लेकिन यह केवल उस समय जब कि लेखक में दुर्भावना न हो। वह मूर्खता परिस्थिति-जनित होनी चाहिए, वैयक्तिक न होनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति को मूर्ख व्यक्त करने में लेखक के अन्दर काली हिंसात्मक प्रवृत्ति को सहारा मिलता है, और इसी लिए इस प्रकार का हास्य शुद्ध हास्य न बन कर व्यंग्यात्मक बन जाता है। मूर्खता तीन कोटियो में विभक्त की जा सकती है—मेरी मूर्खता, आप की मूर्खता, दुनिया की मूर्खता। इसमें दुनिया की मूर्खता परिस्थिति की विचित्रता उत्पन्न करने वाली होती है, और इसलिए यह सर्वश्रेष्ठ हास्य कहलाता है। दुनिया की मूर्खता का प्रतिपादन करना भी आसान कला नही है। यहा हास्य-लेखक के दृष्टिकोण का बहुत बड़ा महत्व है। लेखक अपने को अतिशय बुद्धिमान मान कर अगर दूसरो की मूर्खता पर लिखता है, तो उस हास्य के व्यंग्य बन जाने का खतरा रहता है। दुनिया की मूर्खता का रूप सामूहिक होना चाहिए, जिससे लेखक स्वय अपने को अलग रख सकने का दावा न कर सके, और यह सामूहिक मूर्खता परिस्थिति की विचित्रता का रूप धारण कर लेती है।

यहा यह भी ध्यान में रखना होगा कि मूर्खता स्वय में अज्ञान की प्रतीक है। इसलिए मूर्खता सहानुभूति की चीज होनी चाहिए, उसके प्रति क्रोध अथवा कटुता उत्पन्न करने से हास्य का रूप ही विकृत हो जाता है।

इस अद्‌भुत के हास्य के बाद साहित्य में हाजिर जवाबी, या जिसे हम अंग्रेज़ी में 'विट' कहते हैं, उसका हास्य आता है। यह हास्य केवल शाब्दिक होता है, और इसलिए हम उसका स्रोत मनुष्य की बुद्धि में पाते है। अति साधारण बातचीत को एक ऐसा मोड़ दे देना कि लोग हस पड़ें, एक विशेष प्रकार की बौद्धिक प्रक्रिया है। गम्भीर से गम्भीर विषय पर बातचीत के

समय इस प्रकार के हास्य से वडा मनोरंजन हो जाता है और गम्भीरता मे जो कटुता आ जाती है, वह दूर हो जाती है। लेकिन इस प्रकार का हास्य केवल एक वहुत वडे वौद्धिक प्राणी द्वारा ही सफल हो सकता है। यह शब्दो के उलट-फेर का हास्य एक विशिष्ट वौद्धिक समाज में ी सीमित हो जाता है।

आज की दुनिया में सबसे अधिक प्रचलित हास्य व्यंगात्मक हास्य है। व्यंग्यात्मक हास्य शुद्ध रूप से बौद्धिक हास्य है और इसलिए इस हास्य में निरन्तर विकास होता जा रहा है। इस व्यग्य में शुद्ध हास्य और वौद्धिक हास्य के साथ एक प्रकार का भावनात्मक व्यक्तीकरण भी होता है, जो इसे प्रभावशाली और प्राणवान वना देता है। इस प्रकार के हास्य में सामर्थ्य होने के कारण ही इस हास्य की सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया पर घ्यान रखना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

इस व्यग्यात्मक हास्य में व्यक्ति विशेप की मूर्खता की हसी उड़ाई जाती है, इसमें व्यक्ति पर आघात होता है। हसी उड़ाने के समय हसी उड़ाने वाले का हिंसात्मक दृष्टिकोण वरावर मिलता है। वैसे हिंसा को मानव अपने जीवन से पूर्ण रूपेण तो लोप नही कर सकता, पर हिंसा का परिष्कार तो मानव विकास में आवश्यक माना ही जा सकता है। हम उस हास्य को सफल कहते है, जिसमें जिस मनुष्य पर हंसा जाए, वह भी अपने ऊपर हसे। व्यग्यात्मक हास्य इतना परिष्कृत हो यह हास्य लेखक की साघना और उसके विकास पर निर्भर है।

—लखनऊ से प्रसारित

अपेक्षित और अनपेक्षित

रमा सिंह

मुझे न दो
समय की लम्वी अवधि
अकेला एक क्षण दो—
एक ज्योतिर्मय क्षण,
वही क्षण—
जिसमे सव घटाटोप तिमिर चीर—
ज्योतिर्मयी रेखा कौंध जाती है।
मुझे न दो
ऊंचे से महल दुमहले ये,
केवल एक विन्दु दो—
पर्वत के शिखर का,
वही विन्दु—
जहां पहुंच आंखों मे धरती की, नभ की
सव माप सिमट जाती है।
मुझे न दो,
छोटी वड़ी विविध परिधियां ये,
केवल एक केन्द्र दो—
सूक्ष्म-सा एक केन्द्र,
वही केन्द्र
जिस पर टिक इन अनेक वृत्तों की
धारी विस्तार पा जाती है।

—इन्दौर से प्रसारित

चेखोव के तपोवन में

वनारसीदास चतुर्वेदी

कोई ग्रटठाईस वर्ष पहले मुझे काशी मे स्वर्गीय प्रेमचन्द जी के साथ दो दिन रहने का मौका मिला था। वातचीत के सिलसिले में मैंने उनसे पूछा—ससार का सवसे वढिया कहानी लेखक ग्राप किसे मानते है ? उन्होने विना किसी हिचकिचाहट के फौरन जवाव दिया—चेखोव को।

चूकि मैं भी चेखोव का ग्रनन्य भक्त था, इसलिए प्रेमचन्द जी के उत्तर से मुझे वहुत सतोष हुग्रा।

ग्रपनी पिछली रूस यात्रा में जव मुझसे मेरे रूसी दुभापिए मि० डिमिट्री ने कहा—ग्राज हम लोग मास्को से पचास मील दूर चेखोव के ग्राम्य निवास स्थान मैलीखोव को चलेंगे, तो मुझे वडी खुशी हुई। गोर्की इस्टीट्यूट के सुविख्यात लेखक मि० वालीशोव भी, जो वर्नर्ड शा की रचनाग्रो के विशेपज्ञ है, हमारे साथ हो लिए। मैलीखोव में चेखोव का एक सग्रहालय है। उसके निर्देशक महोदय को हम लोगो के पहुंचने की सूचना पहले से दे दी गई थी।

मैलीखोव मे हमारे जो ५–६ घण्टे वीते, वे हमें जिन्दगी भर याद रहेंगे।

मैलीखोव वड़ा रमणीक स्थल है। चेखोव ने एक वार कहा था कि ग्रगर हर ग्रादमी जमीन के उस टुकड़े को, जो उसे मिला हुग्रा है, सुन्दर वनाने की कोशिश करे, तो यह सारी दुनिया कितनी मनोहर वन सकती है। एक जगह उन्होने लिखा था—चार सौ वर्ष में यह समस्त ससार उपवन का रूप धारण कर लेगा, वगीचा ही वन जाएगा। चेखोव तथा उनके माता-पिता ग्रौर भाई-वहनो ने मैलीखोव ग्राश्रम के निर्माण के लिए वहुत परिश्रम किया। उनका छोटा भाई हल चलाने लगा ग्रौर वहन तरकारी लगाने में व्यस्त हो गई। थोडे ही दिनो में वहा मूली, गोभी, ग्रालू इत्यादि उगने लगे ग्रौर वहा खुद चेखोव ने तरह-तरह के वृक्षो को लगाया। चैरी वृक्ष के तो वहुत से पौधे उन्होने ग्रारोपित किए। उनके हाथ के लगाए कितने ही पेड वहा मौजूद थे।

उन दिनों रूसी किसानो की हालत वहुत ही खराव थी। ग्रामो की दुर्दशा का क्या कहना। वीमारियो की भरमार थी। १९४४ में जव मैलीखोव में चेखोव प्रदर्शनी का उद्घाटन हुग्रा था तो एक किसान ने, जो चेखोव का समकालीन था, कहा था—दरग्रसल हमी लोगो ने चेखोव की उम्र कम कर दी ग्रौर हमी उनकी वीमारी ग्रौर ग्रकाल मृत्यु के लिए जिम्मेवार है। हम लोगो ने चेखोव को ग्रपनी वीमारी, मुकदमेवाजी, ग्रर्जी-पुरजा इत्यादि से वहुत तग किया था। जव ग्रास-पास के गावो में हैजा फैला हुग्रा था, तो पच्चीस ग्रामो की देखभाल उनके सिपुर्द कर दी गई थी। उनके कई महीने तो गाडी में घूमते-फिरते ही वीते। चेखोव विल्कुल हारे-थके मैलीखोव लौटते थे, पर यहा पहुंचते ही उनकी सारी थकान दूर हो जाती थी ग्रौर वे पुन. प्रफुल्लित हो जाते थे।

मैलीखोव को देख कर मुझे कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति निकेतन की याद ग्रा गई। गुरुदेव ने भी ग्रपने श्रीनिकेतन द्वारा ग्रास-पास के ग्रामीण समाज की वड़ी सेवा की

थी पर दोनो की परिस्थितियो मे बहुत फर्क था। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर साधन-सम्पन्न व्यक्ति थे और चेखोव साधनहीन।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन दोनो महान लेखको की सर्वोत्तम रचनाए प्रकृति के निकट रहते हुए ही लिखी गईं। चेखोव ने हसिनी नामक नाटक और अपनी बढिया से बढिया कहानिया मैलीखोव में ही लिखी।

चेखोव के लगाए हुए वृक्ष पर, जो अब भी वहा विद्यमान है, उनका एक वाक्य टगा हुआ है—मुझे खेतो, वृक्षो और साधारण जनता से प्रेम है और उन्ही के बीच रहना मै पसन्द करता हूं।

जिस प्रकार इस वर्ष चेखोव की जन्म-शताब्दी सारे विश्व में मनाई जा रही है, उसी प्रकार गुरुदेव की भी शताब्दी अगले वर्ष सम्पूर्ण ससार के मुख्य-मुख्य स्थानो में मनाई जाएगी।

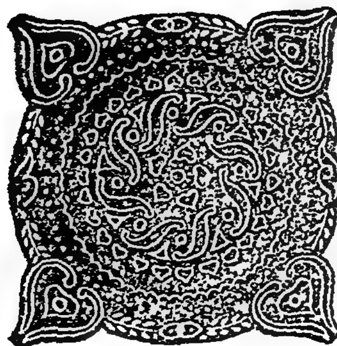
मैलीखोव में जो चेखोव सग्रहालय है, उसमें चेखोव के ग्रन्थ तथा भिन्न-भिन्न भाषाओ में किए गए उनके अनुवाद सुरक्षित हैं। सग्रहालय बहुत आकर्षक है। निर्देशक महोदय ने मुझसे पूछा—क्या आपकी मातृभाषा में चेखोव के ग्रन्थो का अनुवाद हुआ है?

मैंने उन्हे बतला दिया कि उनकी बहुत-सी कहानियो और कई नाटको का हिन्दी में तर्जुमा हो चुका है। भारत की अन्य सभी भाषाओ में चेखोव के अनेक ग्रन्थो के अनुवाद हो चुके है। इस पर उन्होने यह इच्छा प्रकट की कि वे अनुवाद मैलीखोव सग्रहालय को मिल जाने चाहिए।

रूस में चेखोव के चार सग्रहालय हैं। मास्को स्थित चेखोव सग्रहालय के भी दर्शन करने का सौभाग्य मुझे मिला। वह भी शिक्षाप्रद है। वहा की महिला निर्देशिका ने सग्रहालय को बड़े प्रेमपूर्वक दिखला कर अन्त में कहा—भारत पहुच कर 'गग' को मेरा नमस्ते कहना।

पहले तो मैं समझ नही सका कि उनका क्या अभिप्राय है, फिर पूछने पर पता चला कि उनका मतलब गगा मैया से है। वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गंगा मैया दोनो की ही भक्त है।

—इन्दौर से प्रसारित





महान कथाकार चेखोव

ामी मस्जिद

उल्लास नगर मांडू



रानी रूपमती का मं



दाई का महल

हिंडोला महल

उल्लास नगर मांडू

डा० रघवीर सिंह

कराल काल के प्रलयकारी प्रवाह में जब पृथ्वीवल्लभ की प्यारपूर्ण प्रेरणा एव राजा भोज की तन्मयतापूर्ण अनन्य साहित्य साधना विलीन होने लगी और निरालम्बा सरस्वती धारा नगरी से उदासीन हो गई, तब तो राज्यश्री ने भी उनकी ओर से मुख मोड कर अन्यत्र अपनी कृपा दृष्टि डाली। अब तो उसका रूप अधिकाधिक निखरता ही गया और वस्तुतः शादियाबाद अर्थात उल्लास नगर बन गया।

इस उल्लास नगर का वह अकाट्य मोह एवं अबाध आकर्षण कि मालवा के सुलतान तो वहा बरबस खिचे चले आते थे। उन्होने अपनी सारी समृद्धि, कला, ऐश्वर्य-विलास, जीवन का सब कुछ उस पर न्योछावर कर दिया। ससार में सर्वथा अद्वितीय अमर ताज के निर्माता उस्ताद अहमद के पुत्र लुत्फुल्ला और उसके साथी शिल्पियो ने भी मालवा के इन प्रेरक स्वप्न दृष्टाओ एवं अनुपम कलाकारो के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित कर स्वयं को धन्य समझा। ऐश्वर्य और विलास का प्रचण्ड ज्वार बडी शीघ्रता के साथ उठ रहा था। तब विलास-वासना तथा राग-रंग की अतृप्त प्यास और अनन्त यौवन की अक्षय आस लिए गयासुद्दीन खिलजी, रसिकराज पृथ्वीवल्लभ के मुज तालाब के किनारे पहुंचा और अपनी इस नई जीवन-नैया को जीवन रस से भरपूर उस तालाब में बहा दिया। जरा और व्याधि की छाया तक से दूर रहने के लिए उसने जहाज महल का आसरा लिया, और इस जहाज महल के साथ ही मुंज तालाब के उत्तरी तीर पर बने हुए उन वैभवपूर्ण सुन्दर शाही महलो में भी तब बारहो मास दिन-रात आमोद-प्रमोद और राग-रंग, सुरा-सुन्दरी और संगीत का युगों तक निरन्तर यह उन्मत्तकारी सयोग, और वह भी मालवा के उन सौरभपूर्ण सरस मदभरे वातावरण में जहा प्रकृति भी नित नया उन्मादक शृ गार करती है, तथा वहा की वे सुविख्यात मतवाली रातें.... इन सब के भुलावे में पड़ कर कुछ समय के लिए तो काल भी अचल हो गया था।

किन्तु वैभव, ऐश्वर्य-विलास और राज्य सत्ता से परिपूर्ण दिनो में भी यह नगर सदैव अपने पांवो तले हजारो हाथ नीचे फैले हुए मैदान में कोसो दूर दक्षिण में बहती हुई रेवा नदी की उस उज्ज्वल पवित्र धारा को तरसती आखों से देखता था और उसके पावन जल को सिर पर चढ़ा कर उसका पुनीत अभिसिंचन पाने को सदैव बहुत ही लालायित रहता था। और अब तो भाग्य के साथ ही राज्यश्री के भी विमुख हो जाने पर, उसकी यह उत्कण्ठा और भी अधिक उत्कट हो गई थी। किन्तु....हजारो हाथ नीचे बहती हुई नदी का सीधी-ऊची कगार वाले पहाड पर पहुंचना, असीम विलास-वासना में सराबोर उस नगरी में ऐसे तीर्थ जल का समावर्जन... कभी कही सम्भव हो सकता था?....तथापि मालव-पुत्री रूपमती के एकनिष्ठ निश्छल पवित्र प्रेम ने रेवा नदी को उस उल्लास नगर में प्रकट होने के लिए विवश किया। वहा उस ऊचे, अगम मण्डप के उन लम्बे-चौड़े कठोर पत्थरो में से रेवा नदी की स्फटिक पवित्र धारा फूट निकली, वहा का रेवा कुण्ड भर गया।....तब तो साथ ही उस उल्लास नगर के विगत वैभव

और खोए हुए महत्व पुन. लौटते से जान पडे। वहा निवास करने को मालवा का सुलतान बाज बहादुर बरबस खिंचा चला आया।

उस पुनीत रेवा-कुण्ड के पूर्वी तीर पर बाज़ बहादुर का वह सुसज्जित महल, एव उससे भी कही आगे ऊपर ऊंची कगार पर से सुदूर मैदान में नीचे बहने वाली अपनी आराध्या नर्मदा नदी को निरन्तर ताकता हुआ रूपमती का वह अनोखा मनमोहक निवास —अब तो उनमे गूंजने लगा सुमधुर उन्मादक प्रेम-सगीत और वहां सुनाई पडने लगी रूपमती के कोकिल कठ से निकली भूप-कल्याण रागिनी की वे मदिर मीठी ताने। कितने उन्मत्तकारी, उल्लासपूर्ण और अविस्मरणीय थे वे गान। बाज बहादुर का आत्म-परिणय और रूपमती की वह अतृप्त प्रेम पिपासा। . . .मेरे जीवन के इस प्याले में अथाह प्रेम पयोधि ढाल दे।. . . .परन्तु क्या वह मेरे प्रियतम के लिए किसी प्रकार अपर्याप्त तो नही होगा ? और मेरे इस छोटे शरीर में मेरा वह अगाध स्नेह सागर कब तक समाया रह सकेगा ? स्नेह-सरिता की वह अटूट धार, जीवन-रस की वह मतवाली मदिरा ..प्यार और संगीत .उनकी उपेक्षा कर संसार की सोचना .. दुनिया तो यो ही चलती जाएगी, उसका रहस्य कभी कोई जान सकेगा, जो उसकी चिंता तुझे सताती रहती है ?

किन्तु नियति की गति को कौन जान पाया है ? अनन्य प्रेम साधना करने वाली प्रेयसी का कभी कही भाग्य ने यत्किंचित भी साथ दिया है. . . तब उसका वह मानव प्रियतम .. अदृष्ट के हाथों मे खेलने वाला मिट्टी का वह गुड्डा ! . प्रियतम ने एक दिन कोसो दूर सारगपुर की राह ली और वे प्यार भरे संयोग के दिन भूली हुई बात हो गए। विरह के सूने दिन और वियोग की वे दुखभरी लम्बी राते . रूपमती के तप्त आंसू और उत्तप्त उसासें

तुम बिन जियरा रहत हत, भागत है सुखराज।
रूपमती दुखिया भई बिना बहादुर बाज ।।

तुम्हारा साथ न छोडने को व्यग्र मेरे ये प्राण ओठो तक आ गए है। अभी तो तुम्हारे विगत प्यार के स्मृति सौरभ के भुलावे मे पड़ कर वही बेसुध अटके है। तुम्हारे आदेश की भी प्रतीक्षा है ।. . . ऐ नियति ! सौत की सी यह सारी दुष्टता और परिक्षेप क्यों ? .बहुत दूर जा कर वह मेरे दिल में ही बसा हुआ है, तब कहो मै क्योंकर अपनी प्रेमपाती भेजू ? . . . .प्रेम पाती . .और मेरी वह असीम विरह वेदना . . .इस छोटे से कागद पर मेरी वह लम्बी प्रेम कहानी . .इस नन्हें से प्याले में वह अगाध प्रेम-सागर . . .एक असीम आह के सिवा मेरे पास लिख भेजने को रह ही क्या गया है ?

'पिया दरस की आस' जब मृत प्रेयसी को भी अधीर बनाए रहती है, तब यहां तो पिया-मिलन की सुनिश्चित सुखमय आशा उसे बहुत ही लुभा रही थी . . . .प्रणय अभिसारिणी रूपमती तब उस उल्लास नगर से भी मुख मोड कर सारगपुर पहुची। किन्तु विधि की विडम्बना ! कुछ ही समय बाद अहमद खा के हाथो पराजित हो कर बाज़ बहादुर को वहा से भी भागना पड़ा। तथापि आहत बेबस रूपमती के दिल और प्यार ने बाज़ बहादुर का संग नही छोडा। अपने प्रियतम के विजेता के प्रेम प्रणय को तिरस्कारपूर्वक ठुकरा कर प्रेम की अपार पीड़ा और स्नेह की अक्षय साब लिए रूपमती ने सहर्ष चिरवियोग का हलाहल पी कर गाते-गाते ही प्राण त्याग दिए।

रूपमती को यों सदैव के लिए खो कर बाज़ बहादुर और उल्लास नगर सर्वथा हतश्री हो गए और जब मुगल साम्राज्य के ऐश्वर्य-विलास और राग-रंग का अंत हुआ, तब उस उल्लास नगर मे सर्वनाश का ताण्डव प्रारम्भ हुआ। उन राजमहलों में वनराज निवास करने लगे ।

परन्तु उल्लास नगर के उन रहे सहे ध्वस्त खण्डहरो का वह अनोखा अबूझ आकर्षण . वह तो निरन्तर अधिकाधिक बढता ही जा रहा है। इन शृंगारविहीन अनावृत क्षत-विक्षत भग्नावशेषो को देखने के लिए सहस्रो विदेशी यात्री भी हज़ारो कोसो की दूरी से खिचे चले आते है, उन गए-बीते मस्ताने दिनो की एक झलक देखने, उस मदमाते वातावरण को यत्किंचित् भी अनुभव करने... परन्तु वर्तमान को विगत भूत से विलग करने वाला वह अनदेखा अभेद्य आवरण !... तथापि रात क निराशापूर्ण अधियारे में यदा-कदा जब भी भाव लोक के वे स्वप्न-पट अनजाने खुल जाते है, तब वे बीते दिन लौटते से जान पड़ते है और उन विगत दिनो की विस्मृत बीती बातों के भुलावे में पड़ कर वह अनन्य प्रेयसी रूपमती पुन उस उल्लास नगर के रूपमती महल पर बैठी अतीत करुण स्वर में गाती सुन पड़ती है :

बरसत रहत रैन और बासर
हियो कियो अति कदरा
कासो कहो सुनै को मेरी
जोहत बैठी पिय को मगरा।

—इन्दौर से प्रसारित

चाद डूबा

शमशेर बहादुर सिंह

चाद डूबा
आख बन कर
दूर धरती की
बहुत ही नीची भवो मे।
शहर सूना है।
मगर
बादलो के परत
भारी है
कि जैसे सिलें।
बहुत रेतीला उदास
हृदय है।
घिर रहा है
अन्धकार।

—इलाहाबाद से प्रसारित



मंगलाचरण

अमृतराय

बाबू अम्बिका सरन बाहर बरामदे में बैठे हुक्का गुडगुडा रहे थे । रात ज़रा दो बूद ज्यादा चढा गए थे, सर कुछ भारी मालूम हो रहा था । सवेरे के नौ बजे थे । कचहरी की छुट्टी थी, इसलिए इत्मीनान था। आरामकुर्सी में लेटे हुए हुक्के के कश ले रहे थे और धुएं के उन बादलो का बनना और बिगड़ना कुछ इस तरह टकटकी लगा कर देख रहे थे, कि जैसे उसमें अपने सवाल का जवाब ढूंढ रहे हो।

तभी एक दस-बारह साल का छोकरा आया । बाबू अम्बिका सरन ने उसको देखा मगर वह देखना न देखने से भी बदतर था । गुर्राकर बोले— क्या है ?

लड़का सिटपिटा गया और अपनी जेब टटोलने लगा । घबराहट के मारे उसे खत निकालने में और कुछ देर हुई । इस बीच बाबू साहब ने दूसरी गोली दाग दी—अबे मुह मे क्यो नही कहता कुछ ?

अब तो लड़के की हालत और भी खराब हो गई, लेकिन हा बाबू साहब की बात से इतना हुआ, कि उसे अपने मुह की याद आ गई और उसने डरते-डरते कहा—चिट्ठी लाया हूँ ·

खूब पता है मुझको... ....भीख मागने का यह नया ढग निकला है आजकल ! बोले—चिट्ठी ? किसकी चिट्ठी ? भागो यहां से.....

लेकिन इस बीच वह चिट्ठी लड़के के हाथ आ गई थी, उसने सहमते हुए चिट्ठी उनकी तरफ बढाई और जैसे ही उन्होने चिट्ठी ली, लड़के ने पलट कर साइकिल उठाई और बेतहाशा भागा, कि जैसे भूत उसका पीछा कर रहा हो।

बाबू अम्बिका सरन ने चश्मा नाक पर चढाया और खत पर नजर जाते ही चिल्ला पडे—धत्तेरे की। .. .. पता नही कहा-कहा के जगलोल पाल रखे है बाबू साहब ने !... क्यो बे, दही जमा था मुह में ?

मगर तब तक तो लड़का होनोलूलू पहुच चुका था । क्या पता था गरीब को कि बाबू बाघ के मुह में भेज रहे है, वर्ना ऐसी तैयारी से आता। उन्होने तो बस इतना कहा—ले जा, यह चिट्ठी देता आ । सुलेमानगंज के नुक्कड पर वह जो नीला-नीला सा मकान है न, उसी में दे दीजियो । बाबू अम्बिका सरन नाम है।

बाबू अम्बिका सरन ने चिट्ठी पढी और खिचडी की तरह खदबदाने लगे । छिन मे अन्दर जाते छिन में बाहर आते, कही एक बूद एकान्त न था कि छुट्टन की अम्मां से दो बात कर सकते । एक तो अफीम की कटोरी जैसा घर, दूसरे सवेरे का समय, कोई मजन कर रहा था, कोई खुरमा खा रहा था, कोई हथौड़ा ले कर ठक-ठक कुछ ठोक रहा था, कोई किसी का बाल पकड़ कर नोच रहा था और कोई पू पू लगाए था। छुट्टन की अम्मा इधर से उधर नाचती फिर रही थी । उस कचर-कचर में कैसे कहते कुछ भी

छुट्टन की अम्मा से । चिढ कर बाहर आ गए और हुक्के की निगाली उठा कर मुंह में लगा ली । दो-चार कश खींचे लेकिन खिचड़ी फिर उफनाने लगी । झक मार कर फिर अन्दर गए । इस बार संयोग से छुट्टन की अम्मां पूजा की कोठरी में थी । अब बाबू अम्बिका सरन से नही रहा गया । तीर की तरह वहीं जा घुसे ।

लेकिन तुफ है इस घर पर—नजर बचा कर कुछ भी काम यहा नही हो सकता । सबने उनको कोठरी में घुसते देखा । संध्या ने, सुकेशी ने, तारा ने, किशोरी ने । मुन्नी ने, बिट्टन ने । छुट्टन ने, बब्बू ने । और सब औकात भर अपना अपना दिमाग दौडाने लगे ।

सध्या के चेहरे पर हल्की सी लाली दिखाई दी । सुकेशी का लम्बा चेहरा और भी लम्बा हो गया । तारा शरारत से मुसकराने लगी । किशोरी की आखें चमकने लगी । मुन्नी ने बिट्टन को देखा, बिट्टन ने मुन्नी को देखा, दोनो ने सर हिलाया, मुसकराई, और सबसे पहले मामले की तह में पहुंच गई—घर में फिर नया भैया होगा, किहा-किहा करेगा, मुठौरा बनेगा, अछवानी बनेगी.... .इसी से तो बप्पू गए है, अम्मा के पीछे-पीछे, पूजा की कोठरी में, भगवान जी से बिनती करने ।

आंखों ही आंखो में एक ने दूसरे से कहा—चल जरा सुनें तो—और दोनो तुलसी खोटने के बहाने वहीं पास ही जा खडी हुईं, लेकिन बातें इतने चुप्पे-चुप्पे हो रही थी कि ये दोनो नौ और ग्यारह वर्षीय महिलाएं कुछ समझ नही सकी । नए भैया के लिए रघुवर नाम उन दोनो को पसन्द नही आया, कहां रघुवर कहां कलन्दर ।

पति की बातें सुन कर छुट्टन की अम्मां गोभी के फूल की तरह खिल उठी और बोली—अच्छा तो लडकी उन्हें पसन्द है ।

बाबू अम्बिका सरन ने कपाल ठोंकते हुए कहा—तुम तो छुट्टन की अम्मा . सारी रामायन.......

और तय किया कि इस मंदमति को बाबू रघुवरदयाल की चिट्ठी ही पढ कर सुना देनी चाहिए ।

बखिदमत जनाब बाबू अम्बिका सरन साहब, दामइकबालहू,

नमस्ते । खुद हाज़िर न हो सकने के लिए मुआफी चाहता हूं । तबीयत जरा अलील है ।

मुझे यह तहरीर करते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि आपके यहां रिश्ता करना हमें मंजूर है । आप बिलकुल इत्मीनान रखें, हमारी तरफ से कभी कोई बात बईद अज़ अखलाक नही होगी । हम तो खानदानी लोग हैं । लडकी जैसे आपकी वैसे हमारी । किस घर में लड़की नहीं होती ? लेकिन लोग अक्सर भूल जाते हैं और तिलक दहेज के लिए लड़की वालो का गला दबाना हमारे यहा रवा समझा जाता है, इसी ने तो हमारी कौम का सत्यानाश कर रखा है । मैं इसको परले दर्जे का कमीनापन समझता हूं और आपको यह सुन कर खुशी होगी, कि कायस्थ कान्फ्रेन्स के पिछले इजलास में करारदाद के बारे में जो रिजोल्यूशन पास हुआ था, वह मैंने ही पेश किया था । इससे आप समझ सकते हैं कि मैं किन खयालात का आदमी हूं ।

और फिर मैं कहता हू कि करार करने की जरूरत भी क्या है ? वाल्देन अपनी औलाद को यों ही ज्यादा से ज्यादा देते हैं, और कैसे न दें । इतना ही नहीं,

देते वक्त उन्हें अपनी इज्जत का खयाल भी रखना ही पड़ता है और उस खानदान की इज्जत का भी, जिसमें कि वह अपनी बेटी दे रहे हैं। कौन बाप चाहेगा कि उसकी बेटी को ससुराल में लोग नाम धरें? फिर क्या जरूरत है करार करने की? बहुत बेजा बात है।

आप खुद समझदार आदमी हैं। मैं अपनी तरफ से कुछ भी नही कहना चाहता। जितने रुपये से आप चाहें टीका करें, आपकी खुशी। सिर्फ इत्तलाअन् अर्ज है कि हमारे यहां इक्यावन गिन्नियों से कम का दस्तूर नहीं है। वैसे आपकी जो मर्जी। दहेज और दीगर-नेग-न्योछावर, बारात की खातिर-तवाजो इनके बारे मे भी मैं कुछ नही कहना चाहता। मुझे तो सिर्फ लडकी चाहिए। और जहेज अगर मैं ले भी रहा हूं तो परमात्मा गवाह है, सिर्फ इसलिए कि आपकी दिलशिकनी न हो। वर्ना पैसे की ही भूख अगर होती तो मैं आपके दस हज़ार क्यों कबूल करता, आरा के मशहूर रईस कामेश्वरनाथ जज साहब के अठारह हज़ार न लेता? मगर नही, मैंने कहा यह अखलाक से गिरी हुई बात होगी। मुझे इतना ही अर्ज करना है कि अब इन दोनों खानदानो की इज्जत आपके हाथ है।

हां, एक बात भूला जा रहा था। आजकल के लड़को को तो आप जानते ही हैं। वाल्देन की तय की हुई शादी एक आंख नही भाती उन्हें। कहता है, लड़की मैं खुद देखूगा। अजब हवा है जमाने की। सोचिए। हम लोग कभी मुह से ऐसी बात निकाल सकते थे? मगर छोड़िए अब वह दिन कहां। लिहाजा गुजारिश है कि लड़के की इतनी ज़िद तो आपको रखनी होगी। मैंने बहुत समझाया, नही मानता। उम्मीद है कि वक्त की फ़िज़ा को देखते हुए मेरी यह बात आपको नागवार खातिर न होगी और आप इसकी कोई न कोई सबील निकालेंगे।

आपका खादिम
रघुवर दयाल

अब बात की पेचीदगी छुट्टन की अम्मा पर खुली और वह तडप उठी, कि जैसे शेरनी को गोली लगे—क्या समझते हैं वह लोग अपने को? कैसे हिम्मत पडी उनकी? नही करनी हमें ऐसे घर शादी। बहुत लड़के मिल जाएंगे हमको?

छुट्टन की अम्मा को इस तरह बिफरते देख कर बाबू अम्बिका सरन ने मध्यम मार्ग पकड़ा। इतने दिनों में उन्होंने जो एक लडका पकाया था उसको इतनी ज़रा सी बात पर खोने को वह तैयार न थे। बोले—तुम बहुत ठीक कहती हो छुट्टन की अम्मां, लेकिन जमाने की हवा भी तो देखो ज़रा, और फिर हमें डर किस बात का, कौन-कौन ऐब है हमारी लड़की में, कानी है कि कुबड़ी है। चिराग लेकर ढूढ़े से भी नही मिलेगी ऐसी लड़की उन्हें—

छुट्टन की अम्मां ने दबी जबान में कहा—सांवली तो है—

इस पर बाबू अम्बिका सरन ने शेर होते हुए कहा—उससे क्या, नाक-नक्शा भी तो कोई चीज़ है।

इससे छुट्टन की अम्मां की दिल जमई न हुई—कौन जाने आजकल के लड़कों के दिल की बात। मान लो नट जाए देख कर, तब?

इस पर बाबू अम्बिका सरन ने और भी वीर-भाव से कहा—मजाल है । नरे बाज़ार जूते लगवा दूगा, सारी मस्ती हिरन हो जाएगी ।

यह बात छुट्टन की अम्मां को जंच गई और फिर मियां-बीबी में मिसकोट होने लगी कि लडकी को किस तरकीब से दिखलाया जाए कि वह भी न समझे कि उसको दिखलाया जा रहा है और पास-पड़ोस वाले भी न समझें, वरना मान लो, कोई बात ऐसी-वैसी हो गई तो फिर सबकी डेढ़ हाथ की जीभ लपलपाने लगेगी ।

बाबू अम्बिका सरन ने सुझाया—कम्पनी बाग तो सभी लोग घूमने जाते हैं—आज बहुत अच्छा दिन था बाबू अम्बिका सरन, का, जो बात कहते थे, एकदम नपी-तुली ।

छुट्टन की अम्मां अपनी सबसे बड़ी लड़की सुकेशी को मौका निकाल कर एक कोने में ले गई और उसको सारी बात बतलाई । सुकेशी की शादी दो बरस पहले हो चुकी थी । अब सब्या की बारी थी । योजना यह बनी थी कि अगले रोज शाम को सुकेशी, सब्या, तारा, किशोरी, मुन्नी, बिट्टन, सभी कम्पनी बाग जाएंगे, यही पांच और छ. के बीच, लेकिन देखना बेटी, किसी को इसकी आहट भी न मिलनी चाहिए कि तुम क्यों उनको लेकर कम्पनी बाग जा रही हो । यही कहना कि चलो, आज कम्पनी बाग घूमने चला जाए । फिर तुम जा कर अपने बाबू जी से कहना, वह इजाज़त दे देंगे । छुट्टन की अम्मा ने इस षड्यन्त्र की बाबत सुकेशी को अन्तिम निर्देश देते हुए हुए कहा और चौके की तरफ़ बढने को हुई । लेकिन तभी सुकेशी ने पूछ दिया—मगर मैं कैसे पहचानूगी उनको ?

तब अम्मा ने सुकेशी को ले जाकर चुपके से उस लड़के की फोटो दिखलाई और सुकेशी ने उसको अच्छी तरह हृदयगम कर लिया । अम्मा चौके में चली गई और सुकेशी मन ही मन उस साजिश की जुगाली करने लगी, कैसे बात छेड़ूगी ? फिर कैसे हम लोग कम्पनी बाग जाएंगे, फिर कैसे वहा देखा-देखी होगी ? बड़ी जिम्मेदारी का काम उसको सौंपा गया था, उसका चेहरा उत्साह से दिप रहा था और जी धड़क रहा था सो अलग, बिलकुल रसीली कहानियो जैसा मजा आ रहा था । उसकी अपनी शादी में यह सब कुछ भी नही हुआ था और अब उसे लग रहा था, कि वह एक दिव्य अनुभूति से वचित रह गई । बाबू कितने बुरे हैं। तो भी कुछ तो मजा था ही इसमें भी, समा नही पा रही थी उसके भीतर वह चीज । बड़ी कठिन परीक्षा थी । उसका ही दिल जानता है, कैसे यह बात वह जुबान पर नही लाई । और अगर इतने पर भी उन उम्र और अक्ल से सयानी लडकियो ने बात को भाप लिया, तो इसमें सुकेशी का कोई दोष नही था । और जब अगले दिन बाबू जी ने बिना कुछ पूछे-जाचे झट से इजाज़त दे दी तब तो और भी पक्की सील-मुहर लग गई । सबसे चचल किशोरी ने तो कह ही दिया—आज तो बाबू ने बड़ी जल्दी से हुंकारी भर दी, वैसे तो कभी घर के बाहर पैर भी नही रखने देते ।

लेकिन पर्दे की रक्षा दोनो तरफ से की गई (यह बात और है कि सुकेशी ने खुद अपने हाथो से सब्या को सजाया-बजाया, साड़ी और ब्लाउज काफी चुन कर निकाला गया, हल्का-सा पाउडर भी सब्या के चेहरे पर फेर दिया गया (जिस सबकी ज़रूरत यों ही कम्पनी बाग जाने के लिए शायद न होनी चाहिए थी) मगर खैर तब भी पर्दे की रक्षा दोनो तरफ से हुई, न सुकेशी या अम्मां ने लड़कियो को बतलाया कि वह लोग आज क्यों कम्पनी बाग जा रहे हैं, और न लड़कियो ने ही इसका कोई आभास दिया कि उन्हें सब पता है । और जब पाच बजे के करीब, नौ साल की बिट्टन से लेकर चौबीस साल की सुकेशी तक

घर की छहो लड़किया एक तांगे में लद कर कम्पनी बाग घूमने के लिए चली, तो सब इस नाटक में अपना अपना पार्ट अदा कर रहे थे।

कम्पनी बाग का क्या कहना, पूरा चमन था। मखमली दूब की कालीन बिछी हुई थी। रग-बिरगे फूलो की बहार थी। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। मुन्नी और बिट्टन ने तागे से उतरते ही धूम मचाना शुरू किया। बाकी चारो बहनें उचित शील-संकोच के साथ घूमने लगी। सुकेशी ने अपनी समझ में सबकी नजर बचा कर चारो तरफ एक निगाह डाली और जोर से सास लेते हुए कहा—कैसी अच्छी हवा है।

सध्या चाह कर भी कुछ न बोल सकी।

किशोरी ने कहा—घर में तो मेरा दम घुटता है। हम लोग रोज़ क्यो नही आते घूमने ?

सुकेशी ने कुछ नही कहा। सब यो ही टहलते रहे।

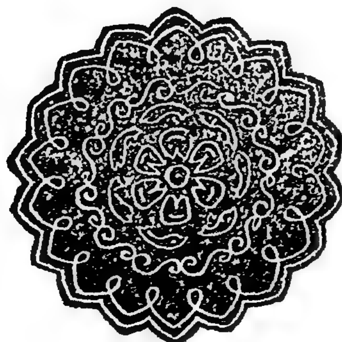
तारा बोली—दीदी, देखो कैसे अच्छे फूल है।

दीदी ने अनमने ढग से जवाब दिया—हां, बड़े प्यारे फूल है—और फिर चौकन्नी आखो से इधर-उधर देखा। अब तक उनका कहीं पता न था और साझ उतरने लगी थी। पर कौन जाने इतने सारे तो लोग है। सुकेशी ने कहा—चलो थोडी देर बैठें कही, मेरा तो पैर दुखने लगा। और सब जाकर घास पर बैठ गईं और उखडी-उखडी सी बातें करने लगीं।

सुकेशी का जी अब इस खेल से खट्टा हुआ जा रहा था। सध्या का दिल ऐसा धड़क रहा था कि जैसे फासी की घड़ी पास आ रही हो। मुन्नी और बिट्टन भी थक कर अब वही आ बैठी थी। तीस-चालीस गज दूर बाजारू लडकियो का एक गुच्छा गाहक के इतजार मे भडकीले रगो की बडे-बड़े फूल-बेलवाली साड़िया पहने अपने मर्दुओ के साथ बैठा चाट खा रहा था और किशोरी उनकी तरफ ललचाई आंखो से देख रही थी।

तभी सात-आठ साल का एक काला-कलूटा छोकरा बहुत ही नन्ही-सी बिरटी लगाए इन दोनों लोगो के पास आया और हाथ फैला कर खड़ा हो गया। सुकेशी ने अपने बटुए से एक पैसा निकाल कर उसको देते हुए कहा—इससे तो अच्छा था कि बिलकुल नंगा रहता। कम नगा मालूम होता—और उठ खड़ी हुई—चलो, अब घर चलें, काफी घूम लिए।

—इलाहाबाद से प्रसारित



शरतचन्द्र की जीवनी : एक समस्या

विष्णु प्रभाकर

प्राचीन काल में हमारे देश में यह परिपाटी रही है, कि यहा के मनीषी और साहित्यकार अपनी रचनाओ के अतिरिक्त अपने जीवन के सम्बन्ध में कोई सामग्री नही छोड जाते रहे हैं। एक कवि के शब्दो में उनका कहना था 'जैसे खुशबू फूल की पखुडियो में बसी है, वैसे ही मैं अपनी कविता की पक्तियो मे व्याप्त हू। जो मुझसे मिलने का इच्छुक हो, मेरे काव्य में मुझे पाले।" इसी मान्यता का परिणाम है कि संस्कृत साहित्य के सभी नही तो, अधिकाश कवियो और नाटककारो के बारे में आज निश्चित रूप से यह भी नही कहा जा सकता कि वे कब और कहा हुए थे।

लेकिन आज इस मान्यता में परिवर्तन हो चुका है। अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार, विभिन्न क्षेत्रों के महापुरुष अपना-अपना आत्म-चरित्र लिख कर, उनको समझने, और उनके सृजन की मूल प्रेरणा कहा है, इसको खोज निकालने के लिए विपुल सामग्री छोड़ गए है, और छोडते जा रहे हैं।

लेकिन नियम को समझने के लिए अपवाद तो होने ही चाहिए। और वह अपवाद है, भारत के लोकप्रिय कथा-शिल्पी शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय। जन-जन के हृदय को मुग्ध करने वाले इस कलाकार को इस ससार से विदा लिए अभी कुल २२ वर्ष ही हुए है। लेकिन आज तक हम उनका कोई सर्वागीण जीवन-चरित्र नही लिख पाए है। जो लिखे गए है वे या तो अधूरे हैं या परस्पर विरोधी तथ्यो से भरे पड़े है। उनके बारे में जितनी पुस्तके प्रकाशित हुई हैं, उतनी ही उनकी जीवन-कथा जटिल हुई है। उनको पढने पर यही धारणा बनती है कि मनुष्य शरत की प्रकृति अत्यन्त जटिल थी। उनके जीवन-चरित्र की सामग्री खोजता हुआ मैं जिस व्यक्ति के भी पास गया, उसने मुझसे यही कहा—तुम शरत की जीवनी नही लिख सकते।

—देखो अपनी भूमिका में यह बात स्पष्ट लिख देना कि शरत की जीवनी लिखना बहुत कठिन है।

—वह अपने युग के सबसे बडे गप्पी थे। अपने बारे मे अपवाद फैलने देने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था।

—वह स्वय अपने बारे में गप्पे प्रचारित करने में योग देते थे।

उनमें कहानी कहने की अद्भुत क्षमता थी, कहना होगा जन्मजात प्रतिभा थी। उनके बाल्यकाल के साथियो ने बताया कि जब दूसरे साथी फुटबाल या दूसरे खेल खेलते तो वह हममें से किसी को पकड कर एक कोने में जा बैठते और कथा पर कथा सुना कर हतप्रभ कर देते। उन्ही कथाओ को बाद में हमने उनके उपन्यासो में विशद रूप में पाया। इससे भारत का कथा साहित्य तो सम्पन्न हुआ, परन्तु उनके जीवन का रहस्य जटिल से जटिलतर होता गया।

उनके एक साथी ने तो यहा तक कहा कि वह एक ही घटना को जितनी बार सुनाते, नए-नए रूप मे सुनाते। जब हम उनसे कहते कि दादा! कल तो आप इस घटना को दूसरी प्रकार बता रहे थे, तो वह क्रुद्ध हो उठते—मैं कहानी लेखक हू। क्या मुझे इतना भी अधिकार नही है, कि मैं अपने कथानक को जिस प्रकार चाहू बदल सकू।

इस प्रकार उनके जीवन की घटनाए उपन्यास की घटनाए बन कर रह गई हैं। उनमे से सत्य को खोज निकालना असम्भव न भी हो, पर है अत्यन्त कठिन। कला के लिए सत्य भले ही सम्पूर्ण आदर्श न हो, परन्तु जीवन-चरित्र लिखना इस दृष्टि से विज्ञान के अधिक पास है, जिसका आदर्श सत्य ही है। साधारणतया जीवन-चरित्र लिखना बड़ा कठिन है। जैसा कि डा० जानसन ने कहा है कि वही व्यक्ति किसी का जीवन-चरित्र लिख सकता है, जो उसके साथ एक दिल हो कर रहा हो, अर्थात उसके साथ खाता-पीता बैठता-उठता रहा हो। इस पर भी शरत जैसे व्यक्ति का जीवन-चरित्र लिखना और भी कठिन है, जो जानबूझ कर अपने बारे में अपवाद फैलने देने में रस लेता रहा हो।

यही नही अपने जीवन के प्रारम्भिक काल मे वह अपनी रचनाओ को भी प्रकाश में नही लाना चाहते थे। यह तो उनके मित्रो ने षडयन्त्र करके चोरी-चोरी उनकी एक रचना 'बड़ी दीदी' को छाप कर उन्हें प्रसिद्ध कर दिया और फिर तो सम्पादको के आग्रहो से परेशान होकर उन्हें लिखना शुरू करना पड़ा। उन्होने हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक से कहा था कि उन्हें साहित्य समाज में अपरिचित और अज्ञात बने रहने में सुख का अनुभव होता है। उन लेखक बन्धु का अनुमान है कि 'कुछ रहस्यपूर्ण मनोग्रन्थियो' के कारण वह अपने जीवन काल में अपनी सम्भावित ख्याति का सामना करने से कतराते थे और लिखते केवल इसलिए चले जाते थे कि उनकी मृत्यु के बाद उनका प्रकाशन हो और तब मृत लेखक की रचनाओ के भीतर से बोलने वाली महान आत्मा समस्त लेखको पर हावी हो जाए।

यहा इस अनुमान की परीक्षा करने का अवसर नही है, परन्तु इससे इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि वह रहस्यमय थे। उन्होने दो-दोबार विवाह किया। वे विवाह वैदिक रीति से हुए या किसी और रीति से, यह दूसरा प्रश्न है परन्तु उनकी दूसरी पत्नी आज भी जीवित हैं*। कानून की दृष्टि से वह उनकी पत्नी है। इस बात का एक भी प्रमाण नही है कि शरत अपने जीवन काल में उन्हें, पत्नी के अतिरिक्त कुछ और समझते रहे हो। इसके विपरीत उनके पत्रो से और उनके मित्रो के सस्मरणो से यह स्पष्ट है कि वे दोनों आदर्श दम्पति की तरह रहे। शरत जीवन भर उन्हें बहू या बडी बहू कह कर आदर करते रहे, और वह एक सच्ची हिन्दू पत्नी की तरह शरत की पूजा करती रही। फिर भी क्या यह अचरज की बात नही है, कि एक विद्वान लेखक ने उनके बारे में लिखा, 'उस व्यक्ति ने जिसने प्रतिभा पाई, ६२ वर्ष की वय पाई, स्नेह से लबालब भरी आत्मा पाई, पर पत्नी रूप मे नारी को कभी नही पाया। नारी हृदय को जितना स्पन्दनशील और सम्पूर्ण भाव से चित्रित किया, क्या वैसा कोई गृहस्थ कर सका ? नही कर सका।' इन्ही मित्र ने जब शरत के एक प्रशसक से पूछा—क्या शरत ने शादी नही की थी ?

उत्तर मिला—एक बर्मी थी, फिर वह भी नही रही।

—नही रही, माने ?

—नही, नही, सुना उसे फिर खुद ही बर्मा भेज दिया।

एक और मित्र से पूछा—सुनता हू उन्होने शादी नही की।

मित्र सुन कर हस दिए, व्यंग्य की हसी, बोले—शादी बन्धन जो है।

ऐसी ही अनेक घटनाए हैं। शरत किसी सभा का सभापतित्व करने जाते या कहीं उनका सम्मान होता, तो भक्त गण परिचय देते हुए कह देते—शरत बालब्रह्मचारी हैं। इन्होने साहित्य सेवा के लिए शादी ही नही की।

शरत सुन कर मुसकरा देते, विरोध-प्रतिवाद कुछ न करते। कामी-कुमार्गी जिस सहज-भाव से बन जाते, उसी भाव से बालब्रह्मचारी भी बन जाते। पर वह न वैरागी ब्रह्मचारी थे, न

*खेद है कि बुधवार, ३१ अगस्त १९६० को उनका देहान्त हो गया।

कामी-कुमार्गी, वह तो साधारण मानव थे। हा, यह नियति का व्यग्य ही है, कि जिसने मानव हृदय के रहस्य को समझा, जिसकी रचनाओं में मानव ने विशेषकर बगाल की नारी ने अपने स्वरूप को देखा-पहचाना, उसका मानव रूप सात परदो के पीछे ही छिपा रह गया।

कह चुका हू कि अपने बारे में अपवाद फैलने देने में उन्हें रस आता था। पर क्यो? क्यो उन्होंने अपवाद फैलाए या फैलने दिए। जब कभी कोई उनसे पिछले जीवन की बातें पूछता, तो वह क्रुद्ध हो उठते—मेरे जीवन से तुम्हें क्या लेना है? मेरे पूर्वजो में तुम्हें क्या रुचि है? मुझे जानना है, तो मेरी पुस्तकें पढो।

लोग पूछते—क्या श्रीकान्त आपकी जीवनी है? क्या राजलक्ष्मी सचमुच कोई थी?

वह उत्तर देते—श्रीकान्त मैं नही हू। राजलक्ष्मी मुझे कभी नही मिली। वह किसी को कहां मिल सकती है?

राजलक्ष्मी की चर्चा मैं यहा नही करूगा, हालाकि उसकी खोज अभी तक चल रही है। मुझे तो अपनी समस्या की ही चर्चा करनी है। यह भी ठीक है कि 'श्रीकान्त' की अनेक घटनाए ठीक है, पर ये कहा घटी इसके बारे में तीव्र मतभेद है। भागलपुर निवासी, जहा वह १५-१६ वर्ष रहे, कहते हैं कि वे घटनाए और उनसे सम्बन्धित व्यक्ति भागलपुर के है, जब कि देवानन्दपुर के निवासी, जहां शरत पैदा हुए और कौमार्य अवस्था के ५-६ वर्ष बिताए, कहते हैं कि वे घटनाए यही घटी थी और उनसे सम्बन्धित व्यक्ति अमुक-अमुक थे।

रवि ठाकुर ने एक बार शरत से पूछा—शरत! तुमने अपनी आत्म-कथा क्यो नही लिखी?

शरत ने उत्तर दिया—गुरुदेव! यदि मुझे मालूम होता कि मैं एक दिन इतना प्रसिद्ध हो जाऊगा, तो मैं कुछ और तरह का जीवन जीता।

क्या यह उत्तर एक व्यग्य है, अथवा खरा सत्य। कुछ भी हो यह इस बात की ओर इगित अवश्य करता है कि उन्हें जिस प्रकार का जीवन बिताना पडा था उससे वह सन्तुष्ट न थे। इस बात की उन्होंने कई बार चर्चा की है। वह निचली गहराइयो में से होकर ऊपर उठे थे। प्रारम्भिक जीवन में जिस अभाव, अपमान और उपेक्षा में से उन्हें गुजरना पडा, उसने उनके साहित्यकार को तो अपूर्व बल प्राप्त हुआ, पर उनका अपना जीवन टूट गया। कई बार वह साधु बने, अज्ञातवास में तथाकथित निम्न श्रेणी के लोगो के साथ रहे, नाना प्रकार के नशे किए, नाना प्रकार की दुनिया देखी · · · इन सब बातो का स्मरण करके शायद जीवन के अन्तिम चरण में जब वह खूब समृद्ध हो गए तो वह उदासीन हो उठने और शायद इसी बात को लक्ष्य में रख कर उन्होंने गुरुदेव को वैसा उत्तर दिया हो।

कुछ भी हो, उनके जीवनीकार के लिए उनके जीवन की घटनाए एक समस्या है। यह एक चुनौती है पर चुनौती तो सदा बल देती है। यही बल उनको खोज निकालने में मार्ग दर्शक बनेगा।

—दिल्ली से प्रसारित



झांसी के किले की आत्मकथा

वृन्दावनलाल वर्मा

जिस पहाडी पर मैं खडा हूं, उसका नाम वगरा है। बुन्देलखण्डी मे वगरा जगल—पहाडों को कहते है। इस नाम के कई गाव झांसी जिले में ही हैं, जो पहाडो और जगलो के आस-पास बनाए गए है। इस वगरा पहाड़ी के नीचे इधर-उधर झासी नगर बसा हुआ है, परन्तु जिन दिनो मैं वगरा पहाड़ी पर बना कर खड़ा किया गया, उन दिनो झासी नगर नही था, उसका नाम तक न था। इस पहाडी के एक छोर पर छोटी सी बस्ती थी, जिसे वलवन्त नगर कहते थे .नाम वडा दर्शन छोटे। न तो वह नगर था और न उसमें कोई बडा वल था। थोडे से किसान चरवाहे रहते थे, बस। आजकल झांसी नगर का जो एक मुहल्ला गोपालनीखरा कहलाता है, उसमे जगल ही जगल था, जिसमें कभी शेर रहते थे।

यह वगरा पहाडी इस क्षेत्र में अकेली-दुकेली नही थी। पश्चिम में जार की पहाडी, पश्चिम-दक्खिन में ताहर की पहाड़ी, पूर्व के कामासिक होरिया और सात-आठ मील की दूरी पर प्रचड वेगवाली चौडी वेतवा के आस-पास जगल और पहाड। वेतवा के पास वाले इसी जगल को महाभारत में तुगारण्य कहा है, जिसे बुन्देलखड में तुगारेन कहते हैं। मैं यह सब इसलिए कह रहा हू, कि मेरे लिए वंगरा पहाडी को समझ-बूझ कर चुना गया था। तुगारण्य के विलकुल निकट ओर्छा था, और है। वाहर से आक्रमण करने वालो से ओर्छे की रक्षा के निमित्त मुझे बगरा पहाड़ी पर ओर्छा के राजा वीरसिंह देव ने वनवाया था, वही वीरसिह देव जो अकवर वादशाह के पुत्र जहांगीर के परम मित्र थे, और जिन्होने अकवर के प्रसिद्ध दरवारी अवुलफजल को मारा था।

अवुलफ़जल को मारने से राजा वीरसिंह देव को काफ़ी हीरे-जवाहर और सोने-चादी के सिक्के मिले थे। उन्होने इस धन का उपयोग वहुत से किले, महल वनवाने और झीले तथा ताल वधवाने में किया था। मेरे वनवाने में भी काफी खर्च हुआ था। लगभग १६०५ से वनवाने का कार्य आरम्भ हुआ और १६१० में काम की समाप्ति हुई।

मैं वगरा पहाडी पर तैयार होकर खड़ा हो चुका था। एक संध्या के समय जैतपुर के राजा और ओर्छा के महाराजा वीरसिंह देव ओर्छा के महल की ऊपरी छत पर बैठे वातें कर रहे थे। जैतपुर के राजा की उत्तर-पश्चिम के कोने की ओर दृष्टि गई। अस्ताचलगामी सूर्य की विखरी फैली सुनहरी किरणो से सारा क्षेत्र दमक रहा था कि जैतपुर के राजा ने मेरी ओर उगली उठा कर राजा वीरसिह से प्रश्न किया—महाराज, यह झाई-सी क्या दिख रही है?

वीरसिंह देव ने उत्तर दिया—वगरा पहाड़ी पर मैंने किला वनवाया है। हाल ही में तैयार हुआ है। उस पहाड़ी के किनारे वलवन्तनगर नाम का एक छोटा-सा गांव है, परन्तु आज से उसका आपका दिया हुआ नाम झाई पुकारा जाएगा। सचमुच दृश्य झाई-सा लग रहा है। नाम ठीक रहा न?

जैतपुर के राजा हर्ष-मग्न हो गए, क्योंकि उनके मुख से यो ही निकला हुआ यह शब्द वलवन्त-

नगर का दूसरा नाम बन गया। बलवन्तनगर नाम तो भुला दिया गया और झांई कहते-कहते नाम झासी पड़ गया।

यह बात नही, कि बंगरा पहाड़ी पर सिवा उस छोटे से गाव बलवन्त नगर के और कुछ था ही नहीं। एक हजार वर्ष के लगभग हो गया तब बंगरा पहाड़ी पर देवी का एक बहुत बड़ा मन्दिर और एक छोटा सा भैरव का मन्दिर था। देवी का मन्दिर मेरे बनाए जाने से बहुत पहले टूट गया था। खंडहर के एक ढेर के नीचे देवी की मूर्ति दब गई थी। जब मुझे राजा वीरसिंह ने तैयार करने की ठानी, तब उस खंडहर की खुदाई कराई गई। खुदाई में देवी की मूर्ति निकली। मन्दिर के बड़े-बड़े खम्भो का उपयोग राजा वीरसिंह देव ने मेरे एक बडे द्वार के निर्माण में किया। यह द्वार तोरण-वंदनवार/नमूने का है। इस प्रकार के द्वार बनाने का चलन जहांगीर के राज्य काल तक रहा, फिर शाहजहा के युग से अधिकाश इमारतो के द्वार कमानीदार बनाए गए।

जहा मेरा यह द्वार बनाया गया है, किले के उस भाग को शकरगढ कहते है। यह मेरे पश्चिमी अंग पर नीचे की ओर है। उस मन्दिर के खंडहर के अधिकाश पत्थर शकरगढ बनाने के काम में लाए गए है, और कुछ मेरे अन्य भागो में भी इधर-उधर लगा दिए गए है। झासी नगर की ओर दक्षिण से आने के मार्ग पर शंकरगढ भी अच्छी तरह दिखलाई पडता है, किसी अन्य दिशा से नही दिखलाई पड़ता।

वीरसिंह देव के उपरान्त १६४० तक मेरे ऊपर ओर्छा का अधिकार रहा। फिर शाहजहा ने ओर्छा को दबाने के लिए आक्रमण किया और मुझे मुगलो का अधिपत्य झेलना पडा। फिर औरंगजेब बादशाह का समय आया। वीर चम्पतराय और वीर छत्रसाल उससे लडते रहे। औरगजेब के देहान्त के बाद छत्रसाल उसके उत्तराधिकारियो से लडते रहे। अन्त में वह पूना के बाजीराव पेशवा की सहायता से दिल्ली के बादशाह के मुकाबले में सफल हुए। छत्रसाल बाजीराव को पुत्रवत मानते थे। उन्होने अपने राज्य के तीन भाग किए। दो भाग अपने दो कुमारो को दिए और एक बाजीराव पेशवा को। मराठे बाजीराव के भाग के अन्तर्गत झांसी को मानते थे। ओर्छा के राजा और मराठो में युद्ध हुआ। १७४२ में मराठा सरदार नारू शंकर ने झासी को अपने अधिकार में ले लिया। तब से १७५६ तक कभी मराठो और कभी गुसाइयो का अधिपत्य झासी पर रहा। पानीपत की १७६१ वाली लड़ाई में नारू शंकर मारा गया और गुसाईं प्रबल हो गए। फिर १७६६ में रघुनाथ हरि नेवालकर के हाथ में झासी आ गई। झासी के चारो ओर जो दीवार बनाई गई, उसका कुछ अंश नारू शंकर ने बनाया था और शेष इन्ही रघुनाथ हरि नेवालकर ने। यही रघुनाथ हरि महारानी लक्ष्मी बाई के पति गंगाधर राव के पिता थे। इन्हे भाऊसाहब भी कहते थे।

भाऊसाहब रघुनाथ हरि के तीन लड़के थे। सबसे बडे कृष्णराव, मझले रघुनाथराव और सबसे छोटे गंगाधर राव। मेरे भीतर, सबसे ऊचे स्थान पर भाऊसाहब ने महल बनवाया था, जिसमें राजा गंगाधर राव का निवास था और जिसमें लक्ष्मीबाई १८४८ से, जब उनका विवाह झांसी के गणेश मन्दिर में हुआ, रहने लगी थी।

सन १८५३ में राजा गंगाधर राव का देहान्त हुआ। देहान्त के पहले उन्होने दामोदर राव नाम के अपने एक कुटुम्बी बालक को गोद लिया था। परन्तु अंग्रेज सरकार ने इस गोद को स्वीकार नही किया और झासी का राज्य अपने अधिकार में कर लिया। लक्ष्मीबाई को अपना वह स्थान छोड़ कर नगर स्थित हवेली में जाकर रहना पड़ा। मेरी छाती पर ईस्ट इडिया कम्पनी के गोरे सिपाही आ कर रहने लगे। उस महल के ऊपरी भाग पर एक बड़ा मन्दिर भी था, जिनका

सुन्दर चित्र एक विदेशी यात्री ने इससे कई वर्ष पूर्व बनाया था और जो अब दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में है। विदेशियो का गाना-नाचना, हुड़क-फुड़क और खेलकूद होने लगे। राजा गंगाधर राव के समय मे जो भारतीय संगीत मेरी बुर्जों में गूजा करता था और मेरी दीवारो के तेलिया पत्थरों तक को मुग्ध कर देता था, वह चला गया। मैं उदास रहने लगा। परन्तु उस उदासी के कुहासे मे होकर आशा की किरणे भी फूट पडती थी. . रानी लक्ष्मीबाई के नगर स्थित महल में स्वतन्त्रता संग्राम छेड देने की सलाह करने के लिए कभी-कभी बिठूर से नाना धोंडूपन्त और तात्या टोपे आया करते थे और उनकी बातें मेरे कान में पड़ती थी। अन्त में १८५७ की चौथी जून के दिन झासी की अग्रेज छावनी के सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया। अग्रेज अफसर और गोरे सिपाही मेरे भीतर आ गए और तीन-चार दिन लड़ते रहे। रानी लक्ष्मीबाई के महल से मेरे भीतर के लिए एक सुरंग थी। भूखो मरने वाले अग्रेजो को लक्ष्मीबाई ने इसी सुरंग के मार्ग से रोटिया भेजी, क्योंकि वह अप्रतिम वीर होने के साथ ही बहुत दयावान भी थी।

अन्त में अग्रेजो ने विद्रोही सिपाहियो के हाथो आत्म-समर्पण किया। उन सिपाहियो का सरदार काले खा रिसलदार था। उन सबने आत्म-समर्पण करने वाले अंग्रेजो का वध कर डाला। फिर वे सब रानी लक्ष्मीबाई के महल के सामने शेखी मारते पहुचे। लक्ष्मीबाई ने उन्हे डाटा-फटकारा और अपना बहुमूल्य हार दे कर झासी से हटाया। वे दिल्ली चले गए। लक्ष्मीबाई ने झांसी की जनता के सहयोग से झासी के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली और वह मेरे भीतर फिर आकर रहने लगी। उन्होंने प्रजा का पालन किया। वह बहुत जनप्रिय थी, परन्तु पड़ोसी राज्य टीकमगढ के दीवान नत्थे खा को सहन नही हुआ। उसने १८५७ को चौथी सितम्बर के दिन झासी पर आक्रमण किया। रानी ने अपनी सेना का संचालन ऐसी चतुरता के साथ किया और मेरी बर्जो पर मे ऐसे गोले छुटवाए कि नत्थे खा हार कर भाग गया। रानी लक्ष्मीबाई ने स्त्रियो की भी एक सेना तैयार की थी। स्त्रियो ने तोपें चलाना भी सीखा था। प्रधान तोपची गुलाम गौस खां और लाला भाऊ बख्शी थे। इन्होने मोतीबाई, राधारानी, सुन्दर, मुन्दर, झलबाई कोरिन इत्यादि को भी तोप-बंदूक चलाने में दक्ष कर दिया था। अग्रेजो ने अपने बहुत कुशल सेनापति सर ह्यू रोज को लक्ष्मीबाई के दमन के लिए भेजा। वह १८५८ के २० मार्च के दिन झासी पर आ गया था। लगभग १५ दिन तक घोर युद्ध हुआ। अंग्रेजो के गोलो की मार से मेरे कगूरे टूटे, बुर्जें ध्वस्त हुई और मेरी दीवारें घायल हुईं। नर-नारियो ने तुरन्त मरम्मत की . मेरी मरहम पट्टी हुई . मुझे उन चोटो का बडा घमंड है। केवल एक बात का दुख है. . .मेरी ऊंचाई पर वह मन्दिर टूट गया और महल का ऊपरी भाग ध्वस्त हो गया। उस लडाई में, गोलन्दाजो का जौहर, गुलामगौस खां मारा गया। राधारानी गई और मोती बाई भी। साथ ही खुदाबख्श भी। रानी ने उसी समय गुलामगौस, खुदाबख्श और मोतीबाई की कबर बनवा दी, जो महल के पास अब भी है। जब रानी ने देखा कि युद्ध और अधिक समय तक नही चलाया जा सकता तब उन्होंने चौथी अप्रैल की रात मुझे छोड़ दिया और भाडेरी द्वार से कालपी की ओर चली गईं। झलबाई कोरिन ने छद्मवेश धारण करके रानी लक्ष्मीबाई का पीछा करने वालो को धोके में डालने का प्रयत्न किया। झलबाई पकड़ी गई। जनरल रोज़ ने उसे कुछ दिन कैद में रख कर छोड़ दिया।

फिर मेरी छाती पर होला भूनने विदेशी सेना के सिपाही आकर रहने लगे। महल के ऊपरी टूटे खंड की जगह बारकें बनी और मैं दुखी रहने लगा। दूसरे महायुद्ध के समय में मेरी

एक बुर्ज अपने आप टूट कर गिर गई। परन्तु १९४७ के पन्द्रह अगस्त के दिन स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर मैं अपना कष्ट भूल गया। १३ अक्तूबर, सन १९५२ के दिन भारतीय सेना के तत्कालीन प्रधान सेनापति जनरल करिअप्पा झांसी आए और झांसी निवासियो ने मेरी ओर से उनसे प्रार्थना की, कि मेरी वह टूटी बुर्ज सुधरवा दी जाए। उन्होंने वचन दिया और उसी वर्ष के नवम्बर के अन्त पर वह बुर्ज बिलकुल सुधरी अवस्था में कर दी गई। मेरा सिर फिर ऊंचा हो गया है। अब जनता मेरे भीतर आ कर रानी लक्ष्मी बाई के उन स्थानो को सहज ही देख सकती है, जिन्हें अंग्रेजों के जमाने में देखना बहुत दुर्लभ था।

—लखनऊ से प्रसारित

जीने के लिए कुछ शर्तें

केदारनाथ सिंह

जरूरी है
हम जहा हो,
वहां से दिखता रहे वह
झिलमिलाता क्षितिज
जो केवल हमारा है।
हम बढाए हाथ—
तो छूले सुनहली लकीरों को,
झुकें तो गहराइया—
सब मिटे, बिखरे, भूलते से
बिंब लौटा दे।
और यदि पूछे कभी तो—
सिर झुकाए सामने बैठे हुए
आकाश से,
या बगल के चुपचाप हिलते—
किवाड़ों की रोशनी से—
एक उत्तर फूट कर हमको
चकित कर जाए।
ज़रूरी है।
ज़रूरी है।
हम लगे हों काम मे,
पर अतरालों से—
कभी कोई कबूतर निकल जाए,
कभी कनखी से अचानक—
सीढियों के पास रुक कर
खिलखिलाती धूप की—
कुछ लहरियां दिख जाएं।
ज़रूरी है।
ज़रूरी है।
दिशाओं मे कही हो अनुगूंज
जो सच्चाइयों को एक लय दे।
कही हो परछाइयां—
जिनसे हवा में—
दूरियों के परस्पर कटते असंख्यों
कोण बनते रहे।
कहीं हो संभावना
जो हर थकन के बाद हमको—
बोलने के लिए बातें,
तोड़ने के लिए तिनके,
बैठने के लिए थोड़ी-सी जगह दे जाए।
ज़रूरी है।

—इलाहाबाद से प्रसारित

पंजाब के लोकगीतों में राष्ट्र-भावना

शाकिर पुरुषार्थी

लोकगीतो में वर्णित, पजाव के लोक जीवन के विविध विषयो के अन्तर्गत, राष्ट्र-भावना के द्योतक लोक गीतो का अध्ययन करते समय हमें, इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का मूल्यांकन करना होगा। पजाव के मूल निवासियो को पूर्व ऐतिहासिक काल से ही नित्य नूतन आक्रान्ताओ से लोहा लेना पड़ा है। खैवर-वोलान के पर्वतीय दर्रो के उस पार से जो भी जातियां भारत की उर्वरा भूमि की ओर आकृष्ट होती रही हैं, उनका पहला पड़ाव सदैव ही पाच दरियाओ की यह भूमि ही वनती रही है। आर्य, मगोल, शक एव ग्रीक आक्रान्ताओ के अतिरिक्त, तुर्किस्तान और ईरान से आने वाली खानावदोश जातियां भी वार-वार पंजाव को अपनी लालसा का केन्द्र वनाती रही। आठवी शती के समारम्भ में जव कि उत्तरी भारत के राज्य आपस में लड़ रहे थे, मुसलमानो ने पजाव पर आक्रमण करना आरम्भ किया और ११८६-८७ ई० तक पजाव, महमूद के वशजो के आधिपत्य में रहा। नित्य नए विदेशी आक्रमणो से टक्कर लेते-लेते पजाव के निवासियो की स्वदेश और आत्म-सम्मान की रक्षा के हेतु राष्ट्रीय-भावना प्रवलतम होती गई। पजाव के लोक साहित्य में, विशेपतः लोकगीतो में जिसकी झलक प्रचुर मात्रा मे परिलक्षित होती है।

धर्म की रक्षा और स्वतन्त्रता के हेतु सतर्क रहने के लिए, अपने आर्य-ग्रन्थो का यह मन्त्र 'भस्मसात् कुरु—'सोलहवी शती के प्रथम चरण में वावर के भारत आक्रमण के समय पुनः मुखरित हो उठा। मुगल आक्रान्ता द्वारा दलित प्रताड़ित जनता की दयनीय दशा पर समकालीन सन्त कवि गुरु नानक देव ने 'खून के सोहिले' गाए है। प्राकृतो में रचित वीर काव्यो की राष्ट्र प्रेम भावनाओ के उत्तराधिकार और युग की माग के फलस्वरूप गुरु नानक की वाणी को ही हम पजाव के लोकगीतो में प्रस्फुटित राष्ट्र भावना का आदि स्रोत कह सकते है। विदेशी आक्रान्ता द्वारा किए गए रक्तपात पर नानक की वाणी मे 'पाप की जंज लै कावलो धाया' जैसी उक्तियो का जो प्रतिरोध स्वर गुजरित हुआ है, आगे चल कर विधर्मी विजेताओ एव शासको के हिन्दू धर्म प्रहार और शोपण उत्पीड़न के विरोध में शासितो के आत्म-गौरव का प्रतीक वन 'सूरा सो पहचानिए, जो लड़े दीन के हेतु' जैसी पंक्तियो में और तीव्र हो उठा है। इस वीच की राजनीतिक उथल-पुथल और यवन-अत्याचारो आदि का चित्रण तत्कालीन लोकगीतो और सन्त कवियो की रचनाओ में पूर्ण रूपेण हुआ मिलता है। सन्तो और सूफियों की वाणी तो किन्ही प्रयत्नो से, लिखित साहित्य के रूप में होने के कारण, सुरक्षित रह सकी, किन्तु मौखिक साहित्य और केवल लोक मस्तिष्क में सुरक्षित रह सकने वाले लोकगीतो का संरक्षण पूरी तरह सम्भव नही हो सका। यही कारण है, कि राष्ट्रभावना के परिचायक लोकगीत वहुत थोड़ी सख्या में हम तक पहुंचे हैं। अव तक प्राप्त लोकगीतो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये गीत प्रायः नारी के

ल स्वच्छ हृदय के उद्‌गार हैं, जिनमें देश एवं धर्म की रक्षा के हेतु समरस्थल में पति के प्रति सद्‌भावनाएं हैं, शुभाशीष हैं, आत्म-गौरव की हुंकार और विजय का ान है। देश पर वलिदान होने वाले वीर-सेनानियों के लिए ये गीत केवल प्रोत्साहन मात्र नहीं, प्रत्युत इतिहास का, विशेषतया लोक-इतिहास का टूटता-विखरता क्रम भी इनमें गोचर होता है।

जम्मू की लडाइयो का वर्णन, कावुल की मुहिमों का चित्रण, और सिखो की ती विजय पर वीर-सेनानियो का अभिनन्दन करते, लोक गीतकारो के चिर गुजरित : आज भी हमारी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक थाती के रूप में लोक कण्ठ में सुरक्षित

अठारहवी शती के प्रथम चरण में रणजीत सिंह ने अवोगति को प्राप्त पंजाव को एक सूत्र परो कर लोकराज की स्थापना अवश्य की, चिर दलित जनता को थोडे समय के लिए शाति अनुभव हुआ अवश्य, किन्तु यह शाति 'वादलो की छांह' की भाति चिर स्थायी नही रह पाई। ाराजा के अवसान के वाद सिखो की दूसरी लडाई के पश्चात पजाव पुन: परतत्र हो फिरंगी ाश में जकड़ा गया।

पंजाव पर अंग्रेजी आधिपत्य की स्थापना के वाद पजाव के स्वतत्रता-आन्दोलन और साथ जावी कविता का नवीन युग प्रारम्भ होता है। इस काल के लोकगीतो को हम धर्म-निर्पेक्ष ट्रवादी विचारधारा का समवेत स्वर कह सकते हैं।

समस्त भारत में देश-भक्ति आन्दोलन, सुव्यवस्थित रूप से शुरू होने के पूर्व पजाव की नीय सुधारवादी धार्मिक लहरों ने इसके लिए भूमि तैयार की थी। अंग्रेजो ने उभरते हुए आन्दोलन को पूरी शान्ति से कुचलने का यत्न किया। जलियावाला वाग के हत्याकाण्ड ने ाधीनता की लड़ाई को और भी उग्र रूप दिया। अंग्रेजो के इन निरन्तर अत्याचारो का चित्रण ाव के लोक गीतो में पूरी तरह हुआ है। इस काल के प्राप्त लोक गीतो की सवसे वडी विशेपता है, कि उनमें उत्तिष्ठित जाग्रति का स्वर ही गुजरित नही हुआ, प्रत्युत देश-व्यापी स्वातन्त्र्य-न्दोलन एव स्थानीय राजनीतिक परिस्थितियो का इतिहास सम्मत चित्रण भी प्रचुर मात्रा हुआ है।

अकाली लहर के समय पंजाव के जियाले-सूरमो को उत्साहित करते हुए लोकगीत, कभी हैं 'जैतो' के मोर्चे पर जाकर शहीद होने की प्रेरणा देते हुए गूजते हैं, तो कही, भक्तसिंह के लिदान पर साश्रु स्वर में, विदेशी निरकुशता को चुनौती देते हुए। किन्ही गीतो में अंग्रेजी शासन अन्यायपूर्ण कुकृत्यो पर तीक्ष्ण व्यग्य सुनाई देता है, तो साथ ही रिश्वतखोरी और दमन के रोव में शोपितो की हुकार भी इन गीतो में मुखरित हुई है।

पंजाव के लोकगीतो में राष्ट्र-भावना का अगला पडाव है, गाधीयुगीन लोकसाहित्य। ावी लोकगीतो की नवीन चेतना के इस युग में, एक नया किन्तु सवसे प्रखर स्वर गूजता वी जी की अहिंसा का, एकता का और स्वदेशी प्रचार का। सच तो यह है, कि गाधी जी के ुद्ध-चिंतन और शालीन विचारो ने पजाव के लोक साहित्य पर गहरी छाप छोडी है। गाधी । से पूर्व अज्ञान की आधी ने हमें आच्छन्न कर रखा था। कहीं भी प्रकाश की सधि नहीं थी। ावी जी के आगमन से व्रिटिश-शासन की लौहमुष्टिका में जकड़े हुए मुगलो के लिए ज्ञान का ाज-मार्ग आलोकित हो उठा। देशवासियो को नई प्रेरणा मिली, कवि को नई दिशा मिली। विदेशी ाल का वहिष्कार, सत्य-अहिंसा का पालन, और भारतीय वेशभूषा के प्रति अनुराग के भाव ांधी जी ने जन-जीवन में जागृत किए, और वापू ही के वरदान से पंजाव के निरजनो मे चर्खे

को सोई हुई बूकरें पुन सुनाई देने लगी। राष्ट्रीय चेतना के जनक बापू के इस मिशन को कोटि-कोटि जनता को हृदयगम कराने का बीडा लोक कवि ने उठाया। लोक कण्ठ से गाई जाने वाली 'बोलियो' मे चर्खे की लोकप्रियता एव परम आवश्यकता और स्वदेशी खद्दर की प्रेरणा के साथ विदेशी माल पर भी तीखे व्यग्य के भाव प्रचुर मात्रा मे व्यक्त हुए है। यही नही, लोकगीतो मे वर्णित चर्खे का स्वरूप तो, शस्त्रसन्नद्ध फिरगी के लिए तोप से भी अधिक भयावह रूप धारण कर गया। गाधी जी की अविचल सत्य-निष्ठा और जनोपकार के प्रति कृतज्ञता के भाव व्यक्त करता हुआ, पजाब का लोकगीतकार, जहा एक ओर उनके नाम पर 'सातो स्वर्ग' न्योछावर किए दे रहा है, वही साथ ही अगस्त क्रान्ति के दिनो में बापू के स्वर में स्वर मिला कर लोकगीतो में 'छड्डु जावो हिंद गोरियो' का उद्घोष भी प्रतिध्वनित होता सुनाई देता है।

अग्रेज भारत छोड चला गया और स्वतत्रता के नए सूर्य की स्वर्णिम आभा से हिमालय के शुभ्र शिखर जगमगा उठे, किन्तु पजाब मे साम्प्रदायिकता की भयकर आधी ने सारे हर्ष-उल्लास को निगल लिया। इस काल के लोकगीतो में राष्ट्र-भावना का स्वर नारी के आसुओ से भीगा हुआ सुनाई पड़ता है। भाषा की सरलता और भावनाओ की हृदयग्राही अभिव्यजना से परिपूर्ण ये गीत अपनी पीडा से सवेदन-हीन पाठक को भी हिला देते है।

गाधी जी के बलिदान पर जख्मी पंजाब के घाव पुनः हरे हो आए। लोकगीतो में अर्पित श्रद्धांजलियो मे, पंजाब के दोआबे में प्रचलित एक गीत है 'गाधी मर गया, असा मर जाना!' लोक कवि ने इस गीत में केवल आसू ही नही बहाए, प्रत्युत अपने और समाज के प्रति सजग कवि ने अपने उत्तरदायित्व का भी भली भाति निर्वाह किया है। मनुष्य की भौतिकता प्रिय प्रकृतिया प्रबुद्ध गाधी के चिंतन को सीमित न कर दे, अत वह चेष्टाशील है, और समय रहते सतर्क कर देने की उसकी भावना में विकलता है, तो उस विकलता में बल भी है। गीत के अन्त मे शाति का आह्वान करती हुई 'लोको! एस तबाही नू हुन रोको' यह पंक्ति पाठक और श्रोता के हृदय पर अपना स्पष्ट प्रभाव छोड़े बिना नही रहती।

आज लोक-जीवन के आडम्बर विहीन, निष्कपट स्वतंत्र वातावरण मे राष्ट्र भावना और अहिंसा का जो पुनीत मुक्ति मंत्र, लोकगीतों के रूप में बार-बार मुखरित होता है, प्रेरणा की इस प्रांजल धार से आचमन कर लोकमानस युगो तक उन्हें दोहराता रहेगा। ये गीत हमारे लोक साहित्य की नवीन रचनात्मक परम्परा के द्योतक है।

—जालन्धर से प्रसारित



'कुरुक्षेत्र' में कथा तत्व

महेन्द्र चतुर्वेदी

'कुरुक्षेत्र' हिन्दी के यशस्वी कवि 'दिनकर' की अन्यतम रचना है। कवि ने स्वय इसे प्रबन्ध कविता कहा है और सात सर्गों में फैली हुई इस रचना को पारिभाषिक दृष्टि से 'पौराणिक प्रबन्ध काव्य' कहा भी जा सकता है। किन्तु सामान्यत विवेचन करें तो उसमें न पौराणिकता ही है और न प्रबन्धत्व।

महाभारत को दुहराना कवि का उद्देश्य नही। कुरुक्षेत्र दूसरे महायुद्ध की परिस्थितियो से प्रेरित रचना है। क्या युद्ध अनिवार्य है? युद्ध क्यो होते हैं और उनका दायित्व किस पर है? उस पर जो अन्यायी—आततायी है या उस पर जो उसके प्रतिकार के निमित्त युद्ध के लिए विवश हो जाता है? उस व्यक्ति पर जो समाज के हित-अहित का निर्णय करने की स्थिति में होता है या सारे समाज पर? अन्यायपूर्ण शान्ति क्या श्रेयस्कर हो सकती है? वैयक्तिक आदर्शों का पालन क्या सारे समाज के लिए सम्भव और स्पृहणीय है? ये ही प्रश्न हैं जो दिनकर जी ने इस लम्बी चिन्तन-प्रधान कविता में उठाए है और युधिष्ठिर तथा भीष्म महाभारत के इन दो पात्रों के माध्यम से दोनों पक्षो का प्रतिपादन किया है। कुरुक्षेत्र के विषय में कवि की अपनी उक्ति है कि उसमें उसका शकाकुल हृदय मस्तिष्क के स्तर पर चढ़ कर बोला है, यानी दूसरे शब्दों में कवि ने अपनी भावनाओ को विचार के माध्यम से प्रकट करने का प्रयास किया है।

चिन्तन प्रधान कविता होने के नाते कुरुक्षेत्र में कथा तत्व बहुत क्षीण है। उसमें प्रबन्ध की एकता दिनकर जी के ही शब्दों में 'विचारो को लेकर है।'

'कुरुक्षत्र' की कहानी सुनने से पहले उसकी रचना के पीछे जो कहानी है उसे जान लेना आवश्यक है। यह कहानी कवि के व्यक्तिगत जीवन की कहानी नही, समूचे राष्ट्र की कहानी है। कुरुक्षेत्र की रचना जिस समय शुरू हुई, उस समय राष्ट्र का मन एक दुविधा में था। एक बड़ा महत्वपूर्ण सवाल सामने था भारत युद्ध में शामिल हो या नहीं, और हो तो किन शर्तों पर। एक ओर गाधी जी थे चट्टान की तरह दृढ, अहिसा के एकान्त उपासक, साध्य और साधनो की एकरूपता के अटल विश्वासी। गाधी जी किसी भी तरह इस बात के लिए तैयार न थे कि भारतीय जनता लड़ाई में शामिल हो। इसी समय राष्ट्र का युवावर्ग आतंककारी कार्यों में संलग्न था। उसके भी मन में एक लगन थी देश को आज़ाद कराने की—जैसे भी हो सके वैसे। कांग्रेस के नेता भी सब गाधी जी से सहमत न थे। उनके विचारो में मतभेद था—गांधी जी अहिसा को सिद्धान्त मानते थे, अन्य अनेक नेता उसे केवल नीति के रूप में स्वीकार करते थे। इन नेताओ ने शर्त रखी कि अगर अंग्रेज़ भारत को आज़ादी का वचन दें तो हम लड़ाई में भाग लेने की बात पर विचार कर सकते है।

यह दुविधा कांग्रेस के नेताओ की न थी, सारे देश की थी। अंग्रेजो के दमनचक्र से राष्ट्र विकल था। एक जोश था सारे वातावरण में। जलियावाला और भगतसिंह कांड हो चुके थे। राष्ट्र के मन के घाव अभी हरे थे। राष्ट्र की इन्ही परिस्थितियो की प्रतिध्वनि कवि दिनकर की वाणी मे हुई है। कुरुक्षेत्र में वह युद्ध के प्रश्न का कोई कटा-छटा समाधान खोजने का प्रयत्न कर रहे है।

कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर अहिंसा पक्ष के प्रतिनिधि है, उधर पितामह भीष्म अपने व्यापक जीवन-अनुभवो के आधार पर अन्याय के दमन के लिए युद्ध को आवश्यक भी मानते है और उचित भी। कुरुक्षेत्र कौरव-पांडवो के बीच लडे गए विशेष युद्ध का ही नही, सामान्य रूप से युद्ध का प्रतीक है।

युधिष्ठिर की अवस्था वही है जो प्रत्येक संवेदनशील युद्ध नेता की अकसर युद्ध के बाद होती है—जब वह युद्ध-क्षेत्र में सत्य को रोता हुआ देखता है।

उस सत्य के आघात से
हैं झनझना उठती शिराएं प्राण की असहाय-सी,
सहसा विपंची पर लगे कोई अपरिचित हाथ ज्यों
वह तिलमिला उठता, मगर
है जानता, इस चोट का उत्तर न उसके पास है।

कुरुक्षेत्र काव्य के आरम्भ में ही हम विजेता युधिष्ठिर को एकदम व्याकुल और विक्षुब्ध पाते हैं। जिस समय पांडव शिविर में आनन्द और उल्लास की लहरें उठ रही है उस समय केवल एक व्यक्ति युधिष्ठिर विकल होकर रो रहे है। वह अपनी विजय को कुरुक्षेत्र में बिखरी हुई लाशो से तोल रहे हैं, उनका मन विजय के इस वीभत्स दृश्य पर चीत्कार कर उठता है। उनकी विजय ही मानो उनके मन पर आघात कर रही है.

एक शुष्क कंकाल, युधिष्ठिर की जय की पहचान
एक शुष्क कंकाल महाभारत का अनुपम दान।

महाभारत के सर्वनाश की ज्वाला में उनका विवेक झुलस उठा है। शंका से वह सोचते है क्या विजय सचमुच मेरी हुई या विजय दुर्योधन की हुई है जो हमें लोहू से सना राज्य भोगने और जीवन जीने के लिए छोडकर चला गया! दुर्योधन तो ईर्ष्या-द्वेष के हाहाकार से परे जा चुका है और पांडव-शिविर का यह हर्षनाद जीवितो के निमित्त एक व्यग्य है। उन्हें लगा मानो दुर्योधन कह रहा है :

हम वहां पर है, महाभारत जहां
दीखता है स्वप्न, अन्तःशून्य सा
जो घटित-सा तो कभी लगता मगर
अर्थ जिसका अब न कोई याद है।

दुर्योधन युधिष्ठिर के अन्तर्मन पर गहरी चोट करता हुआ एक विराट प्रश्न चिह्न उनके सामन खडा कर देता है :

आ गए हम पार, तुम उस पार हो,
यह पराजय या कि जय किसकी हुई?
व्यंग्य, पश्चात्ताप, अन्तर्दाह का
अब विजय उपहार भोगो चैन से!

धर्मराज का मन महाभारत की असफलता के विचार से और कल्पना में साकार बन कर आए हुए दुर्योधन के गरलमय व्यंग्य की चोट से तिलमिला उठता है और अन्तर्द्वन्द्व के अन्धकार में भटकते हुए प्रकाश के निमित्त वह पितामह की शरण जाते हैं :

भर गया ऐसा हृदय दुख दर्द से,
फेन या बुद्बुद् नहीं उसमें उठा
खींचकर उच्छ्वास बोले सिर्फ वे,
पार्थ मैं जाता पितामह पास हूं।

वास्तव में कवि का संकेत है कि युद्ध का परिणाम यही होता है—विनाश, ग्लानि, पश्चात्ताप। समूचे देश में अव्यवस्था छा जाती है। जो मर जाते हैं वे कटु स्मृतियों की उस कचोट से तो बच जाते हैं जो विजेता को जीते जी मार देती है। इस दयनीय स्थिति में पड़ा हुआ व्यक्ति क्या अपने आपको विजेता कहे?

युधिष्ठिर अपने मन की शंका, अपनी असीम व्यथा, युद्ध से जनित जीवन की विभीषिकाओं का चित्र पितामह के सामने रखकर पूछते हैं :

हाय पितामह हार किसकी हुई है यह ?
ध्वंस अवशेष पर सिर धुनता है कौन ?
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूंढ़ता है ?
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन ?
और बैठ मानव की रक्त-सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनता है कौन ?
कौन देखता है शव-दाह बन्धु-बान्धवों का ?
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन ?

युधिष्ठिर घटनाओं के विगतक्रम पर सिर धुनते हैं। कहते हैं—अगर मैं जानता महाभारत का यह परिणाम होगा तो मनोबल के सहारे लडाई लडता, इस तरह मैं इतिहास में एक नई मिसाल कायम करता और इस प्रयत्न में सफल न भी होता तो भी रक्तपात न करता, कहीं भीख मांगकर हम लोग गुजर कर लेते। जहां तक अनीति और पाप का प्रश्न है हमने भी क्या नहीं किया? युद्ध में तो पाप और अनीति दोनों ओर से होते हैं और हुए हैं।

युधिष्ठिर के अंतर्मन को भीष्म अपने प्रौढ विवेक से शान्त करते हैं।

वह पूछते हैं—युधिष्ठिर तुमने कभी तूफान देखा है? प्रकृति के बीमार अंगों—पेड़-लताओं को वह उखाड़ फेंकता है। लेकिन जिन वृक्षों की जडें जमीन में गहरी धंसी होती हैं उनका वह क्या बिगाड पाता है? और इस तूफान का क्या किसी पर उत्तरदायित्व होता है? वह तो प्रकृति के आवेगमय प्राणों का सहज विस्फोट है. वह आता ही रहता है, आता रहेगा। किसी पर उसकी जिम्मेदारी नहीं।

यह युद्ध भावना भी एक संक्रामक रोग है। एक चिनगारी कहीं जाग जाए तो फिर उसे भडकाने के अनेक कारण उपस्थित हो जाते हैं.

तुरत बह उठते पवन उनचास हैं
दौड़ती-हंसती उबलती आग चारों ओर से
और तब रहता कहां अवकाश है
तत्वचिन्तन का ? गंभीर विचार का ?

युद्ध की लपटें चुनौती भेजतीं
प्राणमय नर में छिपे शार्दूल को ।

जब रोग का एक वार आक्रमण हो जाए तो तिक्त औषधि से ही उसका उपचार हो सकता है, यानी इन विषम भावनाओं का शमन युद्ध के द्वारा ही सम्भव होता है ·

रुग्ण होना चाहता कोई नहीं,
रोग लेकिन आ गया जब पास हो
तिक्त औषध के सिवा उपचार क्या ?
शमित होगा वह नहीं मिष्टान्न से ।

पाप-पुण्य की व्याख्या करते हुए पितामह कहते हैं—कोई भी काम अपने आप में न पाप है, न पुण्य ।

इन शब्दों की सार्थकता इनकी सापेक्षता में है। धर्माधर्म के बीच कोई अन्तिम और निश्चित सीमा रेखा नही खीची जा सकती । कोई भी आदमी अपनी ओर से लडना नही चाहता ।

पर शत्रु जब ललकार कर सामने आ जाए तो ? जो युद्ध अनीति के निराकरण के लिए लडा जाए, जिसके पीछे अन्याय के प्रतिशोध की ज्वलित भावना हो—वह युद्ध निश्चय ही पाप नही हो सकता ।

कृष्ण के कर्मयोग का समर्थन करते हुए भीष्म कहते हैं :

सत्य ही भगवान ने उस दिन कहा
मुख्य है कर्ता-हृदय की भावना,
मुख्य है यह भाव जीवन-युद्ध में,
भिन्न हम कितना रहे निज कर्म से ।

भीष्म भी अलिप्त रहकर कर्तव्यकर्म करने के पक्षपाती हैं—नैतिकता-अनैतिकता दुर्बल हृदय को मथने वाले विचार है ।

वह युधिष्ठिर से पूछते है—जब कोई तुम्हारा स्वत्व छीन लेना चाहे तब क्या तुम्हे चुप बैठे रहना शोभा देगा ? क्या यह कायरता न होगी ? वहा त्याग-तप-अहिंसा की बात करना भी पाप होगा ·

छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है ।

और भीष्म एक बडी महत्वपूर्ण बात कहते है कि ये तप-त्याग, करुणा-दया ही व्यक्ति-धर्म है, इनसे व्यक्ति मन शुद्ध और सबल होता है । परन्तु समुदाय का प्रश्न उठता है तो हमें ये सब गुण छोड़ देने पड़ते है ।

यदि किसी को वन्य पशु घेर लें तो नैतिक बल क्या काम देगा ? तब तो देह-बल से ही काम चलता है—देह की लड़ाई आत्मा से नही लड़ी जा सकती, तप-शक्ति से समुदाय नही हारता ·

कौन केवल आत्मबल से जूझकर,
जीत सकता देह का संग्राम है ?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा,
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।
योगियों की शक्ति से संसार में
हारता लेकिन, नहीं समुदाय है

इसके बाद भीष्म उस शान्ति को हेय बताते हैं जो अन्याय पर अधर्म पर, आश्रित हो। जहां शान्ति तलवार के बल पर स्थापित हो और जहा वह विषमता का पोषण करे वहा कभी चिरस्थायी नही हो सकती। सच्ची शान्ति तो तभी सभव है जब उसकी नींव न्याय की शिला पर रखी गई हो। जब तक ऐसा नही होता शान्ति की कामना आकाश-कुसुम की कामना के समान है·

शान्ति नहीं तब तक जब तक,
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।
न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है
जब तक न्याय न आता
जैसा भी हो महल शान्ति का,
सुदृढ़ नहीं रह पाता।

कृत्रिम शान्ति अशान्ति से भी अधिक भयानक होती है, वह केवल तलवार का विश्वास करती है और किसी का नही। जिन्हें इस कृत्रिम शान्ति व्यवस्था में ही सुख-वैभव की सिद्धि होती है वे उसे क्यो न बनाए रखना चाहेंगे, परन्तु जिनके लोहू का पान कर के वह जीती है वे यदि स्वत्व-प्राप्ति के लिए सघर्ष करें तो क्या पाप करते हैं ? इस धरती पर न्यायनिष्ठ कम, आततायी अनस्य हैं—जब तक यह स्थिति रहेगी युद्ध क्या किसी के रोके रुक सकेगा ? इस कृत्रिम शान्ति से बचे रहने का सकेत भीष्म युधिष्ठिर को देते है, क्योकि वह सर्पिणी है जो अवसर पाते ही डस लेगी। इस शान्ति सर्पिणी का दिनकर जी ने बड़ा अर्थगर्भित वर्णन किया है

आनन सरल वचन मधुमय है,
तन पर शुभ्र वसन हैं,
बचो युधिष्ठिर ! इस नागिन का
विष से भरा दशन है।

इस कृत्रिम शान्ति की चिता कुरुक्षेत्र में जल गई थी इस लिए भीष्म युधिष्ठिर को निःशक जीवन में प्रवृत्त होने का आग्रह करते हैं। मन की दुविधा अच्छी नही। भीष्म स्वय अपना उदाहरण देते हैं। उनकी बुद्धि उन्हें कौरव पक्ष से बाध रही थी पर मन से वह पाडवो के साथ थे—इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण उनका शौर्य प्रस्फुटित नही हो सका। पर वह कहते हैं कि अब दूर से देखता हू तो लगता है मुझे निर्द्वन्द्व होकर पाडव पक्ष में शामिल हो जाना चाहिए था। शायद युद्ध रुक जाता और होता भी तो उसके इतने भयकर परिणाम न होते। हृदय और बुद्धि के द्वन्द्व में अगर कही उन्होंने मन की कोमल भावनाओं के आगे सिर झुकाया होता तो कितना अच्छा रहता :

प्रकटी होती मधुर प्रेम की मुझ पर कहीं अमरता
स्यात् देश को कुरुक्षेत्र का दिन न देखना पड़ता।

युधिष्ठिर शान्त मन से युद्ध से पहले की अपनी मन.स्थिति का विश्लेषण करते है—उन्हे लगता है वह ईर्ष्यालु है, सुखान्वेपी है, उन्हें लगता है वह साधुता का आडम्बर रचते रहे है, उनका विराग छल का एक स्वरूप है, उनकी सहनशीलता में प्रतिशोध की अग्नि छिपा है। वह एक नया व्रत ग्रहण करते है, मानवता को एक नई दिशा में विकसित करने के लिए तत्पर होते है

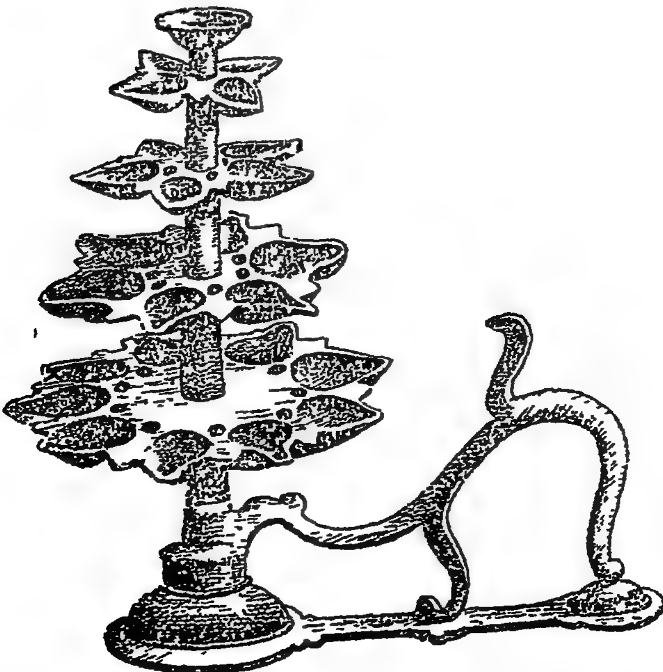
कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति पंथ की,
मानव ऊपर और चलेगा।
मनु का यह पुत्र निराश नहीं,
नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।

यहा आकर युधिष्ठिर मानो अपने आपको पा लेते है, वह मानव सभ्यता के भावी विकास के लिए कटिबद्ध हो जाते है।

अन्त में कवि ने नए मनुष्य को मिट्टी की ओर बढने का सन्देश दिया है, आकाश की ओर उड़ने का नही। परन्तु वह एक सन्तुलन चाहते है, स्थूल ऐहिकता में रम जाने का आग्रह वह नही करते। भविष्य के लिए भीष्म के इन अन्तिम शब्दो मे कवि ने आशा का सन्देश दिया है

आशा के प्रदीप को जलाए चलो धर्मराज
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से।

—दिल्ली से प्रसारित



एशियाई दर्शन की एकरूपता

डा० वी० एस० नर्वणे

क्या एशिया के देशो में, राष्ट्रीय विभिन्नताओ के होते हुए भी, कोई मूलभूत सांस्कृतिक एकता है? ऊपरी तौर से देखने पर ऐसा लगता है कि जहा योरप के सभी देश एक सभ्यता के सूत्र में सर्वदा बंधे रहे हैं, एशिया में अलग-अलग सभ्यताओ का विकास हुआ है। भौगोलिक परिस्थिति भी एशियाई सांस्कृतिक एकता के अनुकूल नही है। योरप की तुलना में एशिया बहुत बड़ा है। फ्रांस, जर्मनी और इटली एक-दूसरे के बिल्कुल समीप हैं; चीन, भारत और अरब एक दूसरे से हज़ारों मील दूर हैं। इसके अतिरिक्त योरपीय सभ्यता का ग्रीक-रोमन परम्पराओं से सीधा और गहरा सम्बन्ध रहा है। एशिया में कोई ऐसा स्रोत नही दिखाई पड़ता, जिससे सभी एशियाई देशो की सास्कृतिक परम्पराएं निकली हो। कई सहस्र वर्ष पहले, आर्यों के भारत आने से भी पहले, ऐसा कोई स्रोत भले ही रहा हो, ऐतिहासिक युगों में उसका कोई महत्व नही है।

लेकिन यदि सास्कृतिक इतिहास को व्यापक रूप मे देखा जाए, तो एशिया की प्रमुख सभ्यताओं में कुछ महत्वपूर्ण समान प्रवृत्तिया अवश्य मिलती हैं। विचारो और भावनाओ का एक विशेष वातावरण प्राच्य संस्कृति में है। यहा हम 'प्राच्य' शब्द का प्रयोग इसलिए कर सकते है कि योरप और एशिया के अन्तर को इतिहास में सदा ही पश्चिम और पूर्व का अतर माना गया है। किसी पाश्चात्य लेखक ने कहा है: मंदिर, मस्जिद और स्तूप एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। फिर भी उनमें कुछ ऐसी अनोखी बात है, जो उनको गिर्जे से अलग करती है और एक श्रेणी में ला पहुंचाती है।

इसी तरह शायद यह कहा जा सकता है कि फिरदौसी, हाफिज़, कालिदास और ली-पो में भाषा और शैली की विभिन्नता के बावजूद एक अजीब सामंजस्य है। इस एकरूपता का विश्लेषण करना कठिन है, पर उसके अस्तित्व को हमारा हृदय स्वीकार करता है।

यह प्रश्न उठ सकता है: क्या एकरूपता का यह अनुभव केवल हमारी भावनाओं की उपज तो नहीं है? सदियो एशिया के देश पश्चिम की भौतिक और आर्थिक शक्ति के सामने सिर झुकाते रहे। संस्कृति के क्षेत्र में भी पश्चिम का दबाव उन्हें सहना पडा। आज इतिहास का रुख बदला है और एशिया में नए आत्मविश्वास की लहर दौड़ी है। इस ऐतिहासिक परिस्थिति में एशियाई देशों में बन्धुत्व की भावना का निर्माण होना स्वाभाविक ही है। कही ऐसा तो नही है कि जिन देशों की संस्कृति में कोई आन्तरिक समानता नही है, वे भी आज की विशेष परिस्थिति ने प्रभावित होकर एक दूसरे को न केवल करीब पाते हैं बल्कि बीते हुए युगों पर भी इस प्रकार की समीपता लादते हैं?

इस आपत्ति में तथ्य है, और जिस भूल की ओर इसका संकेत है, उससे बचना सचमुच ही आवश्यक है। लेकिन साथ ही साथ यह भी सच है कि एकरूपता केवल भावनाजन्य नहीं है। उसका आधार कुछ दार्शनिक मनोवृत्तियो में है। कला और साहित्य में यदि समान

प्रवृत्तिया आई है, तो यह वात आकस्मिक नही। उनके पीछे केवल समान रसानुभूति ही नही, समान आध्यात्मिक अनुभव और वौद्धिक प्रयास भी है, जिन्हें हम एशियाई दर्शन के इतिहास में प्रतिबिम्बित पाते है।

चीनी, इस्लामी और भारतीय दर्शन की प्रमुख धाराओ की ओर ध्यान देना यहा आवश्यक है। हम देखते हैं कि भारतीय दर्शन के जिन सिद्धान्तों और धारणाओ से हम परिचित हैं, उनका चीनी और इस्लामी विचार-पद्धतियो में भी महत्वपूर्ण स्थान है। चीन में कन्फूशियसवाद और ताओवाद दो विभिन्न आदर्शो को सामने लाते है। ताओवाद प्रकृति और मानव में सम्पूर्ण सतुलन स्थापित करता है। चितन, मनन, जीवन की अकृत्रिम सरलता और शान्तिप्रियता, ससार की प्रत्येक वस्तु में एक सार्वभौम सत्य का अनुभव है—ये है, ताओ के आदर्श। कन्फूशियसवाद कर्त्तव्य और सामाजिक दायित्व को अधिक महत्व देता है। उसका दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी है। जीवन के सभी अगो को ध्यान मे रखते हुए वह कर्मयोग पर आधारित मध्यम मार्ग 'चुग युग' का प्रतिपादन करता है। वाद में इन दोनो प्रवृत्तियो का समन्वय मेन्शियस के मानववाद में मिलता है। भारत में रामानुज और अन्य वैष्णव दार्शनिको ने भी मानववाद के आधार पर ऐसे ही समन्वय की ओर सकेत किया था। वौद्ध धर्म के प्रभाव से, विशेषत. शून्यवाद के विकास के वाद, भारत और चीन के दर्शन एक दूसरे के और भी निकट आ गए।

जव हम इस्लामी दर्शन की ओर मुडते है, तो पहले हमे पाश्चात्य वातावरण का ही प्रभाव मिलता है। अलकिन्दी, अलफरावी और इव्ने-सीना का दर्शन प्लेटो और अरस्तू की ज्ञान मीमासा और तत्वज्ञान का विस्तृत विवेचन-मात्र है। इव्ने-रुश्द ने तो भौतिक विज्ञान ही को प्राधान्य दिया। लेकिन आगे चल कर गज़ाली और इव्नुल-अरवी के दर्शन में पौर्वात्य दृष्टिकोण फिर से शक्तिशाली हो जाता है। आत्मा और ब्रह्म की एकता, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का समन्वय, विश्व की एक रहस्यमय कल्पना—ये सभी प्राच्य दर्शन की विशेपताएं इव्नुल-अरवी में मिलती है। मध्य युग में सूफी विचारधारा जिस आसानी से प्राचीन भारतीय विचार-धाराओं के साथ घुल-मिल सकी, उससे यह वात स्पष्ट है कि अरव और फारस का दार्शनिक दृष्टिकोण मूलत. प्राच्य ही है। यहां भी धर्म और दर्शन का अविच्छिन्न सवध है, जीवन को समग्र और सतुलित रूप से मूल्याकित करने का प्रयास है। यहा भी दर्शन कुतूहल-समाधान का साधन-मात्र न रह कर मुक्ति और आत्म-साधना की पहली सीढी है, यहा भी ब्रह्मास्वादन और रसास्वादन को एक माना गया है।

इस तरह हम देखते है, कि एशिया की सास्कृतिक एकता का दृढ दार्शनिक आधार है। लेकिन इस एकता को एक अटल और निरपेक्ष सत्य समझना भी उचित नही होगा। योरप और एशिया की विचारधारा में अन्तर अवश्य है, लेकिन आज की दुनिया में इस अतर को वढा-चढा कर दिखाना, जैसा कई लेखको ने किया है, सकीर्णता का द्योतक है। हमारा युग एक ऐसे दर्शन की मांग करता है, जिसमें विरोधी प्रवृत्तियो को जगह मिल सके। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने इस प्रश्न का वहुत ही अच्छा विवेचन किया है। वीती हुई शताब्दियो मे पूर्व का अपना एक वैचारिक सगठन भले ही रहा हो, आज पूर्व-पश्चिम दोनो को एक-दूसरे में विलीन होना ही पड़ेगा। एशिया की जो दार्शनिक परम्पराए रही है, वे तो विश्व-सस्कृति के भण्डार में सुरक्षित हैं। सत्यो और मूल्यो की रखवाली नही करनी पड़ती। एशिया के दार्शनिक आचार्यो का कार्य तभी सार्थक होगा जव उसकी सहायता से एक ऐसी दृष्टि का निर्माण हो सके, जिसका आलोक समस्त विश्व के लिए हो, न कि विश्व के किसी विशेप खण्ड के लिए —इलाहावाद से प्रसारित

चलचित्रों में संगीत-परम्परा

डा० इन्द्रनाथ मदान

भारतीय नाट्य-साहित्य में गीतिकाव्य उसका अभिन्न अग रहा है और सगीत परम्परा इस गीतिकाव्य की देन है । भरतमुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में रगमंच पर संगीतकारो के लिए एक विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट कर रखा है, जिससे सगीत-परम्परा के महत्व का परिचय मिलता है। आधुनिक युग में चित्रपट ने रंगमंच का स्थान ले लिया है और जबसे बोलपट का आविष्कार हुआ है, तबसे सगीत उसका आधार बन चुका है। यह ठीक है फिल्मी संगीत अपनी स्वतन्त्र सत्ता नही रखता। इसे फिल्म के ताने-बाने में बुनना पडता है, परन्तु यह ताने-बाने का एक अनिवार्य अंग बन चुका है। फिल्मी सगीत का उद्देश्य यही होना चाहिए, कि उसके द्वारा नाटकीय तत्वो की पुष्टि हो सके। इस सदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उत्कृष्ट सगीत भी व्यर्थ बन जाता है, यदि वह फिल्म के अनुरूप न हो या उसे फिल्म पर आरोपित किया गया हो।

आज फिल्मी सगीत की दो दृष्टियो से आलोचना की जाती है—एक यह कि वह अनेक स्थलो पर आरोपित होता है, और दूसरे यह कि वह अश्लील है। अश्लीलता शब्दो और स्वरो दोनो की हो सकती है और आरोपित सगीत के भी दो रूप हो सकते है—मौखिक संगीत और पृष्ठभौमिक संगीत। रतिभाव को उद्दीप्त करने वाले शाब्दिक सगीत और मिश्रित भारतीय तथा पाश्चात्य शैलियो वाले स्वरित संगीत को अश्लील की सज्ञा दे सकते है। आरोपित एवं अश्लील संगीत के समावेश का सबसे बडा कारण फिल्म-कला का व्यावसायिक दृष्टिकोण है। अर्थ लाभ की दृष्टि से इस प्रकार के सगीत को फिल्म का अनिवार्य अग स्वीकार किया जाता है। भारतीय सामाजिक की रुचि का अभी परिष्कार नही हो पाया है। इसलिए फिल्मकार उसकी असस्कृत रुचि को तृप्त करने के लिए आरोपित एव अश्लील सगीत का आश्रय लेते है। आरोपित संगीत दो रूपो में उपलब्ध होता है—अभिनेता से भिन्न व्यक्ति द्वारा गाए गए गीत और असगत गीत। पहले रूप में कभी-कभी अभिनेता और गायक में तारतम्य का अभाव लक्षित होता है और दूसरे रूप में परिस्थिति और गीत में संगति का अभाव अखरता है। इस प्रकार मौखिक सगीत प्राय. अनावश्यक होते हुए भी फिल्मो में समाविष्ट किया जाता है, जिससे फिल्मो को व्यावसायिक सफलता मिल सके। इसके बिना फिल्म-निर्माण की कल्पना भी नही की जा सकती। पाश्चात्य परम्परा इस दृष्टि से भारतीय परम्परा से भिन्न है। पश्चिम में अनेक फिल्मो का निर्माण मौलिक संगीत के अभाव में सम्भव है, परन्तु भारत में नाटक एव सगीत का प्राय अटूट सम्बन्ध रहा है, जिसके कारण संगीत फिल्मो का अनिवार्य अग बन गया है। इसी प्रकार पृष्ठभौमिक संगीत में भी कही-कही अतिशयता से काम लिया जाता है, जो नाटकीय तत्वों को अपने भार के नीचे दबा लेती है और उनको उभरने नही देती। नाटक और सगीत की होड में सगीत की विजय अवश्यभावी है। आरोपित

सगीत के विश्लेषण से यह सिद्ध हो जाता है कि सगीत नाटकीय उपकरणो की अपेक्षा अधिक प्रेय है, यद्यपि उसकी श्रेयता में सन्देह है । इसी कारण उसकी कलात्मकता में दोष पाए जाते है।

आरोपित सगीत के अतिरिक्त स्वरित सगीत की रचना का विश्लेषण भी अपेक्षित है । इसमें चार भिन्न शैलियो का समावेश देखने को मिलता है—भारतीय शास्त्रीय सगीत, लोक सगीत, पाश्चात्य सिंफनी संगीत और राक-रोल सगीत का सम्मिश्रण फिल्मी सगीत को शुद्ध संगीत की दृष्टि से भौंडा रूप देने में सफल हुआ है । इसलिए इस सगीत को अश्लीलता की सज्ञा दी जाती है, जिसका उत्तरदायित्व संगीत निर्देशको के कधो पर रखा जा सकता है और जिसका कारण सामाजिको की रुचि बतलाया जाता है । इस सम्बन्ध मे मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि संगीत निर्देशक शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में सफल हो सकते है, तो कोई कारण नही कि वे सामाजिको की रुचि का भी परिष्कार करके स्वरित सगीत को भारतीय परम्परा के साचे में ढालने की क्षमता रखते है। शास्त्रीय सगीत राग-रागिनियो पर आधारित है, लोक-सगीत की प्रादेशिक शैलियां है और सिंफनी सगीत में पाश्चात्य परम्परा के तत्व विद्यमान है, परन्तु राक-रोल पाश्चात्य सगीत का विकृत रूप है, जिसका समावेश फिल्मी सगीत को अश्लील बनाने में ही सफल हुआ है । सरगम संगीत का शुद्ध आधार है और सरगम में अश्लीलता का प्रश्न ही नही उठता, परन्तु सरगम के सदुपयोग एव दुरुपयोग में ही सगीत के श्लील एवं अश्लील रूप की रचना होती है । शास्त्रीय सगीत की परम्परा राजदरबारों तक सीमित थी। उसका आस्वादन परिष्कृत रुचि के सामाजिको तक ही परिमित था। आज सामन्ती सस्कृति के विघटन के फलस्वरूप संगीत के आस्वादन की सीमा में विस्तार आ गया है। उसको लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक प्रयोग हुए है, जिनका विश्लेषण अपेक्षित नही है। भक्ति युग में भी शास्त्रीय सगीत को लोकप्रिय बनाने का सफल उपाय हुआ था । परन्तु आधुनिक युग में इसका श्रेय फिल्मी सगीत को है।

फिल्मी सगीत के दोष पक्ष के अतिरिक्त इसका गुण पक्ष भी है। लय को सभी मुक्तकण्ठ से संगीत का आधार स्वीकार करते है। सभी शैलियो में लय का तत्व विद्यमान होता है। कुछ संगीत निर्देशक इस लय को लोक-संगीत में खोजते है, दूसरे इसे महाराष्ट्र की सगीत परम्परा में अधिक पाते है, तीसरे इसे शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियो में प्राप्त करते है। लोक-सगीत के क्षेत्र में पजाब का भगड़ा और टप्पा, उत्तर प्रदेश की कजरी, राजस्थान की होली और महाराष्ट्र की लावनी ने फिल्मी-संगीत के निर्माण में योगदान दिया है । शास्त्रीय-सगीत की मन्थर एव मन्द गति के स्थान पर लोक-संगीत की द्रुत गति ने फिल्मी-सगीत को लोकप्रिय बनाने में सहायता दी है । परन्तु पाश्चात्य संगीत के अन्धानुकरण ने भारतीय संगीत को विकृत रूप भी प्रदान किया है । यह ठीक है कि सिंफनी-सगीत में विविधता का गुण है और राक-रोल संगीत में एक विशेष प्रकार की शक्ति भी होती है। यदि पाश्चात्य शैलियो का समावेश सावधानी से किया जाए तो फिल्मी संगीत को अश्लीलता से सुरक्षित भी रखा जा सकता है। यह भी सत्य है कि पाश्चात्य संगीत में वाद्य-यन्त्रो की मात्रा बहुत अधिक है, पर भारतीय यन्त्रो के परिवार में उनका विस्तार एवं परिष्कार सम्भव है । सारंगी और इसराज के आधार पर नए यन्त्रों की अवतारणा हो सकती है। पाश्चात्य वाद्य-यन्त्रों के कारण ही फिल्मी गीत विदेशी वातावरण की सृष्टि करते है, चाहे उनका आधार शास्त्रीय राग और रागिनियां भले ही हो । उनमें तान को पाश्चात्य वाद्य-यन्त्रो के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। इसलिए फिल्मी-गीतों में विदेशीपन की ध्वनि

पाई जाती है । इस दोष को दूर करने के लिए नए भारतीय वाद्य-यन्त्रों की आवश्यकता है, जिनके संयोजन से आरकेस्ट्रा की विविधता का समावेश हो सके । पाश्चात्य संगीत को भारतीय रूप देने में भी सावधानी से काम लिया जा सकता है, जिससे भारतीय संगीत की निजता सुरक्षित हो सके । फिल्मी संगीत के द्वारा विविध प्रादेशिक शैलियों का राष्ट्रीयकरण भी सम्भव हुआ है । इस उपलब्धि की अवहेलना नहीं की जा सकती। चलचित्रों के संगीत को राष्ट्रीय संगीत की संज्ञा देना अनुचित न होगा । फिल्मी संगीत ने प्रादेशिक बाधाओं को पार कर विभिन्न भाषाओं की फिल्मों में अपना स्थान बना लिया है। इसकी सीमाओं से अवगत होते हुए भी इसकी सम्भावनाओं की उपेक्षा करना कठिन है । परन्तु इसमें मौलिकता तथा नवीनता की सृष्टि के लिए शास्त्रीय संगीत को आधार के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है ।

—जालन्धर से प्रसारित

फागुन की एक सुबह

रामविलास शर्मा

देखा तुमने
रेवा के तट
दूर दूर तक फैल रही है
सिके मूंग के पापड़ जैसी
असमतल धरती निमाड़ की !
उधर सामने
क्षितिज रेख पर
टूटे दांतों की कंघी-सी
खड़ी हुई है पल्लवहीना
बेतरतीब कतार झाड़ की !
और देखिए
अभी अभी गुस्ताख सवेरा
प्राची को बाहों में कस कर
गोरे मुखड़े पर बरजोरी
मल कर गया गुलाल !
आम्र मंजरी की उत्तेजक
मुस्कानों के इर्द-गिर्द है
डोल रहा उन्मत्त प्रभंजन
आवारा सा सर पर बांधे
सौरभ सना रूमाल !
कुंकुम घुली झील में
अनगिन
स्वर्ण मेघ के बिम्ब तैरते
सुरखाबों में
पंख समेटे !
नौजवान फसलों की
अगवानी कबूल कर
नाजुक शाखों से टेसू की
(दूर देश के प्रीतम जैसे)
बेकरार हो
झोंके भेंटे !
बिलम गए बछड़े-सा
कोई
वंशी का मोहक कोमल स्वर
भटक रहा
निर्जन घाटी में !
सूरज
श्रद्धारत किसान-सा
सत्वर गति से सधे हाथ से
चौंप रहा
किरणों के पौधे
अन्तरिक्ष की नम माटी में !

—इन्दौर से प्रसारित

पनघट पर

मोहनलाल गुप्त

पनघट गाव का क्लबघर है । लेडीज़ ओन्ली केवल महिलाओ के लिए सुरक्षित । पर पनघट की वार्ता इतनी दिलचस्प होती है कि पुरुष भी सुनने को लालायित रहते है । वर्जित क्षेत्र मे पुरुषो का प्रवेश निषिद्ध होने पर भी चोरी चुपके इक्का-दुक्का व्यक्ति वहा पहुच ही जाता है । अगर यह बेहयाई न करता, तो पनघट की गप्प-गोष्ठियो की प्रस्तुत रिपोर्ट सम्भव न हो पाती ।

वैसे तो पनघट का कार्यक्रम दिन-रात चौबीस घण्टे चलता रहता है और हर घडे के साथ एक गप्प-गोष्ठी ज़रूर हो जाती है, पर इसकी मुख्य बैठकें सुबह, दोपहर और शाम को होती हैं । सुबह और शाम को सभा में तरुणियां बूढियो की और बहुए सासो की कपाल-क्रिया करती हैं । दोपहर की जमघट में गाव की बूढिया नई पीढी, नया ज़माना, नया फैशन और समूचे गाव की आलोचना प्रस्तुत करती हैं । इनकी समिति में कोई विषय निर्धारित नही रहता । कोई बडी वार्ता का सूत्रपात करती है फिर तो बात का तार निकल पडता है । पनघट की सामयिक वार्ता में गाव की कोई भी समस्या, कोई भी घर शायद ही छूटता हो । पनघट गाव का क्लबघर ही नही, अखबार का दफ्तर है, रेडियो-स्टेशन भी है । सगीत से तो आपको थोड़ा बहुत प्रेम होगा ही । गायको की जबानी आपने सुनी होगी बेचारी पनिहारिन गोपबाला की मुसीबत की कहानी । गीत की पहली कडी होगी पनिया भरन गई · और फिर रास्ते में ही मिल गए कुवर कन्हैया । मिलते ही छेडखानी शुरू हो गई । कलाइया मुड़ गई, चूड़िया करक गई, घडा फूट गया, साडी भीग गई और बेचारी गोप बाला पानी-पानी हो कर घर लौट जाती है, सास की डाट सुनने के लिए । हर गोपबाला की एक सी ही कहानी हम सुनते आए है । पर यह पुरानी बात है । गाव की बालाएं आज भी पनघट पर जाती हैं । कन्हैया आज भी है, पर वह ज़रा इडियन पीनल कोड से डरता है । ग्राम बालाओं को पानी भरने में आज भी देर लगती है पर कन्हैया की छेड़खानी के कारण नही, पनघट की अनियोजित गप्प-गोष्ठियो के कारण। चलिए बेचारे कन्हैया को युग-युगो के लाछन से मुक्ति मिली ।

दोपहर का वक्त । काका खाने पर बैठे हैं । थाली परस गई है, पर पानी के नाम पर घडे मे एक बूद भी नही ।—अभी लाए देती हू—कह कर काकी ने घडा उठा लिया ।

—शाम के पहले लौट आना—काका ने व्यग्य किया ।

—बस अभी आई—लम्बे डग भरे और काकी पनघट पर थी । वहा बिब्बो बुआ और गलब्बो मौनी पहले से काकी की राह देख रही थी । कल्लो काकी के पहुचते ही कोरम पूरा हो गया ।

—आज तो बडी देर लगाई काकी—बुआ ने प्रश्न किया ।

—मुझे ज़रा जल्दी है ।

—तुझे रोज़ जल्दी रहती है । ज़रा बैठ तो।

—नही री, काका खाने पर बैठे है।

—काका खाने को बैठे है, तो तुझे तो नही खा जाएंगे।

—मुझे तो नही, पर देर हुई तो मेरा कपार जरूर खाएगे।

—जाने दे। तू भी काकी बूढी हुई, पर काका का प्रेम न गया। आ न बैठ।

और लो, कल्लो काकी ने हार मान ली। बुआ मौसी के साथ चबूतरे पर जम गई। अब काका की प्यास भगवान शंकर के जटाजूट से निकली गंगा ही बुझाएं तो बुझाएं। काकी की गोष्ठी प्रारम्भ हो गई है। पनघट की वार्ता की केवल शुरुआत होती है, अन्त नही होता। चाहे प्रलय हो, चाहे वज्र गिरे, बतकही चालू रहेगी। खाली घड़े आएगे, भर के चले जाएंगे, पर कल्लो काकी की बात का तार न टूटेगा।

कल्लो काकी, बिब्बो बुआ और गुलब्बो मौसी पनघट की गप्प-गोष्ठियो की तीन मुख्य स्तम्भ हैं। गांव भर की जन्मपत्री इन्हे कंठस्थ है। जिसे अपने सात पुरखे तारने हो, वह कल्लो काकी से रार ले। जिसे अपने घर में अशाति बुलानी हो, वह बिब्बो बुआ को एक बार घर में बुला ले। जिसे गाव में कोई बात प्रचारित करनी हो, उसे मौसी के कान में चुपके से डाल कर कह दे—किसी से कहना मत—शाम तक बात समूचे गाव में फैल जाएगी।

पनघट की बतकही जारी थी। बुआ ने छेडा—सुना है, काकी ठाकुर का लल्ला कलकत्ते से कमा कर लौटा है।

—हा लौटा तो है पर जानती है अपनी बहू के लिए क्या लाया है?

—क्या लाया है काकी?

—हाई हील का जूता।

—नालदार जूता क्या मारने के लिए?

—नालदार नही, ऊंची एडी का और मारने के लिए नहीं, बहू को मेम बनाने के लिए।

—गाव में जूता, वह भी ऊची एड़ी का। मेम साहब जब खेत की पगडडी पर चलेंगी तो आसमान फट पड़ेगा। क्यो काकी?

—क्या कहू? देसी कुतिया विलायती बोल।

—ठीक कहती हो काकी।

—और सुनो। छोरा बहू के लिए एक नई किस्म की साडी भी लाया है।

—कैसी साड़ी काकी?

—नाइलन की साड़ी।

—कैसी होती है काकी?

—जिसे पहन के भी बदन नगा रहे, उसे नाइलन की साड़ी कहते है। सारा शरीर दिखता है, जैसे दर्पन में मुह। मै तो लाज के मारे मर गई और निगोडी बहू को देखो मेरे आगे ढीठ बनी बैठी रही। घोर कलियुग आ गया है, कलियुग।

—गाव में तो नही आया था काकी, ठाकुर का छोरा कलकत्ते मे लाया होगा।

पनघट की गोष्ठी की आलोचना का यह असर हुआ कि ठाकुर का लल्ला जो महीने भर की छुट्टी ले कर घर आया था, तीन ही दिन में भाग खड़ा हुआ]। जाते समय अपनी बहू को भी साथ लेता गया। कल्लो काकी ने सुना, तो कानो पर हाथ धर लिया।

जाते-जाते लल्ला की बहू कहती गई, कि जब तक ये तीनो बुढिया डायन गांव खाली नही करेंगी, मैं गांव का मुंह नही देखूंगी। यह सन्देश कल्लो काकी की बैठक में अभी तक

नही पहुचा है । पहुचा होता तो चर्चा जरूर होती।

कल्लो काकी को पनघट गोष्ठी में आज फिर सरगर्मी दिखाई दे रही है। बुआ, मौसी की कानाफूसी काकी तक नही पहुची है। गांव में जरूर कोई नई बात हुई है। नही तो कल्लो काकी इतनी चिन्तित न होती।

आखिर बात छुपी नही, फूट ही गई। गाव की वहू गाव की सबसे बडी बूढियो को डायन कह जाए, यह वर्दाश्त के बाहर बात थी। कल्लो काकी उबल पडी। बुआ ने आग में घी डाला—निगोड़ी हमें डायन कहती तो कोई बात नही थी, पर काकी तुम्हें भी नही छोड़ा ? हद हो गई।

—काकी की नाक गाव की नाक है। काकी की नाक कटी तो समझ लो समूचे गाव की नाक कट गई—मौसी ने नया वाक्य जोड़ा।

काकी का गुस्सा पराकाष्ठा तक पहुच चुका था। काकी ने फैसला सुनाया ठाकुर के बेटे और वहू ने हमारा अपमान किया है। आज से गाव का कोई आदमी ठाकुर के घर पानी भी न पिएगा।

पनघट का फैसला सर्वमान्य होना चाहिए। पर बूढी काकी ने देखा कि उनका निर्णय केवल मौसी और बुआ तक ही सीमित है। ठाकुर के घर पहले से अधिक भीड जुटने लगी।

मौसी ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि पनघट की नई पीढी ने जिहाद बोल दिया है। गाव की सारी तरुणिया बेटिया और वहुए एक साथ विद्रोह कर उठी है, कि अभी तक पनघट पर कल्लो काकी का एक छत्र राज्य था। काकी, मौसी और बुआ तीनो मिल कर जो चाहती थी, करती थी। पर अब तीनो की तानाशाही समाप्त हो चुकी थी।

पनघट की नई बैठक में बेटिया दादियो के मुकाबले आ खड़ी हुई। बहुए घूघट खोल कर आ शामिल हुई। नई पीढी का नया रुख देखा, तो काकी, बुआ और मौसी तीनो खिसक गई।

बहुओ में आत्म-विश्वास लौटा तो वृढियो के विरुद्ध एक-एक करके आरोप बढने लगे। आरोप-पत्र प्रकाशित हो गया।

बिब्बो बुआ की वहू ने सरे आम घोषित किया कि यह बात सरासर झूठ है कि वह बहरी है। बुआ ने सारे गाव में यह बात फैला रखी थी कि उनकी वहू कम सुनती है।

पनघट की नई सभा ने निश्चय किया कि आज से गाव की सभी बहुए कुछ कम सुना करें — कम-से-कम बूढी मौसी, बुआ, काकी और सास की बातें।

एक-एक कर बूढियो की कलई खुलने लगी। गुलब्बो मौसी ने पनघट में घोषित किया था, कि उनकी वहू एक आख की कानी है और वह अपने बेटे का दूसरा विवाह करेंगी। पर बेटे ने गलती से वहू की दोनो आखें देख ली और उसे वहू की आखें पसन्द आ गई। मौसी को बेटे की दूसरी शादी का कार्यक्रम रद्द करना पडा।

कल्लो काकी के झूठे आरोपो के कारण जो वहुए पीहर चली गई थी, वे पुनः ससुराल वापस आ गई। बूढियो के हस्तक्षेप के अभाव में गांव के घरेलू झगडे आप से आप शांत हो गए। कल्लो काकी का नुस्खा था कि वहू को कब्जे में रखने के लिए पीठ पर डंडा लगाना जरूरी है। गाव के युवक डडे से अधिक अब अपनी पत्नियो से प्यार करने लगे।

गाव में अपनी उपेक्षा देख कर अब काकी, बुआ और मौसी तीनो गाव छोड कर काशी चली गई हैं। उनका अभाव गाव के छोटे-बड़े सबको खटकता है। गाव के पनघट पर आज भी बैठक जमती है, पर पनघट की गप्प-गोष्ठिया कल्लो काकी, बुआ और मौसी के बिना सूनी सी लगती हैं।

—इलाहाबाद से प्रसारित

कृष्ण भोग

अली अब्बास हुसैनी

ठकुराइन बड़े गुस्से में थी, बात थी भी ऐसी ही, भगवान कृष्ण के सामने चढ़ा हुआ आमों का भोग आज तीन दिन से बराबर गायब हो रहा था। वह सुबह तड़के उठते ही स्नान कर के अपने बाग में चली जाती, जहां कृष्ण की मूर्ति पर चढ़ाने के लिए अपने हाथ से तरह-तरह के फूल चुनती, वहां पांच आम भी अपने सामने ही तुड़वातीं। फूलों के साथ ये आम भी वह एक चांदी की थाली में रख कर भगवान की मूर्ति के सामने रख देतीं। ये आम दूसरे दिन सुबह तक इसी तरह रखे रहते। फिर पुरोहित जी आकर दूसरे प्रसादों के साथ उन्हें अपनी झोली में डाल ले जाते।

इसी दस्तूर में आज तीन दिन से बराबर फर्क पड़ रहा था। 'प्रसाद' की और चीजें तो पुरोहित जी को मिलतीं, मगर आम गायब रहते। यूं तो आम कोई ऐसी कीमती चीज न थे कि उनकी चोरी पर एक शोर उठता। लेकिन यह महीना अगस्त का था, पूरे ज़िले के आम वस्ते जुलाई तक खत्म हो चुके थे। ठकुराइन के बाग में भी सिर्फ 'भदिया' आम बाकी रह गए थे। इसलिए इस सेर-चश्म देवी की नजर में भी उनकी कीमत इतनी बढ़ गई थी, कि वह उन्हें खुद तक न खातीं, बल्कि रोजाना पाच-पाच के हिसाब से 'भोग' में चढा देतीं। खयाल था भगवान को वही नजर पसन्द आई है, जो अपने जी को मार कर पेश की जाए।

पुरोहित जी भी बहुत ही झल्लाए हुए थे। ये आम उन्हीं को तो मिलते थे और वह उन्हें खुद खाने की जगह आठ-आठ आने फी दाना के भाव से बेच दिया करते थे। ढाई रुपये रोजाना की आजकल आमदनी थी. इन तीन दिनों में साढे सात का नुकसान हो गया। इस महगी के समय में यह कोई ऐसी छोटी रकम न थी कि देवताओं के इस दास को गरां न गुज़रती, उन्होंने ठकुराइन से नाराजी के लबोलहजे में शिकायत की। कृष्ण का सेवक अपना नेग आसानी से छोड़ने को तैयार न था।

ठकुराइन को पहले तो यकीन ही न आता था कि उनके मन्दिर से भोग गायब भी हो सकता है? पर, जब पुरोहित जी ने कस्में खाकर यकीन दिला दिया, तो उनके गुस्से की कोई इन्तिहा न रही। वह एक राजपूतनी की तरह बफर पडी और एक शेरनी की तरह दहाडने लगी। उन्होंने हंटर उठा लिया, और नौकर-चाकर, महगी-कहारी, हर एक से धमका-धमका कर पूछा—ठीक-ठीक बताओ, यह किस की हरकत है।

मगर जब मर्द-औरत, छोटे-बड़े, बूढे-वाले, हर एक ने श्री कृष्ण ही की सौगन्द खाई, तो उन्होंने पुरोहित जी से चुपके से तय किया—आए, हम आप आज रात मन्दिर में छिप कर बैठें, देखें कौन चोरी करता है।

दोनो ने अपनी इस तदबीर की किसी को कानों-कान खबर न होने दी। ग्यारह बजे रात को जब सारी कोठी में सूना पड़ गया, तो पुरोहित जी और ठकुराइन मन्दिर में दबे पाव

दाखिल हुए । पुरोहित जी पश्चिम की तरफ एक वडी मूर्ति की आड मे चले गए। ठकुराइन ने पूर्व की तरफ अपने लिए एक अधेरा कोना चुना।

पुरोहित जी तो उसी तालाव की मछली थे। उनके लिए तो मन्दिर गोया घर था, वह तो थोडी ही देर में इत्मीनान से पैर फैला कर सो गए। उनकी तोद वरावर फूलती पिचकती रही। उनका मुह खुलता और वन्द होता रहा, उनके खर्राटे मन्दिर के दरो-दीवार से टकराते रहे, मगर ठकुराइल देवताओ की उस महफिल में अपने को अजनवी महसूस करती रही। यू भी जव से ठाकुर साहव वैकुठवासी वने थे, उनकी नीद उचाट-सी हो गई थी। आज तो इस नई जगह पर वह विनती करने पर भी आने वाली न थी।

हा, उसकी जगह वहुत-सी यादे अलवत्ता चली आ रही थी। जव वह दुल्हन की सूरत मे पहली वार उस कोठी मे आई थी, तो उनको मोटर से उतारते ही सीधे इसी मन्दिर में अपने दूल्हा ठाकुर के साथ आना पड़ा था। कैसे शरीर थे वह भी। मूर्ति के सामने तो गर्दन झुकाए उन्ही की तरह मन ही मन प्रार्थना करते रहे। पर जैसे ही उठ कर चलने लगे, उन्होने ठकुराइन को कुछ ऐसी नजर से देखा था कि वह पसीने-पसीने हो गई थी। पांच-चार दिन वाद, तो उन्होंने उनसे इस नजर की शिकायत की थी। वह आख चमका कर वोले थे—वाह, मैंने तो यही दुआ मागी थी कि मेरी पत्नी को भी अपनी रावा जैसी मेरी मतवाली वना दीजिए।

और ठकुराइन के दिल में इस याद से ऐसा दर्द उठा, कि उन्होने जव तक कृष्ण भगवान के चरण जाकर न छू लिए, वह अपने दिल को संभाल न सकी।

फिर उन्हें वह दिन याद आया जव वह अपने ठाकुर के वैकुठवासी होने पर अपने कुमार को लेकर यह प्रार्थना करने आई थी कि वह वालक विल्कुल अपने वाप जैसा हो, वैसा ही हसमुख, वैसा ही निडर, वैसा ही भाग्यवान, और उन्होने अपने लिए भी उसकी शक्ति मागी थी, कि वह कुमार के सयाने होने तक रियासत के सारे काम संभाल लें। फिर उन्हें वह शाम भी याद आई, जव वह कुमार के हाई स्कूल पास होने पर उसे साथ लेकर इसी पवित्र स्थान पर लाई थी। और उन्होने दुआ मागी थी कि वस इतने ही दिनो और मुझको जिन्दा रखना कि वी० ए० पास हो जाए और मै घर में चाद-सी वहू ले आऊ। और वह सोचने लगी—अव वहुत दिन वाकी नही रह गए। हिज्र की रात कट गई। अव मैं भी जल्द ही अपने पिया से जा मिलूगी।

और वैसे ही किसी के पाव की चाप सुनाई दी।

ठकुराइन ने आंखें मल कर मन्दिर के दरवाजे की तरफ देखा। एक साया-सा अन्दर की तरफ वढता दिखाई दिया। वह जरा सभल कर वैठ गई। साया चवूतरे की वगल वाले, वड़े दिए के सामने आ गया। उन्होंने देखा एक औरत सिमटी-सिमटाई कुछ सहमी-सहमी-सी चली आ रही है। मूर्ति के करीव पहुच कर उसने हाथ जोड कर प्रणाम किया, भगवान के चरणो मे कुछ फूल डाले, और पाचों आम समेट कर आंचल में वांव लिए।

ठकुराइन ने अपनी जगह से डाट कर पूछा—कौन ?

औरत घवराई, डरी, पलट कर भागने लगी कि पुरोहित जी न भी जागकर 'चोर चोर' की हांक लगा दी और मूर्ति की तरफ दौड पड़े। औरत ने जल्दी से मूर्ति के पाव पर हाथ रख दिए और वही सिमट कर वैठ गई।

ठकुराइन ने पास जाकर देखा तो लतिया मेहतरानी निकली। वह गुस्से से थरथर कांपने लगी। अछूत और उनके मन्दिर में, और इस पर भोग की चोरी, वस न चलता था कि उसे

वहीं अपने हाथ से नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े कर डालें। पुरोहित जी भी थप्पड़ मारने को हाथ उठा कर रह गए। लतिया उस वक्त ऐसे की पनाह में थी, जिसके करम की पनाह ठकुराइन भी मागती थीं और पुरोहित जी भी। जब उसके चरण पर लतिया का हाथ हो तो उसे मारने के लिए किसी का हाथ कैसे उठे, फिर भी वह इस तरह छोड़ी न जा सकती थी। नौकर-चाकर, चौकीदार, कहार, सबको पुरोहित जी की 'चोर चोर' की चीख खींच लाई थी। सब ठकुराइन के हुक्म के पाबन्द थे। उन्होंने गुस्सा जब्त करके पूछा—यहा क्यों आई? क्यों आम चुराए?

लतिया ने कहा—सवा महीना होता है, मेरे मुनवा का बुखार नहीं जाता, बैद जी ने कहा, इसे लू लगी है। जब तक उसके शरीर भर में कच्चा आम कुचल कर न मला जाएगा और आम का रस न पिलाया जाएगा, बुखार न जाएगा। आम अब कहीं मिलता नही। हम भगवान कृष्ण के यहां मुह अंधेरे, प्रार्थना करने आए स्नान करके, सब से छिप के आए और उनकी ठोकरो में आम पड़े पाए। उन्होंने हमको दिया, हमने नही चुराया। मुनवा के लिए खुद भगवान ने दवा भेज दी।

ठकुराइन ने कुछ सोच कर कहा—इसे बरामदे के खम्भे से बांध दो, मैं स्नान करके पहले भोग चढा लू फिर फैसला करूगी।

पुरोहित जी बोले—और जब तक सब कहार मिल कर जल लाएं, म सारा मन्दिर धो कर पवित्र करूंगा।

ठकुराइन ने फूलो और आमो की थाली हाथ में ली और कृष्ण जी की मूर्ति की तरफ बढीं, मगर जैसे ही थाली रखने को झुकी, लड़खड़ा गई। थाली टेढ़ी हो गई और आम गिर कर बिखर गए।

ठकुराइन ने आम इकट्ठा कराए। गंगाजल में उन्हें धुलवाया, फिर थाली में उन्हें रख कर ले चलीं। हवा का एक झोका-सा आया, साड़ी का निचला हिस्सा फड़फडा कर पाव में फंसा, वह गिरते-गिरते बची और आम फिर बिखर गए।

उन्होंने अब के आमों को गऊ माता के दूध में अपने हाथों से निहलाया, थाली के बीच में उन्हें रखा, चारो तरफ फूल सजाए। थाली दोनो हाथों से मजबूती से पकड़ी और चबूतरे की तरफ चली। अचानक मूर्ति पर नजर पड़ गई। न जाने क्या देखा कि जिस्म भर में कपकपी पड़ गई। थाली हाथ से छूट गई और आम फिर फर्श पर आ रहे; ठकुराइन का चेहरा तमतमा उठा। वह मूर्ति के सामने सिर झुकाए, आंखें बन्द किए बहुत देर तक बैठी रही। फिर उठी, थाली में आरती का सामान लगाया, रोज के आमो की जगह मिठाई का भोग चढ़ा दिया।

जब आखो में आंसू भरे वह पलटी, तो उन्होंने देखा पुरोहित जी जमीन से आम चुन रहे है। वह बोली—पुरोहित जी, अब आप इन आमों को हाथ नही लगा सकते, ये भगवान ने लतिया को दे दिए।

वह मुख खोले इस नादरी हुकम का मतलब समझने की कोशिश ही कर रहे थे, कि उन्होने एक कहारी से कहा—लतिया को बुलाओ।

पुरोहित जी बड़बड़ा उठे—यह क्या, यह क्या, क्या वह शूद्र फिर इस मन्दिर में आएगी।

ठकुराइन ने कहा—मैं क्या करू। जो अपना भोग देना चाहता है, उसी का तो घर है।

और लतिया के आने पर वह बोली—लो जी, यह उठाओ अपने आम और तुम ही उन्हें भोग चढा के मुनवा के लिए ले जाओ।

लतिया ने जमीन से आम चुने, उन्हें साड़ी के आंचल से पोंछा और थाली में रख कर भगवान

के चरणो मे रख दिया। फिर उसने हाथ जोड कर प्रार्थना की, और सारे आम अपने आंचल में बांध कर मन्दिर से चली गई।

पुरोहित जी पल्थी मार कर बैठ गए और झूम-झूम कर कहने लगे—हे भगवन्त तेरी लीला है, भगवन्त तेरी लीला !

—लखनऊ से प्रसारित

मूर्ख दर्जी

बालकृष्ण राव

एक दर्जी था, हमारे शहर मे ही
मूर्ख था सबसे बड़ा अपने समय का
खो गई उसकी सुई गिर कर किसी दिन
बैठ कर दूकान मे जब सी रहा था।
कुछ उठा रक्खा न उसने खोजने में
पर न पाई वह सुई दूकान में फिर।
ढल चला दिन, रोशनी कम हो चली थी
ढूढ़ता दूकान में बेकार था अब,
इसलिए जा कर सड़क पर ही लगा वह
ढूंढ़ने दूकान में खोई सुई को—
क्योंकि बाहर शाम को भी रोशनी थी।
मूर्ख था वह, पर हमारी बुद्धि कहती
'शांति जीवन के अंधेरे में न खोजो
धर्मग्रन्थों के उजाले में मिलेगी।'

—इलाहाबाद से प्रसारित

मेगस्थनीज

कमला केतकर

भारतवर्ष सदा से ही पश्चिमी राष्ट्रों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। अत हजारो वर्ष पूर्व मनु ने भी लिखा था कि :

एतद्देशप्रसूतस्य एकाशादग्र जन्मन
स्वं स्वं चरितं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवा

अर्थात प्राचीन सभ्य देशो में से एक होने के कारण भारत में प्राचीनकाल से ही विदेशियों का आगमन होता रहा है। कोई धन के लिए, कोई धर्म-ज्ञान के लिए, कोई भ्रमण के लिए यहां आया। उस प्रकार धन, धर्म और भ्रमण हर प्रकार की भावना लेकर यहा यात्रियो के काफिले आए। सिकन्दर व सेल्यूकस के भारत से लौट जाने पर यूनानी लेखक, राजदूत या यात्री के रूप में भारत आए। कुछ पाश्चात्य लेखकों ने तो उन्ही के लेखो के आधार पर भारत के बारे में लिखा, जिससे भारतीय इतिहास की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। उनमें मेगस्थनीज, प्लिनी, टाल्डेगी, फाह्यान, युआन च्वाग, एरियन आदि के नाम उल्लेखनीय है। यदि इन लेखको, यात्रियो, राजदूतों द्वारा हमारे प्राचीन इतिहास का परिचय न मिलता, तो हम अपने महान अतीत से अपरिचित ही रहते। अत इन यूनानी राजदूतों, चीनी यात्रियो के हम बहुत ऋणी हैं।

मेगस्थनीज सीरिया के शासक सिल्यूकस निकेटर के राजदूत के रूप में ३०३ ईसा पूर्व में पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था। पाटलिपुत्र को प्रारम्भ से ही भारतीय साम्राज्यो की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेगस्थनीज सम्भवत ६ वर्षों तक पाटलिपुत्र में रहा। उसने भारत की तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थिति के विषय में बहुत कुछ लिखा है। अत्यन्त शोक की बात है कि मेगस्थनीज की 'इण्डिका' पुस्तक की मूल प्रति उपलब्ध नही है, किन्तु अन्य पाश्चात्य लेखको ने उसके उद्धरण लिए हैं। उन्ही ग्रंथो के उल्लेखो से पर्याप्त ऐतिहासिक तथ्य ज्ञात होते हैं। उसी पुस्तक के आधार पर ही कतिपय यूनानी तथा रोमीय लेखको ने भारतवर्ष का वर्णन किया है। यही उसके महत्व का द्योतक है। राजदूत के रूप में आने वाला यह पहला यूनानी राजदूत था, जो विदेशो के प्रति हमारे सौहार्द पूर्ण सम्बन्धों की साक्षी देता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य तथा शासन प्रबन्ध आदि का ज्ञान हमें मेगस्थनीज की 'इण्डिका' तथा कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से होता है। यद्यपि दोनो के विवरण में पूर्ण साम्य नही तथापि हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि यूनानी राजदूत ने अपने अध्ययन से देश का वर्णन किया। राजअतिथि के रूप में वह केवल पाटलिपुत्र में रहा अत. देश की सर्वसाधारण जनता से पूर्ण परिचित न हो सका।

मेगस्थनीज ने अपने यात्रा विवरण मे पाटलिपुत्र, वर्तमान पटना, का विशद वर्णन किया है। उसने लिखा है कि यह विशाल नगर गगा व सोन के सगम पर स्थित है। उस समय पाटलिपुत्र की लम्बाई साढे आठ मील (८० स्तदिया) और चौड़ाई १३ ४ मील (१५०

स्तदिया) थी। यह नगरी समानान्तर चतुर्भुज के आकार की बनी थी और उसकी रक्षा के लिए चारों ओर लकडी की प्राचीर थी। प्राचीर के साथ चारो तरफ ४५ फुट गहरी और ६०० फुट चौडी खाई खुदी हुई थी। लकड़ी की प्राचीर में ६४ द्वार तथा ५०० गुम्बद थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन प्रबन्ध के बारे में मेगस्थनीज़ ने लिखा कि चन्द्रगुप्त एक महान शक्तिशाली सम्राट था। अतः पूर्ण शासन सत्ता राजा के हाथ में होती थी। राजा शासन व्यवस्था की छोटी-छोटी बातो को स्वयं देखता था। उसका कार्यक्रम इतना व्यस्त रहता था कि वह मालिश करवाते समय भी प्रजा के दुखो को सुनता तथा राजकर्मचारियो से राज्य की खबरे सुन लेता था।

चन्द्रगुप्त का शासन प्रबन्ध बहुत सुव्यवस्थित था। इसीलिए उसके राज्य में न तो विद्रोह हुआ और न देश की शाति ही भंग हुई। नगर शासन का पूर्ण विवरण हमें मेगस्थनीज़ की 'इण्डिका' द्वारा प्राप्त होता है। वह लिखता है कि नगर प्रबन्ध के लिए ५—५ सदस्यो की ६ समितिया थी।

एक शिल्पकला समिति थी, जो कलाकारो, मिस्त्रियो और अन्य श्रमिको का पारिश्रमिक निर्धारित करती थी और औद्योगिक कलाकारो की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी इसी समिति पर था।

वैदेशिक समिति का कर्त्तव्य विदेशियो के आवागमन, निवास स्थान आदि का प्रबन्ध करना था। विदेशियो की मृत्यु के बाद यही समिति उनकी अन्तिम क्रिया करती थी और उनकी धन-सम्पत्ति को उचित उत्तराधिकारियो को देती थी।

जनसंख्या समिति जन्म-मरण का पूर्ण लेखा रखती थी। वाणिज्य व्यवस्था समिति व्यापारियो तथा वणिको की देखभाल के लिए बनाई गई थी। वस्तु निरीक्षण समिति का कार्य उत्पादित वस्तुओ को देख कर उनके दाम निश्चित करना था, जिससे उद्योगपति अनुचित लाभ न उठा सकें।

कर समिति का कार्य बिक्री की वस्तुओ पर कर वसूल करना था। यह भी काफी महत्वपूर्ण समिति थी। जो व्यापारी कर से बचने का प्रयत्न करता था, उसे प्राण दण्ड तक दिया जाता था।

यह था चन्द्रगुप्त का म्युनिसिपल शासन। जो आपके किसी भी समुन्नत नगर के शासन के लिए सुदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। मेगस्थनीज़ नगर शासन का वर्णन समाप्त करते हुए लिखता है कि पृथक-पृथक विभाग का निरीक्षण पूरे उत्तरदायित्व से किया जाता था। ग्राम का प्रबन्ध ग्रामवासी ही करते थे। गाव का मुखिया गाव के वृद्धों की सलाह से मामलो का निपटारा करता था।

राजदूत मेगस्थनीज़ चन्द्रगुप्त के सैन्य सगठन का विवरण देते हुए लिखता है, कि सेना विभाग का सगठन भी पाच-पांच सदस्यो की छ समितियो द्वारा होता था। फौजी अफसर छ समितियो मे विभक्त थे। नौ सेना, पदाति सेना, अश्व सेना, रथ सेना, गज सेना, यातायात व युद्ध सामग्री वाहिनी सेना। सैनिको की दशा के बारे में मेगस्थनीज़ ने लिखा है, कि ये संख्या में किसानो के बाद सबसे अधिक थी। सैनिको को नियमित रूप से वेतन मिलता था। उसकी सेना बहुत शक्तिशाली थी, सैनिको को राज्य द्वारा सब सुविधाएं प्राप्त थी।

नगर के सैन्य शासन के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त के ज़िला शासन पर भी मेगस्थनीज़ ने प्रकाश डाला है।

मौर्य कालीन समाज व सभ्यता का पूर्ण परिचय भी हमे मेगस्थनीज़ की 'इण्डिका' द्वारा प्राप्त होता है। उसके अनुसार भारत की सम्पूर्ण बस्ती दार्शनिक या ब्राह्मण, किसान, गडरिये आदि, कारीगर, गुप्तचर, सभासद व सेना अधिकारी इन सात वर्गों में विभक्त थी। इससे निष्कर्ष निकलता है कि उस समय जाति-पांति का भेदभाव नही था।

कौटिल्य व मेगस्थनीज़ दोनो ही के ग्रंथों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि मौर्य काल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक काल की भांति उन्नत नही थी। वह लिखता है कि स्त्रियों को स्वतन्त्रता नही थी। ब्राह्मण लोग स्त्रियो को दर्शन की शिक्षा नही देते थे। कुछ हिस्सो में स्त्रियो को खरीदने व बेचने की प्रथा थी। पंजाब में सती प्रथा का जिक्र मेगस्थनीज़ ने किया है।

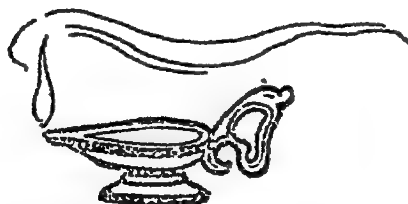
मेगस्थनीज़ भारतीयो की सादगी व सत्य से बहुत प्रभावित हुआ था, अत. उसने लिखा है कि लोग बड़ी सादगी से रहते थे। वे विशेष अवसरों के अतिरिक्त मदिरा नही पीते थे। भारतीयो को न्यायालयो में जाने की जरूरत नही पड़ती। उसने आगे लिखा है कि भारतीय ऐसे ईमानदार थे कि उन्हें गिरवी या धरोहर के लिए मुहर की जरूरत नही पड़ती थी। धन-सम्पत्ति की रक्षा के लिए पहरेदार नही रखे जाते थे। ये लोग घरो में ताले नही लगाते थे। सचाई व आचरण की पवित्रता पर बहुत ध्यान दिया जाता था। देश में मूर्ति पूजा का प्रचार था। भारतीय बडे अतिथि-प्रिय होते है इसलिए यहा विदेशियो तक के लिए कर्मचारी नियुक्त होते थे।

लोगों की आर्थिक दशा के बारे में मेगस्थनीज़ ने लिखा है कि आर्थिक दृष्टि से भारत समृद्ध था। यहा का मुख्य व्यापार कृषि ही था। राजा के आमोद-प्रमोद का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि राजा आदर्श विलासिता का जीवन व्यतीत करता था।

इस प्रकार भारतीय इतिहास की सामग्री हमें मेगस्थनीज़ जसे राजदूत और फाह्यान व युआन च्वाग जैसे धर्मनिष्ठ उत्साही यात्रियो व विदेशी इतिहासकारो से प्राप्त होती हैं। जहा हिंदू, जैन व बौद्ध ग्रथ मौन हो जाते है, वहा ये विदेशी विवरण ही हमारे अतीत पर प्रकाश डालते है।

आज हजारो वर्ष बीत जाने पर अब उस वैभवशाली पाटलिपुत्र की इमारतें शेष नही पर मेगस्थनीज़ के इन विवरणो द्वारा उनका परिचय हमें आज भी मिलता है। अत उस यूनानी राजदूत के हम आभारी है, जिसने भारत आकर भारत के अतीत की गौरव गाथा को निवेदित किया है।

—हैदराबाद से प्रसारित



आग लगे इस फैशन मे

रजिया सज्जाद ज़हीर

नागो खाला जैसी बात करने वाली बीवी अगर चुप दिखाई दे, समझिए कुछ गडबड़ है। मेरी शामत के पूछा ! बस या तो साप सूघा हुआ था या ज्वालामुखी उबल पडा। और बात सिर्फ इतनी सी थी कि अभी दो-तीन दिन हुए वह अपनी भाभी के घर से लौटी थी।

—तो क्या खातिर मदारात में कुछ कमी की गई खाला ? —मैंने दबी ज़बान पूछा।

—ऐ है ! खातिर तो बहुतेरी ही की, पर उनके घर का हाल देखके तो मेरा जी जले था के क्या कहू ? . . . . अरे क्यू का एक जवाब है। मैं तो कहू हूं के यह फैशन निगोडा आखिर किस-किस के बजा बिगाड़ेगा ? अल्ला मिया ने औरत को बाल दिए हैं, सजावट के लिए या रौनक के लिए ! बालो की चोटी गुथी हो, जूडा बधा हो क्या प्यारा लगेगा. . . . न ! मगर हुवा तो यह है एक उठी, जाके बालो में बिजली लगवा आई—बाल सुकड के हब्शी के से हो गए, लम्बे लम्बे, ऐंठू-ऐंठू, जा पहुचे चन्दी पर। . .एक उठी उन्हू ने खेच खाच जो खोपडी पर बागा कसा तो बाल दुम की तरह लटकने लगे। . .एक ने सिरे से ही प्रेस्च कर दिया। एक ज़माना आया था के सारियो में बार्डर जो लगते-लगते बड़े हुए, तो होते-होते इतने बडे हुए के लगे था अब बार्डर ही बार्डर दिखेगा, सारी खत्म हो जाएगी। फिर वह आड़ी-आड़ी पट्टियां सारी में लगने लगी, जैसे लिहाफ में गोट, फिर एक सिरे से सब कुछ ही खत्म हो गया। 'नीचे कोरी, ऊपर कोरी पहने मेरी गोरी' वाला हिसाब हो गया। अब तो अजीब ही हाल है . .गोटा, लचका, बेल सब कुछ ऊपर लगे था और आजकल नीचे लगे है। सारी के पीछे और वह भी तीन साढ़े तीन गज़ ही लगा और बाकी यह ही लटक रहा है और वह जो सारी के साथ पहने है, शलूका क्या कहें हैं उसे ?

—ब्लाऊज़ —मैंने आहिस्ता से कहा।

—ऐ हा हा वही ! बिलाज़ के बिलोज जो कुछ भी हो, तो क्या-क्या उसके फैशन बदले हैं। पहले तो वह नीची आस्तीन चली थी।

—पफ —मैंने हस कर कहा।

—तो ढेरो कपडा चुन्नट में जावे था। फिर वह आडो चली के कधो पर झन्डे से खडे रहते थे।. . . . . . .फिर जो बढनी शुरू हुई आस्तीन तो कोहनी पार करती हुई कलाई के पास जा पहुची और अब के तो मैंने ज़रीना की छोटी लडकी को देखा के अपना बिलोज काट रही थी तो न आस्तीन, न बगल, न मोढा, बस यो कैंची चलाती गई जैसे हम लोग छुटे-छल्ले मे बच्चो के लिए थैले नही बनाया करें थे। . . . कहने लगी आजकल के हिसाब से बहुत ठीक है। औरतो को अब इतनी फुरसत नही के बैठी आस्तीन और बगल गढा करें। . . . मैंने कहा बीवी फिर इतना भी काटने की क्या ज़रूरत, मुए फैशन को आग लगे। चौखुटा ही पहन लिया करो। . . . . जूतो का भी वही हाल है. क्या अच्छी लगें थी पावें में सलीमशाही और राठीली जूतिया। पहले तो वह ऊची एड़ी चली, के बीविया झूलें थी जैसे राजी मिया का बाम। फिर एक वह चला जिस पर रेलगाड़ी रुके है।

मैंने हैरान हो कर पूछा—रेल जूते पे रुके है, जूते पे ?

ऐ ! नहीं बेटी तू तो समझती नही है, वह जो उसकी एड़ी होवे थी वह....। अभी अभी दिखाई दिए है वैसे जूते, ले कुछ भला ना नाम है....।

—अच्छा वह प्लेटफार्म एडी !

हां, हां वही प्लेटफार्म ! नीचे से सपाट, ऊपर से टेढी।....फिर रस्सियो वाले नन्ने के समझ में न आता था किधर से किधर को बधी है ! गोरखधन्धा अच्छा खासा, और वह चप्पलें के जने अमा से आई थी, के जापान से; अंगूठा और ऊगली चिर कर अलग अलग हो जाती थी और अब तो जिसे देखो मोटर का पहिया पहने है, ऊपर रग-बिरंगे फीते लगे और नीचे मोटर के पहिए का तल्ला !

मैंने जरा नईमा की चप्पल अटकाई ऊगलियो में तो ऐसा लगा जाने छछूंदर पर पाव पड गया, मैंने तो उतार फेंकी के आग लगे पांव में कैसी गलगली-गलगली लगे हैं।

—और यह सब तो खैर अलग रहा—सिगार को देखो। न वह उबटन, न वह मसाले, न मेंहदी न मिस्सी, न पान, न लाखा ! मुह पर चूना पोत ले है और होंटो पर अंगारे सुर्खी लगावें है के गिलास प्याले सब पर लग जावे।

—कहा वह मसालेदार बीड़े, के घंटों मुह से खुशबू आवे, कहा वह मेंहदी के हाथ रगीन भी हो और मुलायम।

—लेकिन नाखूनो पर तो अब जो पालिश लगती है वह—मैंने उनकी बात काटी।

—अरे हा जानू हूं पालिश ! मुह काला उस पालिश का ! शीशी खोलो तो अस्पताल की सी बदबू भक से आवे है और नाखुन तो सुब्हान अल्लाह। खैर, कोई बात ना है। मैंने तो नईमा से कह दिया के बीवी कोई दिन जाना है के मिया की सूरत पर उसी के खरोंटे नजर आवेंगे।

—तो आपको कपड़ों और शृंगार के फैशन पर एतराज है, मगर......

—सदके ! ले कपड़े और सिंघार—नागो खाला जल कर बोली।—यही एक बात है। आजकल तो यह भी चला है कि जिसे देखो ढचर जा रही है।

—ढचर ?

—ऐ हा। वह जहा तस्वीरें उछलें-कूदे है।

—हा पिक्चर—मैंने कहा।

—हा वही ! क्या तू भी देखे है ?

—जी नही—मैं साफ़ झूठ बोलूगी—मैंने तो आज तक पिक्चर देखी नही।

—अच्छा किया—नागो खाला ने दुआएं देते हुए बीड़ा मुह में रखा—भला यह भी कोई बात, के घर में दाल-चावल बनने को पड़े हैं और बीवी मरदों के कन्धो से कन्धा भिड़ाए पुतलियो का नाच देखें हैं। आग लगे इस फैशन में। शाम हुई और बीबिया बन-सज कर बाजार में खडी है, इस दूकान झाकी, उस दूकान झाकी, यह चीज देखी, वह चीज देखी। अब मिया के पल्ले कुछ है के नहीं, पर बीवी को सनीमा की किसी पुतली का ब्लाउज पसन्द आ गया और अड़ी है कि वैसा ही लेंगी। आज तक कभी न देखा था कि बीबिया होटलों में खाएं, सो अब वह भी देखा। मै कहती हूं औरतों को शर्म ना आती गर मरदो के आगे चपर-चपर खाते। हम लोग तो घर के मरदों को खिला पिला कर तब खाते थे। जभी तो बरकत थी। घर की बीबिया चटोरपन दिखावेंगी, खुले आम चटक-मटक करेंगी, तो गेहूं आठ ही रुपये का दो सेर मिलेगा। आग लगे इस फशन में।

—लखनऊ से प्रसारित

हिन्दी की सामान्य भूलें

डा० विनयमोहन शर्मा

'हिन्दी' शब्द देश के व्यापक क्षेत्र मे व्यवहृत भाषा के लिए प्रयुक्त होता है। डा० ग्रियर्सन ने हिन्दी के दो मुख्य भेद किए है, एक पश्चिमी हिन्दी और दूसरा पूर्वी हिन्दी। उन्होने पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत खड़ी बोली, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली तथा पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी की गणना की है और राजस्थानी जिसकी मालवी, मारवाड़ी, जयपुरी और निमाड़ी उपबोलियां है और बिहारी को जिसमें मगही, भोजपुरी तथा मैथिली सम्मिलित है, हिन्दी से पृथक माना है। पर कतिपय अन्य भाषाविज्ञानी राजस्थानी और बिहारी भाषाओ को भी 'हिन्दी' के ही अन्तर्गत मानते है। इस प्रकार हिन्दी का क्षेत्र वर्तमान पूर्वी पजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान राज्य है। इन ६ बड़े राज्यो में हिन्दी के विभिन्न रूप बोले जाते है और भाषाविज्ञान की दृष्टि से सब शुद्ध है, क्योकि भाषा जन सामान्य के कण्ठ में सतत अपना रूप धारण करती रहती है। संस्कृत का धर्म पालि में धम्म और हिन्दी में धरम बन कर अपने प्रत्येक रूप में शुद्ध है। इसी प्रकार खड़ी बोली का खाट और बुन्देली की खटिया दोनो शुद्ध है। प्रान्त-भेद के अनुसार अनेक शब्द भिन्न-भिन्न रूप में बोले जाते है। खड़ी बोली का सख्या वाचक 'सौ' बुन्देली मे 'सो' पश्चिमी मालवी में 'हो' और पूर्वी हिन्दी में 'सै' बोला जाता है। इसी प्रकार खड़ी बोली का नकारात्मक 'नही' बुन्देली में 'नई' मालवी और छत्तीसगढी में 'नी' बोला जाता है। भूल का प्रश्न तभी उठता है, जब हम भाषा के परिनिष्ठित साहित्यिक रूप पर विचार करते है। प्रत्येक भाषा का यह रूप व्याकरण सम्मत होता है और व्याकरण भाषा की स्वाभाविक प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुरूप उसके सिद्ध रूप को प्रस्तुत करता है। उसी के द्वारा हमें भाषा के शब्द, उनके रूपो, और प्रयोगो आदि का ज्ञान होता है। अत जब हम हिन्दी की सामान्य भूलो की बात करते है, तब हम उसकी खड़ी बोली के परिनिष्ठित (स्टेण्डर्ड) रूप को ही सम्मुख रखते है।

सबसे पहले हम परिनिष्ठित हिन्दी के शब्दो के उच्चारण पर विचार करेंगे। शब्दो के उच्चारण वक्ता के क्षेत्र और शिक्षा-संस्कार के अनुसार भिन्न-भिन्न पाए जाते है। 'रत्न' पंजाबी हिन्दी भाषी के मुख से रतन बन कर निकलता है। मराठी क्षेत्र का हिन्दी भाषी 'ऋषि' को 'रुषि' और हिन्दी-क्षेत्र का 'रिषि' कहता है। सबसे बडा अन्तर तो तब प्रतीत होता है, जब संस्कृतज्ञ 'अपभ्रश' को 'अपपभ्रश' और 'अपव्यय' को 'अपपव्यय' उच्चरित करता है। संस्कृत की दृष्टि से ये उच्चारण ठीक है, पर हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप नही है। हिन्दी में विदेशी शब्दो की संख्या बढती जा रही है, और यह जीवित भाषा की प्रगति का शुभ लक्षण है। विदेशी शब्द हिन्दी की बोलियो में तो उनकी प्रकृति के अनुरूप ढल गए है, उनका तत्सम रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है, परन्तु परिनिष्ठित हिन्दी में उनके तत्सम और तदभव दोनों रूप चलते है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' का तत्सम रूप 'रिपोर्ट' और तद्भव रूप रपट दोनो स्वीकार्य है। विदेशी भाषाओ के उभय रूपी अनेक प्रचलित शब्दो के उदाहरण दिए

जा सकते हैं। हिन्दी के राष्ट्रभाषा या राजभाषा हो जाने के परिणामस्वरूप यह देश के प्रत्येक प्रान्त में बोली जाती है, परिणामत: प्रत्येक प्रान्त का हिन्दी प्रेमी अपनी क्षेत्रीय मातृभाषा के लहजे को उसमें जोड़ देता है। अतएव हिन्दी शब्दो के उच्चारण में एकरूपता रहना संभव नही है। अंग्रेज़ी शब्दो के उच्चारण के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उसका जहा-जहा प्रचार है, उसमें वहा-वहा के व्यक्तियो के लहजे समाविष्ट हो गए हैं। हिन्दी विभक्तियो के प्रयोग में अहिन्दी भाषियो से ही नहीं, हिन्दी भाषियो से भी भूल हो जाया करती है। 'ने' विभक्ति बहुतो का सिर दर्द बनी हुई है। हिन्दी-व्याकरण के अनुसार कर्म और भाववाच्य भूतकालिक कृदन्त-प्रयोगो में यह विभक्ति लगती है। हिन्दी की उपभाषाएं व्रज तथा अवधी में इसका प्रयोग नही होता। यह विभक्ति हिन्दी में कहा से आई, इसके सम्बन्ध में विद्वानो में मतभेद है। बहुतों का मत है, कि यह संस्कृत की तृतीया विभक्ति 'ऐण' से निकली है। पं० किशोरी-दास वाजपेयी के अनुसार यह संस्कृत के 'बालकन' से 'इन' अलग करके बनी है। 'इन' वर्ण-व्यत्यय से 'न' 'इ' बना और फिर 'अ' तथा 'इ' में संधि होने से 'ने' रूप को प्राप्त हो गया। जो हो 'ने' के प्रयोग में हिन्दी के कतिपय प्रसिद्ध लेखको में भी प्रमाद पाया जाता है। उदाहरणार्थ, मैंने पुस्तक लिखा है, मैंने रोटी खाया है आदि प्रयोग भोजपुरी क्षेत्र के अधिकांश लेखको की कृतियो में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। इसके विपरीत जहा 'ने' का प्रयोग होना चाहिए वहा कही-कही उसका प्रयोग नही किया जाता। जैसे, 'मैंने तुम्हारा संदेश कह दिया है' के स्थान पर 'मैं तुम्हारा संदेश कह दिया हू' प्रचलित मिलता है। पंजाब और पश्चिमी मध्य-प्रदेश के कई लेखक 'को' के स्थान पर 'ने' का प्रयोग करते हैं। जैसे, 'सबको मिल कर काम करना चाहिए' के स्थान पर 'सबने मिल कर काम करना चाहिए' बोला और लिखा जाता है। 'को' का प्रयोग भी बहुत बार अनावश्यक होता है। जैसे, 'मुझे यह नही मालूम' के स्थान पर 'मुझको यह नही मालूम,' सामान्य रूप से प्रयोग में आता है। 'तुम्हें' और 'मुझे' के स्थान पर क्रमश. तुमको और मुझको का इतना अधिक प्रयोग होने लगा है, कि भूल का भान ही नही रहता। हिन्दी में लिंग की भूलें प्राय होती रहती है। हिन्दी क्षेत्र में ही इस सम्बन्ध में एकरूपता नही है। एक ही शब्द विभिन्न प्रान्तो में विभिन्न लिंग धारण कर लेता है। सामान्य रूप से हाथी पुल्लिंग शब्द है, परन्तु बिहारी बोलियों में वह स्त्रीलिंग बन गया है। इसी प्रकार कही दही 'खट्टी' और कही 'खट्टा' है, कही गेंद 'उछलती' है और कही 'उछलता' है। कही गिलास 'रखा' है और कही गिलास 'रखी' है। कही मोटर 'जाती' है, कही मोटर 'जाता' है। कही चर्चा 'होता' है और कही चर्चा 'होती' है। हिन्दी में विदेशी भाषाओ से अनेक शब्द आए है। उनमें से बहुतो ने अपना लिंग हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुसार स्वीकार कर लिया है, पर कुछ अपना मूल लिंग धारण किए हुए है। हिन्दी के जो लेखक विदेशी शब्दो का मूल लिंग जानते है, वे उनको उसी लिंग में प्रयुक्त करते हैं। उदाहरण के लिए 'चर्चा' शब्द उर्दू में पुल्लिंग है। अत. उर्दूदा की जबान और कलम में भी वह पुल्लिंग है, परन्तु शुद्ध हिन्दी भाषी की जिह्वा और लेखनी में वह स्त्रीलिंग है। अंग्रेजी की 'कार' हिन्दी की गाड़ी के अर्थ में गृहीत होने के कारण गाड़ी के लिंग के अनुसार स्त्रीलिंग मान ली गई है। इस प्रकार बहुत से विदेशी शब्द हिन्दी भाषा के पर्याय शब्दो के लिंग के अनुसार स्त्रीलिंग या पुल्लिंग प्रयुक्त हो गए हैं। विदेशी शब्दो के अतिरिक्त कुछ संस्कृत के तत्सम शब्द भी हिन्दी में उभयलिंगी बने हुए हैं। उदाहरण के लिए 'आत्मा' जो संस्कृत में पुल्लिंग है, हिन्दी में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनो है। परन्तु कुछ शब्द हिन्दी में उभयलिंगी स्वीकार नही किए जा सके। उदाहरणार्थ संस्कृत का स्त्रीलिंगी देवता हिन्दी में सदैव पुल्लिंग ही स्वीकार किया गया है।

अहिन्दी प्रान्तो के हिन्दी-प्रेमियो का आग्रह है, कि यदि हिन्दी की वाक्य-रचना में क्रिया का रूप कर्त्ता या उद्देश्य के लिंग के अनुसार न रहे तो हिन्दी सीखने में सरलता होगी। इस सम्वन्ध में यही कहना है कि प्रत्येक भापा की अपनी प्रकृति होती है। उसी के अनुरूप वह अपने को ढालती चलती है। उसे कृत्रिम रूप से सुधारा नही जा सकता। हो सकता है, भविष्य में कभी क्रिया के रूप कर्त्ता या उद्देश्य के लिंग का अनुसरण न करें और शव्दो के लिंग भी प्राकृतिक लिग का अनुसरण करने लगें। लिंग के सम्बन्ध में एक और भूल प्राय होती है। उदाहरण के लिए एक वाक्य सुनिए-—इस टोकनी में आम, नीवू, सेव और लीचिया रखे है। यह वाक्य व्याकरण सम्मत नही है। इसमें क्रिया का लिंग अन्तिम संज्ञा के लिंग के अनुसार होना चाहिए था। शुद्ध वाक्य इस प्रकार होगा, टोकनी में आम, नीवू, सेव और लीचिया रखी है। उसी प्रकार 'सब का मत यह है' के स्थान पर 'सवो का मत' लिखना उचित नही है। प्रमादवश 'अनेक वार' के स्थान पर 'अनेको वार', 'एक-आध वात' के स्थान पर 'एक-आध वातें' लिखना भी गलत है। लोग प्रायः लिख देते है 'कि हम इन्हें कई वर्षो से जानते है' यह भी शुद्ध नही है। हम इन्हें वर्षों से जानते है, वोलना या लिखना चाहिए। उर्दूदा 'चाहिए' का वहु वचन 'चाहिएं' लिखते है, जो हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नही जान पड़ता। 'शव्द सवके समझने योग्य होना चाहिएं' न लिख कर 'शव्द सबके समझने योग्य होना चाहिए,' लिखना चाहिए।

अनेक शव्दो की वर्तनी भी गलत लिखी जाती है। 'व' के स्थान पर 'व' और 'व' के स्थान पर 'व' का प्रयोग वरावर होता रहता है। जैसे 'वन' के स्थान पर 'वन', 'वीर' के स्थान पर 'वीर', 'वातचीत' के स्थान पर 'वातचीत', कई वार सुना जाता है और लिखा जाता है। 'उपर्युक्त' के स्थान पर 'उपरोक्त' की भूल सामान्य हो गई है। सस्कृत के 'माधुर्य' और 'पूज्य' आदि हिन्दी मे 'माधुर्यता' और 'पूज्यनीय' के रूप में गलत लिखे जाते है। 'प्रकट' के स्थान पर 'प्रगट' वार-वार दिखाई देता है।

जावेंगे, जायेंगे, जाएगे, चाहिये, चाहिए ; राष्ट्रीय, राष्ट्रिय ; राजनीतिक, राजनैतिक, घवराना, घवडाना मे कौन सा रूप सर्वथा शुद्ध है, अभी तक अनिर्णीत है। संस्कृत में राष्ट्रिय, राजनीतिक लिखते है, पर हिन्दी में राष्ट्रीय, राजनैतिक वडल्ले से चल रहा है। और अव ये रूप टकसाली हो जाने के कारण मान्य हो गए हैं। इसी प्रकार प्रान्त भेद के रोचक कथन सुनिए—कही से 'रेलगाड़ी खुलती है' और कही से 'रेलगाडी छूटती' है। कहीं विद्यार्थी परीक्षा में 'फेल होता है' कही 'फेल कर जाता है' और कहीं 'परीक्षा हार जाता है।'

अग्रेजी के अनेक मुहावरे हिन्दी में ज्यो के त्यो अनूदित होकर चल पडे है, जो अभी भाषा के स्वभाव में खप नही पाए। अग्रेजी के 'काट रेड हैंडेड' का हिन्दी अनुवाद 'रगे हाथो पकडा गया' प्रचलित है, जो अग्रेज़ी न समझने वाले हिन्दी भाषी के लिए सर्वथा अग्राह्य है। वह तो 'चोरी करते पकडा गया' या 'अपराध करते पकड़ा गया' जैसी अभिव्यक्ति को समझ सकता है। कई वार अग्रेज़ी शब्दो का अनुवाद भी हास्यास्पद हो जाता है। एक पत्र में 'टैंक' नामक युद्ध गाडी का अनुवाद 'तालाव' किया गया था, जिसका मूल शव्द के अर्थ से कोई सम्वन्ध भी नही है। इसी प्रकार 'रेडटेप' का 'लाल फीता' अनुवाद भी हिन्दी में ठीक अर्थ का बोध नही देता। मध्य प्रदेश के मराठी से प्रभावित भागो में साथ-साथ चलने के स्थान पर मिल कर चलने का प्रयोग चल रहा है, उदाहरणार्थ, हम-तुम मिल कर चलेंगे। इन्ही क्षेत्रो में 'आपत्ति' के लिए मराठी में प्रचलित 'हरकत' शब्द चल रहा है। जैसे 'यदि आप की पुस्तक मैं ले लू तो कोई हरकत तो नही है?' कई हिन्दी भापी 'इकार' करने के लिए 'मना' करने का प्रयोग करते है, जो उचित नही है। उदाहरण के लिए यदि मैं कहूं कि एक मासिक पत्र के सम्पादक ने मुझे

लेख भजने को लिखा, पर मैंने मना कर दिया तो यह ठीक अर्थ नही देगा। मना कर दिया के स्थान पर इंकार कर दिया होना चाहिए।

भाषा स्थान-काल भेद के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। परन्तु यह परिवर्तन सहसा नहीं होता। जब विभिन्न भाषा-भाषी एक-दूसरे के सम्पर्क में आते है, तब परस्पर शब्दो मुहावरो आदि का आदान-प्रदान होता रहता है। हिन्दी का क्षेत्र अखिल देशीय हो गया है। अतः उसके जिन प्रयोगों को हम आज अशुद्ध मानते है, वे भविष्य में अति प्रचार क कारण अशुद्ध नहीं रह जाएगे।

—भोपाल से प्रसारित

हंसी के पाश

डा० जगदीश गुप्त

हा हा हा !!!
खोखली हंसी हम सब हंसते है
गूजते हुए लम्बे पाशों से हसी के
इसको, उसको, खुद को, कसते है
जानते हैं—हंसी यह
खोखली है, झूठ है, दिखावटी है,
फिर भी हम इसी की कसौटी पर
कंचन से निर्मल सम्बन्धों को कसते है।

कहते है एक जहर ऐसा भी होता है
खा लेने पर जिसके
डूबता नही है मन
ऐंठता नही है तन
सिर्फ़ हंसी आती है
सिर्फ़ हंसी आती है।

—इलाहाबाद से प्रसारित



कश्मीर के मुग़ल उद्यान

रामचन्द्र टंडन

कश्मीर को प्रकृति ने यो भी क्या कम सौन्दर्य दिया है, फिर भी मनुष्य उसे संवारने में लगा रहा है। इस प्रयत्न ने यहा विशेषकर उद्यानो की रचना का रूप लिया है। मुगल वादशाहो के जमाने में, कश्मीर में, कितने ही उद्यान वनाए गए, जिनमें से कुछ की शोभा और सजावट क अवशेष आज भी दीखते है। उद्यानो की परम्परा इस प्रदेश में वहुत पुरानी है। यहा के पर्वतो, नदी-नद-निर्झरो ने प्राचीन शैवो को, उपवनो के निर्माण की प्रेरणा दी। बौद्धकाल में कश्मीरी भिक्खु और विद्वान तुर्किस्तान और चीन गए और उद्यानो की परम्परा वहा ले गए और फिर यह परम्परा चीन से जापान पहुची, जहा यह आज भी जीवित है। समरकद और फरगना में, उद्यान प्रेमी बाबर ने, जो उद्यान देखे उन पर भारतीय उद्यान-कला का प्रभाव पड चुका था। उसने ईरानी उद्यान-कला को भी देखा-भाला। मुग़ल वादशाहो ने तुर्किस्तान और ईरान के उद्यानो की समन्वित कला को भारत में उतारा।

कश्मीर पर सबसे पहले अकवर ने १५८७ मे अधिकार किया। तभी मुगल उद्यानों की यहा नीव पडी। कश्मीर का जलवायु, यहा की प्रकृति और भूमि इस प्रयोग के वहुत अनुकूल ठहरी और वताते है कि केवल डल झील के किनारे लगभग ७०० मुगल उद्यान बने। अव तो उनमें से चार-पांच ही वच रहे हैं।

डल झील के किनारे-किनारे वने उन उद्यानो में कुछ समान बातें है। इनके लिए स्थानों का चुनाव पर्वत की सहज ढलानो पर हुआ है। यह वाग सीढियो जैसे अनेक उत्तलों पर फैले हैं। सबमें पानी का सुपास है। पानी निर्झरो से जलाशयो में इकट्ठा होता है और वहां से छिछली पक्की नहरो द्वारा उद्यानो के सभी स्तरो पर उतरता है, कही ढालुआं और कही खडे निर्झर के रूप में छोटे-वडे हौज़ो में आता है, जिनमें फव्वारो का प्रवन्ध है। वाग हरी घास के फर्श, फूलो, कुजो, क्यारियो, छोटे-वड़े वृक्षो से सजा होता है। बीच बीच में बारादरिया या मंडप होते हैं। प्रवाह का पानी आकर डल में मिल जाता है।

डल के किनारे वने चार उद्यानो की चर्चा करूगा।

पहला उद्यान, जो राजधानी श्रीनगर से सबसे निकट और सबसे छोटा है, परन्तु वहुत ही रमणीक है, वह है चश्माशाही। वस, मोटर, तागे से यहा (वल्कि सभी मुग़ल उद्यानो में पहुंचा जा सकता है। डल के किनारे सुन्दर-पक्की सडक वनी हुई है। पर वहुत से सैलानी, जल-मार्ग से, शिकारो पर यहा आना पसन्द करते है। वहुत थोडा रास्ता चल कर आप वाग के द्वार पर पहुच जाएंगे। यह ऊची चहारदीवारी से घिरा हुआ है। वहुत सीढिया चढ़ कर आप एक वारा-दरी में पहुचेंगे, फिर सामने वह मण्डप मिलेगा, जिसमें चश्माशाही निर्झर रूप में गिर रहा है। सच पूछिए तो इस चश्मे का पानी इतना मधुर, शीतल, और पाचक है कि इसी को पीने के लिए बहुत-से लोग श्रीनगर से पाच मील यहां आते हैं। श्रीनगर के कुछ निवासी तो वरावर यही का पानी पीते है। दो नलो से आकर पानी एक छोटे से संगमर्मर के कुण्ड मे गिरता है।

इन्हीं नलो से पानी लेकर पीजिए। हमने तो अंजुलियो से जी भर कर पानी पिया फिर भी और पीने की इच्छा बनी रही। पानी इतना स्वच्छ है कि कुण्ड में चवन्नी डाल कर उसे तल से उठा लीजिए। सामने डल का दृश्य अत्यन्त रमणीक है। पास के एक पर्वत पर परी महल—सत्रहवी सदी की एक वेधशाला—के अवशेष दिखते हैं। यह उद्यान, शाहजहां की आज्ञा से, १६४२ में, यहां के राज्यपाल मर्दान खां ने बनवाया था। यह इतना छोटा है कि इसकी लम्बाई ३४० फुट और चौड़ाई बस सवा सौ फुट है।

चश्माशाही से दो-ढाई मील की दूरी पर, डल से लगा हुआ, एक बड़ा मुग़ल उद्यान है—निशातबाग। यह लगभग अठारह सौ फुट लम्बा और ग्यारह सौ फुट से अधिक चौड़ा है। इसे नूरजहा के भाई आसफ खां ने १६३० में बनवाया था। शायद सबसे अच्छा मुगल उद्यान यही है। यह दस स्तरो या बड़ी सीढियो पर बना है। सबसे ऊपर की सीढ़ी से डल का दृश्य देखिए। पानी के प्रवाह के लिए दसो सीढियों से गिरता हुआ पक्का जलमार्ग है, जो तरह-तरह के झरने बनाता है और अनेक जलकुण्डो में फव्वारो द्वारा गिरता है। सप्ताह मे एक दिन ये सब झरने चलते मिलेंगे। यात्रियो और नागरिकों का जमघट देखिए और लता-वितानो और पुष्पराशि की शोभा! प्रवेशद्वार के पास एक उसी समय का मण्डप है और एक दूसरा मण्डप कुछ ऊपर के स्तर पर है। दोनो में लकडी की अच्छी कारीगरी मिलेगी। इस बाग के विस्तार और स्थिति पर जहांगीर मुग्ध हुआ था लेकिन शाहजहा तो १६३३ में इस पर इतना मुग्ध हुआ कि इसे शाही बाग बना लेने की उसकी इच्छा हुई। लेकिन आसफखां इस पर अपना मोह न छोड सका। कहते हैं कि नाराज होकर शाहजहा ने निशात को सींचने वाली नहर का पानी कटवा दिया। निर्झर और फव्वारे बन्द हो गए। पेड़-पल्लव सूखने लगे। आसफखा उदास, पर विवश था। अपने स्वामी की यह दशा देख कर और जान पर खेल कर, माली ने बादशाह की आज्ञा के विरुद्ध नहर का पानी फिर निशात बाग में खोल दिया। अन्त में बादशाह ने उदारता दिखाई और नहर के पानी से उद्यान की सिंचाई की आज्ञा दे दी।

निशात से दो मील और आगे, डल के किनारे, प्रसिद्ध शालीमार बाग मिलेगा। किंवदती है कि इस जगह को प्रवरसेन द्वितीय ने, जो ईसा की दूसरी सदी में कश्मीर का राजा था, उद्यान के लिए चुना था। राजा के गुरु सुकर्म स्वामी का आश्रम, यहा से और दो मील ऊपर हरवन में था। मार्ग में आते-जाते वह राजा यहां विश्राम किया करता था और यहा उसने एक घर और एक बाग़ बना लिया था। इनके अब कोई चिह्न नही। १६१६ में, जहांगीर ने नूरजहा के आमोद-प्रमोद के लिए, इसी स्थल पर एक नया बाग़ बनवाया। यह निशात से छोटा है और इसमें चार ही स्तर हैं बाकी बातें निशात जैसी हैं। सिंचाई, झरनों और फव्वारो के लिए नहर द्वारा हरवन से पानी आता है। इस शाही बाग के तीन खण्ड थे। पहला आम लोगो के लिए खुला था। दूसरे में बादशाह का निवास था, तीसरा खास बेगमो का विहार-स्थल था। इसी में एक काले पत्थर का सुन्दर मण्डप है, जिसके चारो ओर हौज़ और फव्वारे हैं। रात में इनकी दीपमालिका के लिए जाने कितने आल बने हैं, जिन पर रखे दीपो का प्रकाश जल पर पडता रहा होगा। इस बाग में होने वाले राग-रंग की अब तो कल्पना मात्र हो सकती है। कहते हैं, यहा के विशाल चिनार जहांगीर की आज्ञा से रोपे गए थे।

डल झील के दूसरी ओर, निशात के ठीक सामने, नसीम बाग है। इसकी भी पहले जैसी शोभा नही रही। मुग़लो की कश्मीर विजय के बाद, अकबर की आज्ञा से यह बाग लगाया गया था। यहा चिनार-वृक्षों का समूह है। यह स्थान हजरतबल के पास, श्रीनगर से ७ मील की दूरी पर है। बाग के सामने झील का पाट बहुत कम चौडा है। फव्वारो, जलप्रवाहों और

लतावितानो के निशान यहा नही है। हा, चिनारो की शोभा यहां देखिए। कहते है, यहा शाहजहा ने चिनार के १,२०० बूटे लगाए थे, और उन्हें दूध और पानी से सीचा जाता था। झील के तट पर, ऊंचाई पर, वाग है और सध्याकालीन समीर के सेवन के लिए वडी अच्छी जगह है । इसी से इसका नाम नसीम वाग पड़ा है। झील का दृश्य यहा से भी वहुत सुहाना लगता है । किसी फारसी कवि ने कहा है -

सुब्ह दर वागे निशातो, शाम दर वागे नसीम ।
शालामारो लालाज़ारो सैरे कश्मीरस्तो वस्त ।।

सुवह निशात में काटी, शाम नसीम में और शालीमार की पुष्पवाटिकाए देख ली तो कश्मीर में देखने योग्य क्या रह गया ?

पर श्रीनगर के पडोस के इन उद्यानों से कश्मीर के मुगल उद्यानो की इतिश्री नही होती। दो और उद्यानों की वात करना चाहूगा, जिन्हें देखने का अवसर हमें मिला।

इनमें से पहला है वेरीनाग का उद्यान। जम्मू से श्रीनगर जाते हुए वानिहाल की लम्वी सुरग पार करनी पडती है। सुरग पार करके कुछ ही दूर आगे जाने पर, सडक की एक शाखा दाहिनी ओर मुड़ती है और दो मील जाने पर वानिहाल के दामन में वेरीनाग पडता है। यहा पानी का एक चश्मा है, जिसे जेहलम का स्रोत वताया जाता है। यहां जहांगीर ने एक अठपहल सरोवर १६२० में वनवाया। पास ही एक उद्यान वनवाया। शाहजहा ने वाद में यहा से एक नहर निकाली, जो वाग के वीच से निकलती है और जिसमें फव्वारे भी लगे है। वाग में एक प्राचीन हिंदू मन्दिर है। सरोवर का पानी स्वच्छ है और इसमें मछलियां पली हुई है—थोडा सा दाना विखेरिए और इनका जमघट देख लीजिए। जगह शात है। चिलकती धूप में भी किसी घने चिनार के नीचे वैठिए कि आराम से आखें मुदने लगती है। पास में धरती फोड कर पानी का एक सोता निकलता है—यह पानी वड़ा पाचक कहा जाता है। सरोवर के किनारे की दीवार पर एक फारसी लेख है, जिससे पता चलता है कि १०३० हिज्री में शाहजहां की आज्ञा से हैदर नाम के किसी व्यक्ति ने उसे अकित किया था। आस-पास कुछ पुरानी इमारतो के अवशेष हैं।

श्रीनगर से वाहर के जिस दूसरे उद्यान के वारे में कहना चाहता हूं, वह है अच्छवल। यह श्रीनगर से चालीस मील की दूरी पर है। अनन्तनाग होते हुए पक्की सडक यहा तक लगी हुई है। अनन्तनाग से सात मील पर यह स्थान है। कश्मीर के मुगल उद्यानो का यह एक सुन्दर नमूना है।

छठी सदी के अन्त और सातवी के आरम्भ में अवश नाम का राजा कश्मीर में हुआ था। उसी के नाम पर इस जगह के चश्मे का नाम अवशवल पड़ा जो अव 'अच्छवल' हो गया है। पहाड की ढलान पर चश्मे का पानी जगह-जगह से फूटता है। एक स्थान पर मुह इतना वड़ा है कि आदमी तैर कर भीतर जा सकता है। १६२० में नूरजहा ने अच्छवल की सैर की, तो उसके मन में वाग को वडा करने का विचार उठा। जगह का नाम वेगमावाद पडा पर पुराना नाम न मिट पाया। इस वाग में भी विशाल चिनार के वृक्ष हैं। वाग वहुत वड़ा नही। पत्थर की फसील से घिरा है। चश्मे का पानी नहर द्वारा वाग के भीतर से गुजरता है। एक वडा झरना है, वारहदरी है, फव्वारो और फूलो की वहार देखने को मिलती है। वर्नियर ने १६६३ में जव कश्मीर यात्रा की थी, तो इस स्थान का सुन्दर वर्णन किया था। जल यहा का भी वहुत अच्छा कहा जाता है।

मुग़ल उद्यान तो कश्मीर में और भी अनेक है। ये केवल ऐतिहासिक स्थल नही, इनमे आज भी ऐसा आकर्षण है, जो कश्मीर के यात्री को अपनी ओर खीचता है और उसे मोहित करता है।

—दिल्ली से प्रसारित

डल झील



श्रीनगर

दाएं ऊपर—निशात बाग में फव्वारे

दाएं नीचे—शालिमार बाग



रीनाग

अच्छवल का मुगल उद्यान

रंगमंच की दृष्टि से हिन्दी नाटकों का अध्ययन

वीरेन्द्र नारायण

मैं तो यह नही मानता कि रगमंच के अलावा भी नाटकों को देखने का कोई दृष्टिकोण हो सकता है। हा, रगमंच की व्याख्या को थोड़ा फैलाना पड़ेगा, क्योकि नाटक के प्रदर्शन का माध्यम सिर्फ रंगमंच ही नही रह गया है। रेडियो और टेलीविज़न जैसे माध्यम भी इसमें शामिल हैं।

नाटकों पर विचार करते समय यह प्राय. देखने और सुनने को मिलता है कि अमुक नाटक रगमंच के अनुकूल नही। अच्छा तो यह होता कि हम पहले नाटक और रगमच की परिभाषा ही निश्चित कर लेते। लेकिन नाटक और रंगमंच का साधारणत जो अर्थ समझा जाता है, उसे ही हम मान लें तो नाटको के प्रकार की ही तरह रगमच और उस पर होने वाले प्रदर्शन के भी प्रकार होते हैं।

साधारणत: रगमंच और प्रदर्शन का प्रकार नाटक द्वारा ही निर्धारित होता है। कुछ नाटक घोर यथार्थवादी होते है। उनका प्रदर्शन भी, जिसमें रंगमच भी शामिल है, यथार्थवादी ही होता है। तो नाटक पर रंगमच की दृष्टि से विचार करते समय हमें देखना यह चाहिए कि एक नाटक जिस प्रकार के रगमंच और प्रदर्शन की अपेक्षा रखता है, उस प्रकार का प्रदर्शन सम्भव हो, तब उसका क्या असर होगा? अगर इन सारी सुविधाओ के बावजूद नाटक का कोई असर नहीं होता तो नाटक असफल है।

इसी कारण हिन्दी में आलोचको और नाटककारो के बीच एक खाई-सी बनती जा रही है। आलोचक यह लिख कर सन्तोष कर लेते है, कि अमुक नाटक रगमंच के अनुकूल नही। नाटककार की यह मान्यता होती है कि रगमंच को नाटक के अनुकूल होना चाहिए। अधिकाशत. मैं नाटककार की मान्यता से सहमत हू। लेकिन साथ ही यह भी कहना असगत नही कि हर रचना को लेखक का हठ नाटक की संज्ञा का अधिकारी नही बना सकता।

उदाहरण के लिए प्रसाद जी के नाटक यह कह कर टाल दिए जाते रहे कि रगमच की दृष्टि से ये अनुपयुक्त है। शायद आलोचको के ध्यान में यथार्थवादी प्रदर्शन ही रहा हो और इसी कारण हर दस-पन्द्रह मिनट पर बदलने वाले दृश्यों को देख कर आलोचकों ने यह धारणा स्थिर कर ली हो। अच्छे साधन हों, तो प्रसाद जी के नाटकों को यथार्थवादी शैली में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन उनके नाटक को पढ़ते समय संस्कृत नाटकों की यथार्थवादी परम्परा ही सामने आती है। इसलिए स्वभाव और प्रवृत्ति के अनुसार अयथार्थवादी प्रदर्शन ही प्रसाद जी के नाटको के अनुकूल पड़ेगा। प्रसाद जी की रचनाओं के प्रति न्याय तभी हो सकता है, जब इस दृष्टि से उनके नाटको पर विचार किया जाए। रगमच की दृष्टि से नाटको पर विचार करने का एक और दृष्टिकोण है। नाटक के संभाषणों को यो पढने पर उनसे चरित्र-चित्रण इत्यादि बातो का तो पता चलता ही है, रगमच की दृष्टि से उन्हे देखा जाए तो रंगमच पर पात्रो के इधर से उधर जाने का, घटनाक्रम की तीव्रता और गति आदि

का भी उससे संकेत मिलता है। यही कारण है कि शेक्सपीयर की रचनाओ को पढते समय जो अनुभूति होती है, रंगमच पर उन्हे देखते समय, जैसे उस अनुभूति का स्तर ही वदल जाता है और उसमे एक नया क्षितिज झाकने लगता है। मेरा विश्वास है कि हिन्दी के भी अयथार्थवादी नाटको को विशेपकर प्रसाद जी की रचनाओ को रगमच की दृष्टि से देखा जाए, तो हमें उस क्षितिज का आभास मिलेगा, जो प्रदर्शन में स्पष्ट होकर सामने आ सकेगा।

उदाहरण के लिए स्कदगुप्त मे विजया के प्रेम-निवेदन वाला वह पद्य सामने रखता हू—

अगरु धूम की श्याम लहरिया उलझी हो इन अलको से,
मादकता लाली के डोरे इधर फसे हो पलको से।
व्याकुल विजली सी तुम मचलो आर्द्र-हृदय-घन माला से,
आंसू वरुनी से उलझे हो, अधर प्रेम के प्याला से।
इस उदास मन की अभिलापा अटकी रहे प्रलोभन से,
व्याकुलता सौ-सौ वल खाकर उलझ रही हो जीवन से।

इत्यादि, इत्यादि।

रंगमंच की दृष्टि से देखा जाए, तो इन पंक्तियो का संकेत कुछ इस प्रकार का समझा जाएगा :

विजया अपने वालो से खेलती हुई स्कंद की ओर आखो में आखें डाल कर देखती है। स्कंद अगात है, इसलिए चचल विजया का निमत्रण मुखर हो उठता है—वह आर्द्र-हृदय घन-माला में व्याकुल विजली सी मचलने का आमत्रण देती है या स्वयं उस तरह मचलने की कामना प्रकट करती है। उस समय की कल्पना करती हुई वह आगे की दो कडिया कहती है। इत्यादि, इत्यादि !

दरअसल रगमच वह साधन है, जिससे नाटक को साकार किया जा सकता है। रंगमच की नाटक से अलग कोई आवश्यकता ही नहीं। इसलिए रंगमच की दृष्टि से नाटक पर विचार करते समय साधन की सीमाए ध्यान मे रहनी ही चाहिएं और साधन को साध्य मानने की गलती से वचना चाहिए। इस समय यथार्थवादी रगमंच और प्रदर्शन को एकमात्र कसौटी मान कर जिस तरह नाटको का मूल्यांकन किया जा रहा है, उससे नाट्य-रचना पर दो प्रकार का अवांछित प्रभाव पड़ रहा है।

पहला प्रभाव तो यह है कि यदि एक ही सेट पर किसी नाटक का स्थापत्य नही वैठता, तो लेखक दुनिया भर की कलाबाजियां खाकर नाटक को एक सेट पर फिट करता है। इस सरकसवाजी मे वहुत सारे ऐसे कमज़ोर स्थल आ जाते है, जिन्हें आसानी से अलग किया जा सकता था।

कथानक, स्थापत्य और विचारो की दृष्टि से नाटकों की परिकल्पना की परिधि सिमट कर वहुत छोटी रह गई है। जव से 'रंगमंच की दृष्टि से नाटको' के अध्ययन की यह घातक प्रणाली चल पड़ी है, प्रकाशित नाटको का विषय और परिधि के अनुसार अध्ययन किया जाए, तो वड़ा ही सकुचित और सीमित चित्र सामने आएगा।

यथार्थवादी प्रदर्शन का जन्म पश्चिम में हुआ, लेकिन वहां भी यह लेखक की सर्जनात्मक प्रतिभा का वन्धन नही वन सका। अमेरिका के कई ख्यातिप्राप्त लेखकों की ऐसी रचनाएं सर्वश्रेप्ठ मानी गई हैं, जिनके एक-एक अक में कई दृश्य है और शायद औसत दृश्य १०—१२ मिनट से अधिक का नही। उदाहरण के लिए मैक्सवेल ऐंडरसन का 'विंटर सेट' और हाइटोर पोल ग्रीन का 'जौनी जौनसन' और फिलिप बैरी का 'द एनीमल किंगडम' काफी होना चाहिए। मैं यह नहीं

कहना कि यथार्थवादी नाटक और रंगमंच के लिए कोई स्थान ही नही। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि एक विशेष प्रकार के प्रदर्शन और रंगमंच की बेड़ी नाटक रचना को नहीं पहनाई जानी चाहिए।

यही स्थिति संभाषणों के बारे में भी है। साधारणतः यह कहा जाता है कि अमुक नाटक के संवाद चुटीले नही, बड़े लम्बे-लम्बे संभाषण हैं, इत्यादि, इत्यादि। रंगमंच की दृष्टि से संभाषणो के विषय में भी कोई ऐसा चलता-फिरता फ़तवा दे देना खतरे से खाली नही। कुछ स्थलों पर छोटे, चुटीले और तीखे संवाद अच्छे लगते हैं। कुछ नाटकों की प्रवृत्ति ऐसी होती है कि हल्के-फुल्के संभाषण ही उसके साथ खिलते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी नाटक होते हैं, जिनमें लम्बे संभाषणों के बिना काम ही नहीं चलता। आलोचक और निर्देशक की कैंची के फलस्वरूप आए दिन आचार्यों की रचनाओं का जो रूप देखने को मिलता है, वह सिर्फ इस बात का द्योतक है कि आलोचक और निर्देशक ने लेखक का अभिप्राय ही नही समझा है, नाटक की पंक्तियों को लेकर उनके साथ निर्दयतापूर्वक खिलवाड मचाया जा रहा है। यही कारण है कि एक रचना पढ़ने पर हमें जो आनन्द मिलता है, उसे रंगमंच पर देखने में हमारी आशाए टूट जाती हैं और हम ठगे-से रह जाते हैं।

नाटक लेखक की कल्पना में आकार ग्रहण करता है। निर्देशक और अभिनेता उस पर हाड़-मास चढ़ा कर उसे हमारे जाने-पहचाने पात्रो का रूप देते हैं। दर्शकों की कल्पना में लेखक, निर्देशक, अभिनेता की सम्मिलित कल्पना से एक नया ही चित्र बनता है। इस जटिल सर्जनात्मक प्रक्रिया में रंगमंच का जो महत्व है, उससे इकार नही किया जा सकता। लेकिन उसे ही सब कुछ भी नही माना जा सकता।

—दिल्ली से प्रसारित

सलाह की दो बातें

शान्ति मेहरोत्रा

नीम को नीम कहने वाले
ओ दकियानूसी मित्र!
जरा होश कर,
मेरी सलाह की दो बातो पर
ध्यान धर!
कल्पना दी है भगवान ने
तो निमौलियों को अंगूर मान!
सदा दे आदर,
इसी से खुश होंगे
तेरे भाई-बिरादर।

ढंग से जीना है
तो बुद्धि को सुला,
सूझ को जगा,
नीम को और कुछ नही
तो कह आम का सगा,
तभी सुख पाएगा,
चैन की बंसरी बजाएगा।

—इलाहाबाद से प्रसारित

संगीत और नृत्य को दक्षिण की देन

रुक्मणी देवी

दक्षिण भारत ने भारतीय सस्कृति की श्रीवृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया है। दक्षिण भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उस पर इतने विदेशी आक्रमण नही हुए, जितने उत्तर भारत पर हुए थे। फलत. मुसलमानो के आने से पहले देश में जो सस्कृति सर्वत्र प्रचलित थी, वह दक्षिण भारत में मुसलमानों के आक्रमण के वाद भी सुरक्षित रही।

जब तक मुसलमान दक्षिण भारत पहुंचे तव तक वे भी भारतीय सस्कृति से प्रभावित हो चुके थे और एक प्रकार से विदेशी नही रह गए थे। वहमनी और बीजापुर के मुसलमान शासकों ने हिन्दू कला तथा साहित्य को काफी प्रोत्साहन दिया।

दक्षिण भारत में शास्त्रीय संगीत और नृत्य शैलियो का प्रचलन है। हा, दक्षिण ने उनमें और सौन्दर्य एव गम्भीरता का समावेश किया है।

यह सभी जानते है, कि शास्त्रों में नृत्यों को संगीत के ही अन्तर्गत माना गया है। वास्तव में संगीत को ही मूर्त्त रूप देने के लिए नृत्य का जन्म हुआ। देश में सगीत की परम्परा तो प्राचीन काल से अव तक अक्षुण्ण चली आई है, परन्तु नृत्य के वारे में ऐसा नही हुआ और वीच में इसका ज्ञान लुप्त सा हो गया था।

देश में सगीत और नृत्य के माध्यम से धर्म और दर्शन का प्रसार किया गया, इसलिए यहा के लोगों के हृदय में संगीत और कला की जड़ें गहरी जम गईं। यहां नाटको में, नृत्य में, मंदिरो, खेत-खलिहानों, महलो और झोपडियो में—सर्वत्र सगीत का प्रमुख स्थान रहा। यदि सगीत न होता तो देश के जीवन में वहुत वड़ी शून्यता आ जाती।

इधर देश में इस प्रकार की शिक्षा का प्रसार हुआ कि हम सगीत की उस अमूल्य परम्परा के प्रति उदासीन हो गए और उसका ज्ञान विसरने लगे। फिर भी कुछ राजाओ और धनाढ्यो ने अपने दरवार में महान सगीतज्ञो को उच्च स्थान दिया और इस प्रकार उस महान परम्परा को जीवित रखने में समर्थ रहे। दक्षिण भारत में घर-घर में वच्चो को महान सगीतज्ञो की रचना की शिक्षा दी जाती रही। यही कारण है कि दक्षिण भारत में सगीत की परम्परा अक्षुण्ण वनी रही।

कोई भी देश सगीत के विना जी नही सकता। भारत की तो यह आत्मा ही रही है। यहा के आदि महाकाव्य रामायण को, जो संसार का सवसे पहला महाकाव्य है, आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने सगीत की लय में लिखा है और भगवान राम के पुत्र लव और कुश, पूरी रामायण को इतने मधुर कण्ठ से गाते थे, कि उसे जो भी सुनता, वही मंत्रमुग्ध हो जाता था।

इस देश में सगीत को ब्रह्म कहा गया है। भगवान कृष्ण ने भी लोगों का हृदय जीतने के लिए वासुरी का सहारा लिया। उनकी मुरली की धुन सुन कर मनुष्य क्या, पशु-पक्षी तक मुग्ध हो जाते थे।

संगीत और नृत्य भाव-प्रधान होते हैं, इसलिए देश में विभिन्न भावों के अनुरूप अनेक राग-रागिनियों की रचना हुई। पाश्चात्य देशों में संगीत में स्वर-सङ्क्रम पर विशेष ध्यान दिया जाता है, परन्तु यहा राग को ही सर्वोपरि माना जाता है। राग व्यक्तिगत चीज़ है, इसलिए यहा सगीत की शिक्षा में गुरु-शिष्य की परम्परा है। भारतीय संगीतज्ञ अपने भाव से राग मे और विशेषता ला देता है।

दक्षिण भारत की सगीत परम्परा में भी राग को ही मुख्य स्थान दिया गया है। शैव सत नायनमारो के भजन, उनके समय जिन रागो में गाए जाते थे, लगभग उसी बदिश में आज भी गाए जाते है। आज भी उच्च कोटि की सगीत रचना की जा रही है। इस प्रकार दक्षिण में पुरानी शास्त्रीय सगीत की परम्परा अविच्छिन्न कर रखी गई है।

संगीत रत्नाकर के बाद दक्षिण भारत में संगीत के अधिकाश मुख्य ग्रन्थ रचे गए। वेंकट मही ने अपने ग्रन्थ चतुर्दण्डी प्रकाशिका में रागों का जो वर्गीकरण किया है, वह मौलिक चीज़ है। भातखण्डे और उनके शिष्यो पर वेंकट मही का काफी प्रभाव पडा है।

दक्षिण भारत में नृत्य परम्परा भी सगीत के साथ-साथ चलती रही। वहा अनेक प्रकार के बहुत सुन्दर लोकनृत्य प्रचलित हैं। तमिल, तेलुगु, कर्नाटक और केरल क्षेत्र में भाषा के साथ लोकनृत्य शैली में भी विभिन्नता है। प्रत्येक क्षेत्र में अपने अलग ढंग के नृत्य प्रचलित है। अब दुर्भाग्यवश इनमें से अनेक शैलिया लुप्त होती जा रही है, क्योकि अब गावो के बजाए शहरो को ही सस्कृति का केन्द्र माना जाने लगा है।

शास्त्रीय सगीत की भाति शास्त्रीय नृत्य का आधार भी धार्मिक रहा है। दक्षिण भारत मे मदिरो की देवदासिया उच्च कोटि की नर्तकी हुआ करती थी। वे सभी पर्वों में मदिरो के अलावा बाहर महलो, हवेलियो आदि में नृत्य किया करती थी। इसे 'सदिर' नृत्य कहा जाता था। अनेक कारणो से यह नृत्य बदनाम होने लगा और धीरे धीरे लुप्तप्राय हो गया। देवदासिया अपनी कला में पारगत होती थी। वे मंदिरो में नृत्य करते समय यह समझती थी कि वे अपनी कला भगवान को समर्पित कर रही है। मंदिरो में भ्रष्टाचार फैलाने और इस प्रकार इस कला को नष्ट करने का दोष मुख्यत. समाज पर है, देवदासियो पर नही।

भरतनाट्यम परम्परा से नृत्य-नाट्य का जन्म हुआ। तंजौर, कूचुपुडि आदि स्थानो मे पुजारी गण मंदिरो में नृत्य-नाट्य करते थे। इन पुजारियो को भागवतर कहा जाता था। इसीलिए ये नृत्य भागवत मेला नाटकम् कहे जाते थे। तंजौर के ये नृत्य-नाटक १८वी शताब्दी के अन्त और १९वी शताब्दी के आरम्भ में मेलट्टूर के वेंकटराम शास्त्री ने रचे थे, जो अभी तक प्रचलित है। कूचुपुडि नाटक १७ या १८वी शताब्दी में सिद्धेन्द्र योगी ने रचे।

कुरवंजि नृत्य देवदासिया मदिरो में करती थी। सभी कुरवजि नृत्यो की विषय वस्तु एक ही है। इनमें आत्मा के परमात्मा से मिलन का चित्रण है। इनमें से जो सबसे पुराना और सबसे अच्छा कुरवंजि नृत्य उपलब्ध है, वह १८वी शताब्दी में कुट्रालम् में राजप्प कविराय ने लिखा था। अब मदिरो में केवल सरफोजी कुरवजि नृत्य किया जाता है। यह नृत्य तजौर के महाराज सरफोजी के सम्मान में रचा गया था।

केरल में नृत्य की कथकली शैली का विकास हुआ। कथकली का सम्बन्ध भरतनाट्य से है। सम्भवत: यह स्थानीय नृत्य था, जिसे भरतनाट्य की शैली में ढाल दिया गया। इसमें भरत वर्णित चारों प्रकार के अभिनयो का उत्कृष्ट रूप है। कथकली वास्तव में नृत्य कम और नाटक अधिक है।

इधर देश मे दक्षिण भारत की नृत्य कला का काफी प्रभाव पड़ा है। यहा तक कि दक्षिण या कर्नाटक सगीत भी, जिसे समझना कठिन है, अब देश के अन्य भागो मे चाव से सुना जाने

लगा है। यहा यह उल्लेखनीय है कि दक्षिण में जितने लोग शास्त्रीय संगीत सुनते है, उतने उत्तर में नहीं। उत्तर भारत में कुछ लोग लडकियो को सगीत की शिक्षा देना बुरा समझते है। संगीत मे रुचि की कमी होने का यह भी एक कारण है।

परन्तु उत्तर और दक्षिण, दोनो ही क्षेत्रो मे भजन खूब गाए जाते है। जब तक अधिकाश स्त्रिया संगीत नही सीखेगी और उसमें रुचि नही लेंगी, तव तक घरो में सस्कृति नही पनप पाएगी।

उत्तर और दक्षिण भारत की संगीत शैली में जो अन्तर है, वह विदेशी आक्रमणो के फलस्वरूप हुआ है। मुसलमानो का सवसे अधिक प्रभाव उत्तर भारत पर पडा। मुसलमान कला प्रेमी होते है, अत उत्तर में मुसलमानो मे उच्च कोटि के सगीतज्ञ हुए। परन्तु यह स्पष्ट है कि वे उच्च कोटि के इसलिए हुए कि भारतीय सगीत ही उच्च कोटि का था। मुस्लिम देशो में सगीत का इतना विकास नही हुआ, जितना भारत में।

जिस प्रकार कथकली, मणिपुरी, कत्थक आदि सभी नृत्य-शैलियो का मूल भारत का नाट्य शास्त्र है, उसी प्रकार भारतीय संगीत का मूल भी एक ही है। विभिन्न प्रभाव पडने के कारण ही, विविध शैलियो का जन्म हुआ। दक्षिण में इस प्रकार के प्रभाव कम पड़े, इसलिए यह कहा जा सकता है, कि दक्षिण भारतीय सगीत मूल शास्त्रीय सगीत के अधिक निकट है।

इसकी पुष्टि के लिए उड़ीसा को लिया जा सकता है। पहले उडीसा का सगीत और नृत्य दक्षिण भारतीय शैली से अधिक मिलता-जुलता था, उत्तर भारतीय शैली से कम। उडीसा और आंध्र की कला में वहुत अधिक समानता थी। प्राचीन काल मे उडीसा से जो लोग दक्षिण पूर्वी एशिया गए, उन्होने वहा अपने नृत्य चलाए। अव दक्षिण-पूर्वी एशिया के नृत्य मूलत भारतीय है, और ये दक्षिण भारत से अधिक मिलते है, जैसा कि कम्वोदिया और आस-पास के देशो में देखा जा सकता है।

कला तभी जीवित रह सकती है, जब उसमे प्राणो का सचार करने वाले भी जीवित रहे। भारतीय सगीत और नृत्य यदि केवल मात्र शास्त्रीय पद्धति से ही चिपके रहें, तो वे रूढिग्रस्त और नीरस हो जाएंगे। देश भर की कला को जिस वस्तु ने एकरूपता दी है, वह है—भक्ति। मुसलमान संगीतज्ञो ने भी, जिनके पुरखे हिन्दू से मुसलमान हुए थे, संगीत को धर्म से अलग नही किया। यही कारण है कि भगवान कृष्ण को मुसलमानों ने भी अपनाया। कहा जा सकता है कि भगवान कृष्ण ने अपनी वासुरी और अपने मधुर नाम से, विभिन्न धर्मो में मेल किया।

भारत धर्मप्रायण देश है, इसलिए उसके सगीत और नृत्य मे धर्म का समावेश रहा। परन्तु जव नृत्य कला अपने उच्चासन से उतर कर दरबार की चीज़ वनी, तव वह नष्ट हो गई।

अव हमारे सामने प्रश्न है—क्या नृत्य कला को वाजारू और सस्ते प्रदर्शन की चीज वना दिया जाए ?

किसी कला के पनपने के लिए केवल वुद्धि या धन नही, त्याग की भी ज़रूरत होती है। दक्षिण में संगीत के विकास के लिए अभी भी आशा की किरण दिखाई दे रही है, क्योंकि वहां अभी धार्मिक भावनाओ की जडें काफी गहरी है। हा, नृत्य के लिए अवश्य ही खतरा पैदा हो गया है। फिर भी यदि संगीत जीवित रहेगा, तो सभी कलाए जीवित रहेंगी, क्योंकि सगीत सभी कलाओ की आत्मा है।

—दिल्ली से प्रसारित

गुलाबी नशा

डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी

क्या आपका नाम किसी अखबार में छपा है ? अच्छा तो सच-सच बताइए, आपने कभी अपने नाम को कही छपाने की कोशिश की है ? अगर छप गया होगा तो आप अवश्य प्रसन्न हुए होंगे और कोशिश करने के उपरान्त भी न छप पाया होगा, तो बिगड़े भी होंगे। खैर छोड़िए, आप बताए या न बताएं ये 'माडर्न मर्ज़' आपको भी लगा अवश्य होगा। रोग अनेक है, दवा भी सब की है लेकिन नाम छपाने का मर्ज़ अपनी विशेषता रखता है। अन्य रोगो की दवा है, लेकिन इसकी दवा कोई नही है। सच पूछा जाए तो इस मर्ज़ के बारे में कोई बिगड़े दिल पहले ही कह गए हैं— मर्ज़ बढता ही गया, ज्यो-ज्यो दवा की।

मैं तो नही जानता लेकिन नशेबाजो को कहते सुना है कि पीने के बाद आदमी जीवित अवस्था में ही इस भूलोक को छोड़ कर स्वर्ग-लोक की यात्रा करने लगता है। नशेबाजो के कोश में एक शब्द है 'गुलाबी नशा' अर्थात हल्का और जो आपको बेहोश न कर दे बल्कि मस्ती में ला दे और आप हाथ पैर भी न फेंकने लगें। तो जनाब, आदमी हो या औरत, जब अपना नाम कही छपा हुआ देखता है तो उस पर 'गुलाबी नशा' चढ जाता है। वो समझने लगता है कि इस दुनिया में उसके भी रग हैं, उसके भी चाहने वाले है। जिस तरह भग पी कर व्यक्ति झूमने लगता है, उसी प्रकार अपना नाम छपा देख कर वह झूमने लगता है। ज्यो-ज्यो उसे निहारता है, त्यो-त्यो मादकता बढती जाती है।

इस मर्ज़ के डाक्टर है पत्रकार, सम्पादक, सम्वाददाता तथा प्रकाशक आदि। अन्य डाक्टरो की फीस तय होती है लेकिन इन डाक्टरो की प्रत्यक्ष में कोई नियमित फीस नही होती। आपने बचपन में व्याकरण तो पढी ही होगी। 'भाव-वाचक' सज्ञा याद है न ? मिठाई तो दीखती है लेकिन 'मीठापन' दृष्टिगोचर नही होता। ठीक इसी प्रकार इन मर्ज़ के डाक्टरो की फीस 'भाव-वाचक' सज्ञा में आती है किन्तु इस कृपा दृष्टि को प्राप्त करने के लिए साधक को साधना करनी पडती है। इस मर्ज़ के डाक्टरो की कृपादृष्टि भी रोग को दूर करने के लिए पर्याप्त होती है। ये मरीज़ का पहले निदान करते है। यदि मरीज़ नया-नया है, उसे यह बीमारी हाल ही लगी है, तो उसे ये बहुत परेशान करते है। पुराने बीमार इनकी अधिक परवा नही करते।

प्रेम-रोग और नाम छपने के रोग में अधिक साम्य है। प्रेमी जिस प्रकार अपनी प्रेमिका को देखने के लिए व्याकुल रहता है, ठीक उसी प्रकार अपने नाम रूपी प्रेयसि को प्रकाशित देखने के लिए ये लोग भी कम अधीर नही होते। विरह की छटपटाहट प्रेमी में दृष्टिगोचर होती है। अपने नाम को छपा हुआ न पाकर ये भी बेकरार पाए जाते हैं।

जिन लोगो के हाथो में नाम छापने की शक्ति है, उन्हें महीने में शायद ही किसी दिन संध्या को अपने घर भोजन करना पडता हो। कोई पार्टी, कोई सांस्कृतिक आयोजन,

कोई उद्घाटन हो, इनके चरण जब तक वहा न पधारें तब तक उसको मुक्ति नही मिल सकती। 'जगल में मोर नाचा, किसने देखा?' ये ही महानुभाव उस चहारदीवारी मे हुए नाच को विश्व का महत्वपूर्ण नाच घोषित कर सकते हैं।

कल्पना कीजिए एक सस्था है, आप उसे निस्सकोच अखिल भारतीय कह सकते हैं क्योकि किसी सस्था को भी अखिल भारतीय कह देने पर कोई कानूनी रोक नही है। उसका अधिवेशन होने जा रहा है। आर्थिक व्यवस्था करनी है। नाम छपाने के रोग से ग्रसित किसी रोगी की खोज करनी पड़ेगी। इसके लिए अधिक खोज-बीन करने की आवश्यकता नही पड़ेगी, ऐसे रोगियों के लिए किसी अस्पताल में जाने की आवश्यकता नही है। ये भले चगे आपको कही भी मिल जाएगे। कहिए, स्वागताध्यक्ष की आवश्यकता है। लीजिए वह आ रहे है —

> हम लोग अखिल भारतीय सगीत सम्मेलन करने जा रहे हैं, कृपया आप स्वागताध्यक्ष बन जाए। भाषण हमने तैयार कर लिया है। आप की स्वीकृति की आवश्यकता है। प्रेस मे मैटर सब छप चुका है। नाम छपना बाकी है। समाचार-पत्रो को भी उसकी प्रतिया भेजनी है ताकि अधिवेशन के दिन प्रातः ही आपका भाषण प्रकाशित हो सके।

लीजिए, शिकार मार दिया। चैक ले कर सयोजक चल दिए। यह तो आप समझ ही गए होंगे कि स्वागताध्यक्ष जी को 'सा रे ग म प ध नी' से कोई सरोकार नही है। रोगी का इलाज हो गया और अधिवेशन के खर्चे की समस्या हल हो गई।

नाम छपने के प्रलोभन में यार लोग सिद्धान्तो का भी विदाई-उत्सव तुरन्त मना लेते है। मेरे एक कवि मित्र है। प्रारम्भ से ही एक राजनीतिक पार्टी विशेष के सदस्य है। उसी पार्टी की वर्दी पहनते है। एक अन्य राजनीतिक पार्टी के अधिवेशन मे एक कवि-सम्मेलन का आयोजन हुआ। उनसे उस पार्टी के सभापतित्व की प्रार्थना की गई। कमर कसके तुरन्त सेवा करने के लिए तैयार हो गए। पूछने पर कहने लगे—भाई, सांस्कृतिक आयोजनो मे मै सकुचित दृष्टि से काम नही लेता। यद्यपि कवि-सम्मेलनो में भाग लेने के फलस्वरूप उनका नाम कवियो की सूचियो में अनेक बार पहले प्रकाशित हो चुका था किन्तु सभापति के रूप में नाम छपने का आकर्षण ही और था।

शादी आपकी भी हुई होगी, नही हो पाई होगी तो भविष्य में हो जाएगी। आप यदि चेष्टा करेंगे तो आपकी शादी के समाचार छप जाएगे, और थोडा प्रयास करेंगे फोटो निकल जाएगे, यहा तक कि आप चाहेगे तो मुख्य बारातियो के नाम भी छप जाएगे। जितना गुड डालिएगा उतना ही मीठा होगा। योजना बनाइए, सास का चाहेगे उनका भी नाम छप जाएगा, ससुर जी का चाहेंगे उनका भी नाम और साथ में पद भी छप जाएगा।

आपने बाजार मे 'चाट पकौड़ी' की दूकान खोली है। अच्छा काम किया है। बिक्री तो होगी ही। अगर नाम छपाना है तो उस दूकान का नाम 'राष्ट्रीय चाट भडार' रखिए। किसी नेता से उद्घाटन कराइए। शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियो को सम्मिलित होने का निमन्त्रण दीजिए। दूसरे दिन चाट के साथ-साथ अपना और अपनी दूकान का छपा नाम देख कर उस अलौकिक रस का भी आस्वादन कीजिए।

एक लाला बारातो के सजावट का काम करते है। क्या मजाल कि आप उनसे एक नया पैसा भी कम करा दे। एक सज्जन को उनके 'गुप्त रोग' का पता लग गया। बारात

की सजावट कराई । दूसरे दिन स्थानीय अखबार में उनका नाम छाप दिया गया। लाला जी ने एक पैसा नही लिया । लाला वडे शौक से कहते है, कि उनके सजावट के कार्य की प्रशसा तो अखवारो में छप चुकी है । उस समाचार के 'कटिंग' को मढवा कर अपनी वैठक में लगा रखा है।

हिन्दी के एक प्रसिद्ध साहित्यिक हमारे यहा पधारे । वे काफी ख्याति प्राप्त है । वे 'नाम छपाने' के मशहूर रोगी हैं। एक दोस्त को मजाक सूझा । उनसे कह दिया—आपके एक नाटक का अनुवाद तो एक दक्षिणी भाषा में हो गया है, और उसकी वडी चर्चा है।

अब वह लगे विस्तृत विवरण पूछने। फल यह हुआ कि वह जिस शादी में आए थे, उन्हे छोडकर वाजार के पुस्तक विक्रेताओं से पता लगाने चल दिए। वाहर के कई प्रकाशको ने 'ट्रक-काल' मिलाया । कुछ पता नही चला । आखिर वे शादी को छोड़ कर चल दिए क्योकि उनकी नीद और भूख दोनो गायव हो चुकी थी । यह कहने की आवश्यकता नही है कि अनुवाद वगैरह का मामला तो सव कपोल-कल्पित था। जव पुराने वीमारों का यह हाल है, तो यदि किसी नए 'वागड़' को यह समाचार मिलता, तो उसका न मालूम क्या हाल होता।

जव रोग पुराना पड जाता है, तो रोगी कोई 'पेटेंट' दवा का सहारा ले लेता है ताकि नित्य डाक्टर के पास जाने के झझट से वच सके। कुछ लोग अपने ही हाथो से लिख कर अपनी ख्याति के समाचार भिजवा देते हैं । 'स्थितप्रज्ञ' होकर प्रतीक्षा करते हैं, छप जाता है, खुश हो लेते है। नही छप पाता सन्तोष कर लेते है । वे भी विचारे क्या करें, वडे डाक्टरों की फीस दे नही सकते, इलाज कराना ही होता है, खुद ही नुस्खा तैयार कर अपना इलाज कर लेते है।

आप विश्वास नही करेंगे, मैंने कुछ मित्रो को केवल नाम छपाने के प्रलोभन में अनशन करते देखा है, यद्यपि वे रात्रि में अपने भोजन की व्यवस्था कर लेते हैं। ऐसे लोगों को देख कर एक पुराने गीत की पक्तियां याद आ रही है. 'मैंने लाखो के वोल सहे, सजनवा तोरे लिए।'

एक हास्य लेखक मेरे यहा भोजन करने पधारे । भोजन समाप्त होते दस बज गए । एक दूसरे सज्जन जो साथ में भोजन कर रहे थे, उन्होने उन हास्य रस के लेखक महोदय से कहा—भाई, 'हास्यरस के आधुनिक लेखक' शीर्षक लेख जो अमुक पत्र में प्रकाशित हुआ है, उसमें तुम्हारा भी उल्लेख हुआ है, जरा देख लेना।

लेखक महोदय ने अखवार वालो को रात में जगा कर पत्रिका खरीदी। उनके वारे में ये पंक्तियां प्रकाशित हुई थी—इनकी रचनाए निम्नकोटि की है। कविता पाठ करते समय ये भाड से लगते है।

इतने कष्ट करने के वाद जो अलौकिक सुख उन लेखक को हुआ होगा वह 'केशव कहि न जाइ का कहिए' ही कहा जाएगा।

नाम छपाने की कमजोरी व्यापक है । नेता वर्ग जितने प्यार मे सम्वाददाताओ से वातें करते हैं, उतने प्यार से अपने वच्चो से भी नही करते । इस प्यार के पीछे नाम छपने का प्रलोभन ही रहता है । सो जनाव, कलयुग के इस माडर्न मर्ज के अनेक नुस्खे है, अनेक डाक्टर है । आप अपना पहले निदान कीजिए या करवाइए और फिर उनका यथोचित इलाज करवाइए। नाम छप जाए तो फूलिए मत, न छपे तो विगडिये मत।

—दिल्ली से प्रसारित

जनवासे में

कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच'

अर्जुन तिवारी के मझले लडके का विवाह था । अर्जुन तिवारी मेरे खास सम्बन्धी थे। मेरे मौसिया ससुर के फुफेरे भाई की सास की बडी लड़की उन्ही के चचिया ससुर के ममेरे भाई की सास के बड़े लडके से व्याही थी । जाना जरूरी था। इसलिए गया । छुट्टियां समाप्त हो चुकी थी। बड़े साहव छुट्टी देने के नाम से ऐसा भड़कते है, ऐसा भड़कते है कि कुछ न पूछिए । डाक्टर का सर्टिफिकेट देकर युग धर्मानुसार बीमारी की छुट्टी ली। तव कही अर्जुन तिवारी के मझले लड़के सहदेव तिवारी की वारात में जा सका।

द्वार पूजा हुई और हम लोगो को नाव द्वारा गगा के उस पार जनवासे में पहुचाया गया। तीन मील पैदल चल कर हम लोग घाट तक आए थे। वहां से नाव पर सवार होकर दूसरे किनारे पर पहुचे । वहा से फिर दो मील चल कर आए जनवासे मे ।

मेरे साथ मेरे मित्र प्रोफेसर उद्‌भट राका चौवे तथा डाक्टर अवोधचन्द्र उपाध्याय भी थे । एक सज्जन ऐसे भी थे जो कविता लिखा करते थे। मुझे उनका नाम नही मालूम । उन्हें लोग कवि जी कह कर पुकारते थे। पण्डित मुहफट शास्त्री भी उसी नाव से पार उतरे थे जिससे हम लोग । वाकी लोग दूसरी नाव की प्रतीक्षा में उसी पार खड़े थे।

शास्त्री जी चिल्ला उठे—लडकी वाले ने इतनी दूर जनवासा क्यो दिया ? घर मे पूरे पाच मील पर। नदी के दूसरे किनारे पर । विवाह का लगन ८ ही बजे है । पुन उस पार जाने और लड़की वाले के घर तक पहुंचने में ही तीन घण्टे लग जाएगे । नज़दीक जनवासा देंगे तो वारम्वार जलपान का तकाजा आया करेगा।

हम लोगो ने जनवासे के एक-एक कमरे को घूम-घूम कर देखा । किसी प्रवन्ध का पता न था । जलपान के नाम पर एक मिट्टी के घडे में पानी अवश्य रखा था।

डाक्टर अवोध चन्द्र उपाध्याय पुरातत्व के प्रेमी जीव है। वह उस घड़े को वारम्वार देखते और अपना सिर खुजलाते । मैंने उन्हें जव कम से कम सात वार सिर खुजलाते गिना तो पूछ ही बैठा—डाक्टर साहव ! क्या वात है ? किस विचार चिन्ता में निमग्न हो रहे हैं।

सोच रहा हूं—डाक्टर साहव बोले—कि ऐसा घडा इस समय गाजीपुर ऐसे स्थान में किस प्रकार दिखलाई पडा । यह तो गुप्त काल के भी ३०० वर्ष पहले का वना मालूम पड़ता है। इसमें जो काई लगी है वैसी सिर्फ गुप्तकाल के ३०० वर्ष पूर्व के घड़ों मे ही लग सकती थी । इस घडे को मैं वारात से लौटते समय चुपके से उठा ले चलूगा ।

कवि जी भूख-प्यास से कलावत्तू हो रहे थे। कहने लगे— ऐसा ही जनवासा रहा होगा, जिसे देख कर मेरे पितामह के पितामह महाकवि क्रोधी जी ने एक छन्द लिखा था।

हम लोग एक साथ ही बोल उठे—ऐं, क्रोधी जी आपके ही पितामह के पितामह थे। कौन-सा छन्द लिखा था उन्होने। जरा सुनाइए न?

कवि जी बोले—शाहजहां के नाती शेरशाह के समय हुए थे मेरे पितामह के पितामह क्रोधी जी। एक बारात में गए थे। शायद उनके पड़ोसी बुलाकीदास के भांजे की शादी थी। वहा ऐसा ही जनवासा मिला होगा बरातियो को। सो मेरे पितामह क्रोधी जी से नहीं रहा गया। उनके मुंह से यह छन्द निकल ही पड़ा—

एक भी न खाट है, फटी-सटी दरी है पड़ी
इससे भला था जाएं टगते अकास में।
पूड़िया है या कि परदादी लिट्टियो की यह
इससे था भला खाते होटल या वासे में।
सडी है इलायची न मिर्च में है गन्ध
सारे कड़वे बदाम, बैठा भंग के हू आसे में।
घर भर में लाग लगैं, समधी को दाग लगैं
क्रोधी कवि आग लगै ऐसे जनवासे में।

चारो ओर से वाह-वाह की ध्वनि गूज उठी। कवि जी को ऐसी प्रसन्नता हुई, मानो वह कविता उनके पितामह के पितामह की न हो कर उन्ही की हो।

प्रोफेसर साहब कुछ देर बाद बोले—कवि जी, उस समय होटल कहा थे? फिर शाहजहा का नाती शेरशाह कैसे हुआ? यह सब तो इतिहास के विरुद्ध है। शेरशाह तो हुमायू का समकालीन था।

रहा होगा—कवि जी बोले——क्रोधी जी ने कविता लिखी है, इतिहास नही। फिर जैसे रासो में प्रक्षिप्त अश आ गए हैं, उसी प्रकार क्रोधी जी की कविता में भी 'होटल' शब्द शायद मेरे पितामह या बाप ने मिला दिया होगा।

प्रोफेसर साहब बोले—हा, आपने ठीक कहा है। इतिहास मे बडी गलत बातें घुसी पडी हैं। हुमायू को लोग एक ही मानते है। मैंने खोज की है कि हुमायू नाम के तीन बादशाह हो गए हैं। पहला वह जो कुमाऊ में रहता था, दूसरा वह जो बदाऊ का शासक था। तीसरा खड़ाऊं पहनता था।

बातचीत हो रही थी कि लड़की वालो की ओर से जलपान लेकर घराती प्रबन्धक आ पहुचे। हम सबने उनका बड़े प्रेम से स्वागत किया। बाकी बराती भी आ गए। जलपान सामग्री अच्छी थी। चार मिठाइया चार नमकीन। सब लोग जलपान करने बैठ गए। घराती जलपान देकर खुश होते चले गए।

पण्डित मुहफट शास्त्री के सामने जब मिठाई का सकोरा आया तो वह चीख उठे—केवल चार मिठाइया। यह लड्डू क्या है, कोई बटी है। होगा डेढ मासे भर। अरे साहब मैं एक बारात में गया था, वहा तीन-तीन पाव के लड्डू मिले थे जलपान मे। गुलाबजामुन आध-आध सेर की। यह जलपान है या बच्चो का खिलवाड! कैसे दुष्ट हैं ये सब सामान लाने वाले।

जलपान कर चुकने पर शास्त्री जी बोले—अब कोई क्या खाएगा और कोई क्या खिलाएगा? मेरे नाना हरबोग जी सवेरे उठ कर ढाई सेर गरी की बर्फी से खरमिटाव करते थे, दोपहर में सवा दो सेर आटे की रोटी और सेर भर चावल का भात खाकर पक्का पाच सेर दूध पी जाते थे। उन्ही के पूर्वज पण्डित विरूपाक्ष शास्त्री ने पाणिनि ने

व्याकरण और कालिदास ने साहित्य पढा था। कालिदास के माघ काव्य का सशोधन भी उन्होंने किया था।

अबोध चन्द्र जी ने टोका—शास्त्री जो माघ काव्य तो माघ कवि का लिखा है कालिदास का नही है ?

मुहफट शास्त्री विगड़ उठे—आप सव नए ढग के विद्वान यह सव क्या जानें। कालिदास ने प्रत्येक मास में एक-एक काव्य लिखा है— चैत्र काव्य, वैसाख काव्य, ज्येष्ठ काव्य, माघ काव्य आदि । आपाढ काव्य को ही मेघदूत कहते है।

लगन का समय हो गया । वहुत से लोग विवाह-मण्डप में चले गए पर हमारी मण्डली जनवासे में ही डटी रही । रात डेढ वजे हमारे लिए भोजन आया । तीन दिन पहले की वनी पूडिया थी, जो सूख कर पापड़ वन गई थीं।

शास्त्री जी वोले—देखा आपने वारात का स्वागत ! मेरे मामा के यहा वारात आई थी तो मामा जी ने गाव के सारे कुओ में दस-दस वोरे चीनी के छुडवा दिए थे। पिओ शरवत कितना पिओगे । पूड़ियां इतनी वनी थी कि वारात के वापस चले जाने पर पूरे पन्द्रह दिन तक सारे परिवार ने खाया। ये लोग क्या स्वागत करेंगे ? पूड़िया है या कागज ! मेरे मामा के यहां जो पूडिया वनो थी, उन्हें दात से काटते समय चौदह वरातियो के दात ही टूट गए थे । एक-एक पूडी डेढ-डेढ पाव की । आज के नौजवान वैसी एक पूडी खा कर हाजमे की गोली या सोडा-वाटर खोजने लगेंगे। और उस वारात में ऐसें-ऐसे वाराती आए थे कि पैसठ-पैसठ पूड़ियां खा गए।

—अव कल देखो दाल चावल कैसा खिलाते है ये लोग। देखना है घी असली छोड़ते है दाल में या वही वनस्पति और है तो दो ही चार चम्मच या अधिक !

—क्यो शास्त्री जी दो-चार चम्मच से अधिक घी दाल में कौन खा सकता है?—मैंने पूछा।

—आपने कभी घी खाया भी है। तभी तो लकलक दिखाई पडते हैं। मेरे मामा की लडकी के व्याह में एक आदमी लगा घी परोसने, तो वरातियो ने मौन धारण कर लिया । किसी ने नही कहा कि वस करो अव घी न चाहिए । परोसने वाले ने समझा कि अव तो मैं अमुक महोदय की थाली मे काफी से अधिक घी छोड चुका, तो वह आगे दूसरे महाशय को ओर वढा । वस इतने में तो नाराज़ होकर सारी वरात उठ खड़ी हुई, भोजन की थाली छोड कर। मामा जी ने घवडा कर पूछा—क्या वात है ? कौन सी त्रुटि हुई ?

—आप पूछ रहे हैं अभी कौन सी त्रुटि हुई—लडके के पिता ने गरज कर कहा—घी परोसना इस आदमी ने अपनी इच्छा से वन्द क्यो कर दिया । जव तक खाने वाले न मना करें उसे सामान परोसना वन्द न करना चाहिए। यह हम लोगो का वड़ा अपमान हुआ है।

वडी-वडी मिन्नत के वाद संमधी साहव दुवारा खाना खाने वैठे। मामा जी का गाव में वडा दवदवा था । सारे गाव के लोग घी का कनस्तर ले लेकर दौडे आए। घी का परोसना प्रारम्भ हुआ । थालियां घी से डूव गई । आगन में घी ही घी दिखाई पडने लगा । सारे वाराती घी के अन्दर डूवने मे लगे। मामा जी ने आगन की नाली वन्द करवा दी । घी ऊपर उठता-उठता वरातियो की नाक तक पहुचा । जव नाक में घी घुसने लगा तव वरातियो ने नाक रगडना शुरू किया—क्षमा करो, क्षमा करो। अव ऐसी धृष्टता कभी न करेंगे । अव घी का परोसना वन्द करो, नही सभी वाराती मर जाएंगे।

हम लोग सुन कर दंग रह गए । शास्त्री जी ने हंस कर मुझसे कहा—देखा महाशय जी आप लोग टी के प्रेमी हैं। घी का महत्व क्या जानें? चाय भी आप पीते हैं तो एक प्याला। मेरे मामा जी के यहां गर्मी के मौसम में यदि बारात आती थी तो सारे बारातियों को एक-एक घड़े दूध से, और जाड़ों में बारात आने पर एक-एक घड़े चाय से नहलाया जाता था। दही से उनका उबटन होता था। पीने के लिए एक लोटा चाय तो नौकरों को मिलती थी। बरातियों को तो जबर्दस्ती एक-एक घड़ा चाय पिलाई जाती थी। जो नहीं पी पाता था, उसे हम लोग निकृष्ट और हेय समझते थे, दरिद्र समझते थे।

विवाह के बाद दूसरे दिन ही सन्ध्या समय बराती लौटने वाले थे। यानी बरात की विदाई थी। कन्या की विदाई एक महीने बाद होने वाली थी। दूल्हे के फूफा पहलवान तिवारी बिगड़ उठे—यह क्या बात है। या तो लड़की विदा अभी कर दें या पूरे एक महीने बारात को टिकाए रहें। मेरे अजिया ससुर की नातिन के व्याह में लड़की की विदाई का मुहूर्त तीन साल पर था। अजिया ससुर तीन साल तक बरात को खातिर के साथ अपने यहां टिकाए रहे। इन तीन सालों में आधे लोग तो अधिक भोजन करने के कारण मर भी गए। पर न बरात वाले बिना लड़की विदा करवाए लौटे, न लड़की वालों ने उन्हें लौट कर वापस जाने दिया। अब तो सब नई-नई बातें हैं। वह सुनहला पुराना जमाना स्वप्न सा हो गया है। न वे बराती हैं, न वे घराती, न वैसा स्वागत, और न वैसा जनवासा।

—इलाहाबाद से प्रसारित



मराठी रंगमंच पर शेक्सपीयर का प्रभाव

व० ह० गोले

मराठी नाट्यसृष्टि ने पिछले सौ सालो मे भिन्न-भिन्न ढग दिखाते हुए जो प्रगति की है, उसकी आलोचना करते हुए हमें देखना है कि शेक्सपीरिअन ढंग ने मराठी रगमच को कब और कैसे प्रभावित किया। पिछली सदी में १८९३ ईस्वी मे स्व० खाडिलकरजी ने 'सवाई माधवरावयांचा मृत्यु' नामक नाटक लिखा। ऐसा कहना अत्युक्तिपूर्ण नही होगा कि आम तौर पर उस समय से स्व० गडकरी के निधन के समय तक मराठी रगमंच का ढंग शेक्सपीयर के तौर पर रहा। इस ढंग की कुछ विशेषताए हम देखेंगे।

मराठी रगमचीय आलोचनाएं, 'शेक्सपीरिअन धारा' और मोलियर की धारा ऐसे दो सम्प्रदाय माने जाते है। स्थूल रूप से हम यह कह सकते है कि त्रासदी (ट्रेजेडी) और कामदी (कामेडी) इन दो नाट्यप्रकारो के जो प्रधान लक्षण है, वे शेक्सपीयर और मोलियर की धाराओं में मौजूद हैं। त्रासदी का नायक सुसस्कृत एव अभिरुचिसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रदोप के या बाह्य परिस्थिति के कारण उसका पतन होता है। ग्रीक त्रासदी मे नायक को दैवी प्रकोप से दुर्घटनाओ का मुकाबला करना पडता है, तो शेक्सपीरिअन त्रासदी में चरित्र दोषो के कारण नायक का जो पतन होता है, उसे लक्ष्य किया जाता है। यहा एक और बात की ओर हमें ध्यान देना चाहिए। शेक्सपीयर ने अपनी सामाजिक परिस्थितियो से अलिप्त रह कर अपने नाटकों की रचना नहीं की। कलानिर्मिति उसका एकमात्र उद्देश्य नही था। शेक्सपीयर एक व्यावसायिक नाटककार था। समकालीन समाज का रजन करना उसका उद्देश्य था, तथा एलिज़ाबेथन रंगमच पर प्रभाव डालने वाले नाटक उसने लिखे। इसीलिए उसने अपनी त्रासदियो की रचना दूसरो की लिखी हुई कहानियो के आधार पर की। इसलिए उसकी त्रासदियो में परम्परा का अश पर्याप्त मात्रा में मिलता है। हत्या, आत्मघात, ज़हर का प्रयोग, शैतान का रंगमंच पर नाटक जब खेला जाता है, तब इनका असर पर्याप्त मात्रा में होता है, इसलिए शेक्सपीयर ने उन्हें चुना होगा। पर शेक्सपीयर का श्रेष्ठत्व इस बात में है कि इन घटनाओ का उपयोग करके उसने अपनी असामान्य प्रतिभा के बल पर प्रभावपूर्ण त्रासदिया लिखी। इसके दो कारण हैं :— मनुष्य के स्वभाव का उसका व्यापक और गहन ज्ञान, जिसके सहारे उसने प्रभावशाली चरित्रचित्रण किया और दूसरा कारण उसका असामान्य भाषा-प्रभुत्व। उसकी भाषा ने सभी मूक भावनाओ को वाणी प्रदान की और प्रेक्षको तथा पाठकों को बेहोश किया। पिछली सदी के अन्त में मराठी नाटककारो और अभिनेताओं को शेक्सपीयर की कामदी की अपेक्षा उसकी त्रासदी से अधिक परिचय था। स्व० आगरकर का 'विकार-विलसित' और स्व० देवल का 'झुझारराव' ये शेक्सपीयर के हेमलेट और ओयेलो के अनुवाद अधिक लोकप्रिय थे। स्व० खाडिलकर ने 'सवाई माधवरावयाचा मृत्यु' यह नाटक १८९३ ईस्वी में लिखा। उसके प्रस्ताव में सवाई माधवराव और केशवशास्त्री का चरित्रचित्रण हेमलेट और यागो के ढग से प्रेक्षको के सम्मुख रखने का उद्देश्य खाडिलकर ने ज़ाहिर किया है।

यागो जैसे खलनायक के प्रति अभिनेताओ के मन में अधिकतर रुचि थी, इसका एक कारण यह है कि नायक की अपेक्षा खलनायक का दर्शन रगमंच पर करवाने के अभिनय-कौशल की चरम-सीमा है, ऐसी उनकी निश्चित धारणा थी। और यह धारणा यागो के प्रभावपूर्ण चरित्रचित्रण के कारण ही आविर्भूत हुई। खलनायक के प्रभावपूर्ण चरित्रचित्रण का शेक्सपीरिअन ढंग स्व० गडकरी के नाटको में हम देखते है। खास तौर पर कमलाकर, वृंदावन और भन शयम ये पात्र शेक्सपीयर के ढग से रचे गए है। शेक्सपीयर का अनुकरण करते हुए गडकरी ने अपने नाटको में हत्या, जहरप्राशन, आत्मघात आदि भावोद्दीपक घटनाओ की भरमार की है। रंगमंच प्रभावपूर्ण होने वाले भावोत्कट प्रसगो का चित्रण करने में गडकरी एक समर्थ कलाकार हैं किन्तु कथावस्तु में जो घटनाए घटती है, उनमें आतरिक कार्य-कारण भाव का होना जरूरी है, जिसका गडकरी के नाटको में अभाव है। इसलिए उनकी बहुत सी घटनाए कृत्रिम सी लगती है। गडकरी 'सिचुएशन' के नाटककार है और उनकी अधिकतर घटनाए नाट्यपूर्ण (ड्रैमेटिक) नही है, बल्कि रगमचीय यानी 'थिएट्रिकल' है। साथ ही अलकारो के प्रयोग से वह कृत्रिमता की ओर झुकती है। इसलिए उनके नाटक में शेक्सपीरिअन ढग का जो दर्शन होता है, वह पारम्पारिक स्वरूप का परिचायक है। गडकरी के 'प्रेमसन्यास', 'भावबंधन', 'एकचप्याला', आदि नाटक सामाजिक परिस्थिति के परिचायक है और घटनाओ की कृत्रिमता ज्यादा महसूस होती है। ऐसी घटनाए ऐतिहासिक नाटको में शायद शोभा देती हो।

पात्रो और दृश्यो में शेक्सपीयर ने तीव्र विरोध (वायलेन्ट कन्ट्रास्ट) की उपयोजना की। उसकी यह और एक विशेपता है। गडकरी के नाटक में विरोधी स्वभाव के कई पात्र है। उदाहरणस्वरूप कमलाकर-जयत, ललिता-मालती, सिन्धु-गीता इन जोडियो को हम प्रस्तुत कर सकते है। करुण या प्रक्षोभक घटनाओ के बाद हास्यपूर्ण दृश्यो का उपयोग गडकरी ने और खाडिलकर ने किया है। गडकरी के भावुक प्रसगो के साथ-साथ उनके हास्यपूर्ण प्रसग भी रगमच पर प्रभाव डालते है। किन्तु खाडिलकर के बहुतेरे हास्यपूर्ण प्रसग कृत्रिम से लगते हैं।

सस्कृत का ढग छोड़ने के अनन्तर मराठी नाट्य रचना ने जब शेक्सपीयर का अनुसरण करना शुरू किया, तब उसमें और हेर-फेर हुआ। संस्कृत ढग का अनुसरण करते हुए जो नाटक लिखे गए, उनमें सूत्रधार-नटी नाट्यवस्तु का परिचय करवाते है। यूरोपीय नाटको में नाटक के प्रारम्भ के दृश्य—जिन्हें एक्सपोजीशन कहते है—अधिक महत्व के होते है। एक्सपोजीशन के द्वारा कथा वस्तु और उसके साथ-साथ पात्रों का परिचय जितने अधिक स्वाभाविक ढंग से नाटककार करवा देगा, उतना उसका कलात्मक यश अधिक माना जाता है। मराठी नाटकों ने जब शेक्सपीयर का अनुसरण किया तब पात्र आरम्भ के दृश्य में सीधे रंगमच पर आने लगे। पहले या दूसरे दृश्य में प्रमुख पात्रो के सभापणो के द्वारा स्वाभाविक रूप में नाट्य वस्तु और अन्य पात्रो का परिचय करवा देने की परम्परा बन गई। शेक्सपीयर के समय रंग-मच के सामने परदा लटकाने की रीति नही थी। रंगमंच के तीनो बाजू प्रेक्षक बैठते थे। सत्रहवी सदी के उत्तरार्ध में 'रेस्टोरेशन' के समय अग्रेजी रंगमच पर सामने के परदे का व्यवहार होने लगा और 'प्लेटफार्म स्टेज' के बदले 'पिक्चर-फ्रेम स्टेज' आ गया। रंगमंच पर सामने एक परदे का व्यवहार करना और उसके अलावा पीछे एक 'कल्हर' का पर्दा लटकाना तथा हास्यकारक प्रसंगों का 'कल्हर' के परदे के सामने खेला जाना और गंभीर दृश्यो के लिए पूरे रगमंच का उपयोग करना, इस मराठी परम्परा का शेक्सपीयर से ताल्लुक नहीं है।

मराठी नाट्यसृष्टि का अंग्रेजी और यूरोपीय नाट्यसृष्टि से पहला परिचय पिछली शताब्दी के अंत में हुआ। यह परिचय शेक्सपीयर के नाटकों द्वारा हुआ। मोलियर,

शा, इब्सन आदि नाटककारो का परिचय प्राप्त कर उनकी विशेषताए सीखने का कार्य १६२० ई० के लगभग आरम्भ हुआ। शेक्सपीयर के नाटको में भी उसकी त्रासदियो ने मराठी रगमंच को ज्यादातर प्रभावित किया। उसकी 'ट्वेल्थ नाइट', 'मिड समर नाइट्स ड्रीम', 'एज़ यू लाइक इट', आदि कामदियां प्राय उपेक्षित रह गईं। केवल श्रेष्ठ कवि यशस्वी शोकांती त्रासदी लिख सकता है और शेक्सपीयर का सम्पूर्ण अनुकरण करके भी उसके स्वर की त्रासदिया लिखने में गडकरी समर्थ न बने। शेक्सपीयर के नाटको में कला की दृष्टि से जो गौण परम्परा थी, केवल उसी का अनुकरण मराठी नाट्यसृष्टि ने किया। आशा है कि शेक्सपीयर के सच्चे श्रेष्ठत्व का परिचय मराठी के नए नाटककारो को हो जाएगा। स्व० नाना जोग का हेमलेट का अनुवाद, श्री० शिरवाडकर का मेकवेथ अनुवाद, और हाल में शामराव ओक का किया 'कामेडी आफ एरर्स' का अनुवाद—ये सब सावित करते हैं कि अभी तक शेक्सपीयर का प्रभाव मराठी नाटककारो पर पूरे रूप से है।

नए नाटको का झुकाव त्रासदी की अपेक्षा कामदी की ओर अधिक है। मतलब यह है कि आजकल की सामाजिक समस्याओ पर नाटको की रचना करने की ओर यह झुकाव है। और यह उचित भी है। इसलिए मराठी रंगमंच के शेक्सपीरिअन ढग का केवल ऐतिहासिक महत्व है। शेक्सपीयर का रास्ता छोड़ अब हमारा रगमञ्च दूसरे रास्ते पर कदम बढा रहा है। अब इस रास्ते से हमारा रंगमंच कहा पहुचेगा, इस बात का निर्णय करना भविष्य के हाथो में है।

—पूना से प्रसारित

तोड़ो मौन की दीवार

रवीन्द्र भ्रमर

तोड़ो मौन की दीवार!
झांकने दो मुझे
अपने हृदय के उस पार!
ये बहुत खामोश
कुम्हलाई हुई आंखे,
शिथिल संध्या तीर
श्यामा खगी की पांखे,
कह रही तुम कही आए
दांव कोई हार।
तोड़ो मौन की दीवार!
मलिन मुख
ज्यों वेदना की भाप का दर्पन,
यहां बिम्बित है
तुम्हारा चोट खाया मन,
मूक अधरों पर तड़पते
बेबसी के ज्वार।
तोड़ो मौन की दीवार!
सुनू तो मैं
कहो अपनी पीर मुझसे कहो,
बह सको तो बहो
मेरी चेतना में बहो,
मै करूं हलका
तुम्हारे वक्ष का दुख-भार।
तोड़ो मौन की दीवार!
झांकने दो मुझे
अपने हृदय के उस पार!

—इलाहाबाद से प्रसारित

नीच ज़ात

शिवप्रसाद सिंह

और शाम होते-होते जब सचमुच ही मलिकाने का चौतरा गैस बत्ती की रोशनी में चमकने लगा, तो गाव के नौजवान और बूढ़े सभी भौंचक रह गए। मलिकाने में इस तरह का जशन कोई नई बात नही थी, पर एकाएक ठाकुर के छोटे लड़के का जन्म दिन कैसे आ गया, यह किसी को मालूम न हुआ। मालूम भी कैसे हो, इसके पहले कभी आया हो तब तो लोगवाग याद रखें? केले के खम्भे, रंगीन कागज़ की झंडिया, और पीले गेंदे के फूलो की मोटी-मोटी मालाओं से चौतरा नई दुलहन की तरह सज गया था। ऐसे मौके पर एक गाही यानी पूरे पांच नचनिये नाचने वाले थे। सैयदराजा की मशहूर नाच मंडली की देस-दिहात में शुहरत थी।

अचभे की वजह यह हुई कि कुल दो ही चार दिन बीते होगे कि गाव में एक अजीब वाकिआ हो गया। ऐसा अजीब जैसा किसी ने कभी सुना न देखा। गाव सभा के चुनाव की थोडी-बहुत चर्चा तो तीसेक दिन से चला करती थी, पर किसे मालूम था कि इसके चलते इस गाव में ऐसी वारदात हो जाएगी, जमीदारी नही रही तो क्या हो गया। गोजर की एक दो टागें टूट जाने से कुछ बनता-बिगड़ता है कही? सो आज भी ठाकुर जैपाल सिंह का करैता गाव पर वैसा ही दबदबा था, जैसा जगल में शेर का या पानी में घड़ियाल का होता है। तीस साल पहले इस गाव को जैपाल सिंह के ददुआ जी ने अस्सी हज़ार रुपया नगद देकर खरीदा था। इस तीस साल में ठाकुर ने गांव वालो की भलाई के लिए क्या नही किया। तालाब बनवाया, मदिर बनवाया। स्कूल भी बनवा ही देते, पर गांव के दो-चार अच्छर पढ़े-लिखे छोकरे उन्हें करने दें, तब न। गांव-सभा के पिछले चुनाव में गांव की जनता ने उन्हें बिना मीन-मेख किए सभापति बना दिया। क्यो न बनाए भला? तीस साल से करैता में एक भी ऐसी पचायत या बटोर नही हुई, जिसमें दरी के बीचोबीच वाली तोशक पर मलिकाने के अलावा कोई और बैठ गया हो। पर जाने क्या हो गया है दुनिया को, जाने कैसी हवा बह गई है कि किसी में लाज-सरम का नाम-निसान नही रह गया है। इस बार जब पचायत का चुनाव हुआ, तो किसान-नेता सुखदेव ठाकुर साहब के मुकाबले में खड़ा हो गया। और वोट के दिन जब हाथ उठाने का मौका आया तो नमकहरामो ने सुखदेवा के लिए हाथ उठाया। किसी की आखें शरम के मारे ऊपर नहीं उठती थी, हाथ ऊपर था आखें नीचे। ठाकुर के चेहरे पर रत्ती भर फ़रक नही आया। उल्टे हंस कर उन्होने सुखदेवा की पीठ ठोकी और शाबासी दी। ऐसा करने के लिए भी हाथी का हिरदा चाहिए। मुसकराते हुए बोले—लो भाई सुखदेव, गांव ने तुमको अपना सरगना मान लिया, अब संभालो सब कुछ। पंच का आसन परमेश्वर का आसन है।

दयाल पडित यह सब कुछ एक सास में कह कर चुप हो गए। देवी चौधरी के बैठके में सभी पुराने लोग इकटठे थे, जिन्होंने ठाकुर के साथ ही बचपन बिताया था, और उन्ही की छत्र-छाया में जवानी के दिन मेहनत-मजूरी करते गुज़ार दिए थे। सब चुप थे, जैसे पाप की सज़ा सुनने बैठे हों।

—सो तो हुआ, पर आज यह नाच-बाजा काहे को—देवी चौधुरी मुस्कराते हुए बोले—हारने की खुशी में क्या ?

दयाल पडित इस तरह हसे गोया देवी चौधुरी के भेजे में अकल की जगह खालिस गोबर भरा है—रह गए वही बैल की पू छ मरोडने वाले, अरे गोबरदास ! भला हाथी चिउंटी की क्या दुश्मनी। हारे तो लाज, जीते तो लाज। यह कौन सा महाभारत था भाई, तुम एक नही सौं पच चुन कर बैठा लो पलगडी पर ·· इससे क्या होता जाता है, आखिर बैठने का सहूर भी तो चाहिए · 'ओरदवानी में बैठने वाले की देह में सिरहाने की मसनद गड़ नही जाएगी क्या? ·· अरे, वो तो बुट्टन बाबू का जन्म दिन है, सरकार ने सोचा बनारस से किरतन मडली बुला ले, पर जल्दी में इतजाम नही बैठा, सँदराने वाले लच्छू उस्ताद कहने लगे सरकार हमसे कौन सी खता हो गई है ' · 'दयाल महाराज, कुछ तो खियाल करो · हम भी बोले क्या याद करेगा, सट्टा में डेढ सौ बोला, मैंने कहा १०-रुपया और मगर काम दिलोजान से होना चाहिए ·· · · बस !

लच्छू उस्ताद की मंडली शामियाने में बैठ गई थी, बाजे पर गत बजने लगी, ढोलक की आवाज़ गाव भर में घुमड-घुमड कर सबको मलिकाने के जशन की खबर देने लगी। लोगबाग बिना वजह ठाकुर के चौतरे के बगल से गुजरते, एक नज़र गैस-बत्ती पर, फिर पौडर वाले छोकरो पर डालते, इधर-उधर ताक-झाक करके धीरे से फुदक कर दरी पर बैठ जाते। ठाकुर की नजर नाच पर नही, अपने बाहरी दरवाजे पर लगी थी, कोई अहमियत वाला आता तो वे जोर से पुचकारते—आओ, आओ चाचा, इधर जाजिम पर आ जाओ, दयाल पडित अरे जरा चाचा को पान इलायची देना, रन्नू और फब्बू कहा मर गए, अरे कोई है रे, बनारस वाली खमीरा भर के लाना, हा तावा रख कर ।

चाचा की झुकी गरदन जाजिम पर सट जाती। कल ही तो अभी सुखदेव को वोट दिया था चाचा ने। उन्हें कहा मालूम था कि ठाकुर की नजर उन्ही पर पड़ जाएगी। मगर जैपाल भी एक ही मरद है, वोट मे हार गया तो शान मे ज़रा भी कमती नही आने दी।

यह थी चोट ठाकुर जैपाल की, जिसे सभी लजाते-हंसते झेल गए। चुनाव के दो महीने के बाद ही कुछ पढे-लिखे लडकों की कोशिश और नए पच सुखदेव के उत्साह के कारण एक सभा बुलाई गई, जिसमें बेसिक स्कूल की पुरानी कच्ची इमारत को गिरा कर नई और पक्की इमारत बनाने का 'प्रस्ताव' पास हुआ। चन्दा वसूल करने के लिए सुखदेव ने एक कमेटी बनाई। बडे हौसले के साथ चन्दा उगाहने का काम शुरू हुआ। उस दिन सवेरे के समय कमेटी के दो-चार मेम्बर लोग और सुखदेव ठाकुर जैपाल सिंह के चबूतरे पर पहुचे, तो वे बीरा नाई से तेल की मालिश करा रहे थे और उसके सात पुश्त को कामचोर होने का खिताब मुफ्त बाट रहे थे। बीरा सुबह के समय भी पसीने-पसीने हो रहा था और ठाकुर के दोहरे बदन पर उसकी दोनो हथेलियां रोहू मछली की तरह छलक-छलक जाती थी। ठाकुर ने सुखदेव और दूस` लोगो को आते देखा, तो मूछ के भीतर ही भीतर मुसकराए · 'दयाल पंडित को बुलाया कि रन्नू या फब्बू से कह कर लोहे वाली तीन-चार कुर्सिया बाहर निकलवा दें। लोहे वाली ये कुर्सिया भी खास मकसद से खरीदी गई थी। जिन्हे ठाकुर जरूरतवस कुर्सी तो देना चाहते थे, पर मन ही मन उन्हें जमीन पर बठाए जाने लायक समझते थे, उनके लिए ये कुर्सिया काम में लाई जाती थी। सुखदेव कुर्सी पर बड़ी अकड़ क साथ बैठा, क्योकि ऐसी कुर्सी उसक खानदान के किसी भी आदमी को कभी मलिकाने के चबूतरे पर नसीब नही हुई थी।

—कैसे चले भाई सुखदेव—ठाकुर ने आखों में अजीब भलमनसाहत का रग भर कर कहा

—स्कूल की इमारत बनाने का प्रस्ताव पास हुआ है ······ हुजू ······ सुखदेव ने बड़ी सफाई से सम्बोधन को उड़ाया, एक लमहे के लिए वह इतना घबड़ा गया कि जल्दी में कोई बात न निकल सकी, फिर धीरे-धीरे बोला—चन्दे के लिए आना हुआ है आपके यहा। आप इस गांव के धनी-मानी आदमी हैं, आप चाहेंगे तो इमारत आसानी से बन जाएगी।

—कितना चन्दा लगा है भई?—ठाकुर ने फिर उसी तरह मुसकराते हुए कहा—पचायत की जो राय हो, हम उसे पूरा करने के लिए दिलोजान से हाज़िर है ··· ··· बाकी सुनें तो, आदमी पीछे कितना चन्दा लगा है।

जैसी जिसकी हैसियत है, उसे वैसा ही चन्दा देना चाहिए।

कमेटी के एक मेम्बर ने धीरे से कहा— हा हां ठीक है, ऐसा तो होना ही चाहिए।

ठाकुर ने सुखदेव के चेहरे पर एकटक देखते हुए कहा—पर आप लोग कुछ बुरा न मानें तो एक बात पूछूं—उन्होने इस नम्रता से कहा कि श्रोता लोग पानी-पानी हो गए।

—पूछिए ··· पूछिए ··· सभी एक साथ बोल उठे।

—अब भाई सुखदेव जी की ही मिसाल लीजिए। इनके तीन चाचा, नव भतीजे और घर की औरतों को मिला कर कुल बीस-इक्कीस जन हैं, क्यो हैं न?

एक ने धीरे से कहा —हा।

—मेरे घर में देखिए—ठाकुर ने कहा—मेरे घर मे मै, ठकुराइन और बुट्टू, कुल ढाई आदमी हुए, हुए कि नही?

एक ने फिर धीरे से कहा—हा।

—हमारे घर और सुखदेव भाई के घर में आठ गुना फर्क है, इसलिए जितना चन्दा ये देंगे, उसका आठवा हिस्सा अदा करना मेरा फर्ज है, अब आप बोलिए, है कि नही।

कमेटी के सब मेम्बर चुप। एक ने फिर कोशिश की—पर हैसियत में फर्क है न ठाकुर साहब!

ठीक बात है, ठीक बात है, सिरी बेटा, तुम्हारी बात मै मानता हू—ठाकुर ने सिरी का पहली बार नाम लिया गोया, यह सवाल करके उसने अपनी अहमियत बता दी थी—पर यह तो बताओ, भला, इस ज़माने में हैसियत का क्या मोल भाई, जिसके पास वोट देने के जितने ज्यादा हाथ है, उसकी हैसियत उतनी ही बड़ी है, है कि नही।

कमेटी के सभी मेम्बर एकदम चुप होकर ····· जमीन की तरफ देखने लगे। कोई ठाकुर की तरफ छिप कर भी नही देख पा रहा था। तभी ठाकुर की आवाज़ सुनाई पड़ी—दयाल पडित, अरे इन लोगो को ज़रा पान-इलायची देना—ठाकुर ने फिर धीरे से कहा—इनमें दुखी होने की कोई बात नही है, मैं जानता हूं कि आप लोग मेरे पास बडी उम्मीद से आए हैं, और यह भी सही है कि हजार-पांच सौ रुपये चन्दा देना मेरे लिए कुछ भी नही है, पर यह तो मैं एक बात कह रहा था, वैसे आप लोग आज जाइए, किसी दिन भाई सुखदेव जी आप आकर रुपया ले जाइए ··पांच सौ चन्दा मेरी ओर से लिख लीजिए।

झुकी गरदनें नीचे से ऊपर उठी, चेहरो पर एक अजीब किस्म की शर्मीली हसी छा गई। कमेटी वालो ने ठाकुर को आदर से नमस्कार किया और खुशी-खुशी घर लौटे। यह थी ठाकुर जैंपाल की दूसरी चोट। पर इनका घाव तन पर नही होता था, इसलिए इसे भाप सकना आसान नही था। करैता गाव की पंचायतें अब मलिकाने के चबूतरे पर नही होती, अब इन पचायतो में ठाकुर जैंपाल सिंह मुखिया के आसन पर नही बैठते, अब गाव के लोग उनकी राय और फैसले के लिए उनका मुह नही ताकते, पर यदि कोई भी आदमी पिछले पाच-सात महीने के दौरान

करैता गांव मे हुई वारदातो और उनके फैसलो का लेखा-जोखा करे, तो उसे यह जान कर वड़ी हैरत होगी कि एक भी फैसला ठाकुर के मन के खिलाफ नही हुआ। ज़ाहिरा तौर पर सुखदेव ही पच था, पर फैसले ठाकुर की मर्जी से होते थे। गाव वालो को एक फायदा ज़रूर हुआ कि मामूली जुर्म के लिए पहल से दूनी सजाए मिलने लगी। क्योंकि करैता में एक नही दो पंचो का राज था।

उस दिन शाम का समय था, ठाकुर की चौपाल में सुखदेव वैठा था। सुखदेव था और ठाकुर··· ·वाकी कोई नही।

—अव तक तो हुआ, पर यह मामला वडा सगीन है—सुखदेव ने धीरे से कहा··

—तुम मामूली-सी वात स ववडा जाते हो—ठाकुर ने कहा—मामला सगीन है, तो आमदनी भी सगीन होगी? एक हज़ार से कम पर राज़ी मत होना। दो-तीन हज़ार से कम के गहने देवा के हाथ नही आए ह, फिर खून का मामला है, एक हज़ार आसानी से दे देगा वह। उसमें पाच सौ से कम पर थानेदार राज़ी न होगा। आने तो दो कल, देखना चुटकी वजाते सव ठीक कर दूगा·· ·· ठाकुर ने यो चुटकी वजाई जैसे मक्खी उडा रहे हो।

करैता गाव पर एक अजीव तरह का सकता छाया हुआ था। यह तो सभी जानते थे कि देवा नम्वरी चोर और वदमाश है, पर आखिर है गांव का आदमी। यदि भडाफोड हुआ तो वड़ी वदनामी होगी। आस-पास के गावो में मुह दिखाना मुश्किल हो जाएगा। वात यो हुई कि पिछले हफ्ते देवा किसी दूर के गाव की एक औरत भगा कर ले आया। औरत नाक-नक्शा और कपड़े-लत्ते से किसी अच्छे घर की मालूम होती थी। पता नही देवा ने क्या सब्जवाग दिखाया उसे, वह शायद अपन ससुराल वालो से नाराज़ थी, एक रात गहनो की पोटली छिपाए वह देवा के साथ चल पडी। दवा ने गाव में हल्ला किया कि औरत रेल के नीचे कटने जा रही थी, उसने ऐन मौके पर पहुच कर उसे वचाया और अपने साथ ले आया, दो-एक दिन में सुस्थिर हो जाएगी, तो उसका अता-पता पूछ कर वह उसके घर पहुचा आएगा। फूला, यही नाम था उस औरत का, वीस-वाइस के उम्र की जवान औरत थी, वहुत सुन्दर तो नही थी, पर उसकी वात-चीत, चाल-ढाल से मालूम होता था, कि उसमे जीने की ख्वाहिश है और अपने मन मुताविक जीने के लिए वह कोई भी कदम उठा सकती है। देवा पर उसे पूरा यकीन था। गाव की औरतें सुवह से शाम तक देवा के घर जुडी रहती। फूला के वारे में तरह तरह की खवरें गाव मे उड़ा करती। कुछ औरते उसकी शौकीनी की निन्दा करती, कुछ उसके हंसमुख स्वभाव की तारीफ करते नही अघाती।

अभी कल की ही वात है, शाम तक फूला हसती-खेलती रही, औरतो के सामने अपने मायके और ससुराल के लोगो की चुटकिया लेती रही, आधी रात के करीव देवा के धाड़ मार कर रोने की आवाज़ से सभी चौक कर उठ वैठे। मुहल्ले के तमाम लोग उसके दरवाजे पर टूट पडे। भीतर क दालान की वल्ली में मोटी रस्सी से फूला की लाश झूल रही थी और नीचे वैठा देवा वच्चो की तरह फुक्का मार कर रो रहा था—कहती थी कि मुझे घर मत भेजो चाहो तो कुएं में काट कर डाल दो, पर मैं ससुराल नही जाऊगी, वह मेरी गरदन मरोड़ कर रख देगा, उसकी मा जलते चिमटे से मेरी देह दाग-दाग कर काली कर देगी·· कसाई की औलाद है सव····पर भला आप सव लोग ही कहिए मैं पराई औरत को कव तक घर में रख सकता था, जव तक मुझे उसके नैहर-सासुरे का पता-ठिकाना नही मालूम था, मैंने उसे वहिन वोल कर अपने घर में रखा, पर जव मुझे सव पता-ठिकाना मालूम हो गया, तो एक पल भी दूसरे की वहू-वेटी को अपने घर मैं कैसे रहने देता? उसके रोने-गिड़गिड़ाने का

बिना खयाल किए मैंने डाट कर कहा कि यह नहीं हो सकता। कल सुबह जरूर उसे अपने ससुराल जाना होगा··· ·और उसे जाने किस बात का इतना डर था कि धरन में रस्सी डाल कर झूल गई। इसने तो मुझे किसी ओर का नही रखा—देवा बिना पूछे ही ये सारा बयान सुना कर सिसक-सिसक कर रोने लगा।

गांव वाले फूला की मौत पर दुखी हुए, उन्होंने देवा को समझाया-बुझाया। पर सबके दिल में पुलिस का भयंकर- हादसा छाया हुआ था। जाने किस-किस की शामत-सलामत होगी। थोडी देर तक अजीब सन्नाटा छाया, फिर धीरे-धीरे लोग-बाग अपने-अपने घरो की ओर चल दिए। सुखदेव पंच और ठाकुर जैपाल एक साथ ही देवा के घर में घुसे और बाहरी फाटक बन्द करके आंगन में चले आए। देवा के रोने-कलपने का गाव वालो पर जैसा भी प्रभाव पड़ा हो, ठाकुर जैपाल सिंह पर तो उसका रत्ती भर असर नही था।

—क्यो, कै हजार के गहने होंगे—आते ही उन्होने देवा के चेहरे पर घूरते हुए पूछा।

—गहने कहां थे उसके साथ · आप भी हुजूर—देवा डर के मारे थूक निगलने लगा।

—चुप रहो, हम तुमको आज से नही जानते, यह रस्सी की फांसी असली भेद नही छुपा सकेगी, पुलिस के आते ही सारा भडाफोड हो जाएगा, गाव की बदनामी जो होगी वह होगी ही, तुम्हारी भी इस बार खैर नही है।······ ·

देवा ने सब कुछ कबूल कर लिया। एक हजार रुपया देना भी उसने स्वीकार कर लिया। ठाकुर ने उसे पूरा विश्वास दिलाया कि कल थानेदार के आने पर वे मामला रफा-दफा कर देंगे, गाव की इज्जत बचाने के खातिर वे कुछ भी उठा न रखेंगे। सुबह-सुबह ही भय के आतंक से बदहवास गाव में घूम-घूम कर दयाल पडित तरकारिया, दही, मुर्गे, घी, चीनी आदि इकट्ठा करते रहे। मुसकरा-मुसकरा कर सबसे बोलते और इत्मीनानदार आदमी के कान में धीरे से कहते—फासी लगा कर नही मरी थी, देवा ने मार डाला है गला दबा कर, वह तो कहो गांव की बदनामी के खियाल से ठाकुर साहब बीच में पड़ गए, मुदा अब कोई फिकिर नही, जज कलक्टर का हाथ पकड कर फैसला बदलवाय दें, ये तो दरोगा थानेदार की बात है ··

दयाल पंडित की बातो से लोगो को थोडी राहत मिली।

सत्कार-तवज्जह में किसी तरह की कमी न हुई। चौकीदार, कास्टेबिल, मुशी, थानेदार सब प्रसन्न थे, क्योकि इस जमाने में इस तरह का स्वागत कम ही होता है पर ठाकुर जैपाल खानदानी आदमी थे, बड़े-बड़े अफसरो से उनकी दोस्ती थी, इस बात को अदना सिपाही से थानेदार तक सभी जानते थे, चाहे थानेदार पुराना हो या नया, करैता गाव में जाने के पहले ठाकुर जैपाल के बारे में सब कुछ जान लेना उनका फर्ज था।

—अब आप ही देखें साहब, नेकी करते हाथ जलता है, कहा तो बिचारे ने रेल से कटने से उनकी जान बचाई, कहा वह उसी के घर में फासी पड़ कर मर गई ··· गरीब आदमी ऊपर से आफत ····!

देखिए ठाकुर साहब, मैं आप से यह उम्मीद नही करता, यह सीधा मरडर का केस है, औरत की गरदन में अब तक उंगलियों के निशान बने है··· ··नही, नही ये रुपये आप रखिए·· क्या समझा कि आप·····

देवा की उसी दिन चालान हो गई। फूला की लाश भी थाने भेज दी गई।

\+ \+ \+

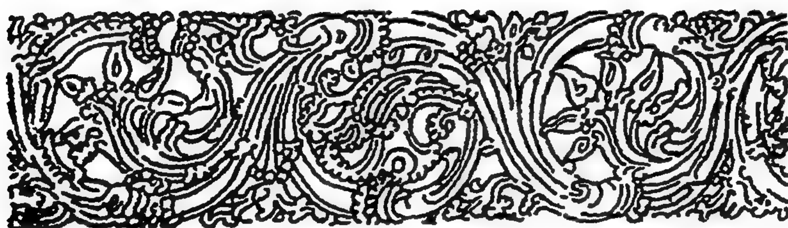
सुबह ठाकुर जैपाल चबूतरे पर मालिश करा रहे थे, उनकी आखें रात भर जगाने के कारण बुरी तरह लाल थी। सुखदेव सामने कुर्सी पर मनमारे बैठा था।

—क्या कहा उसने···?

—कहेगा क्या साला नीच जात की यही हालत है। ऊंचे ओहदे पर पहुच भर जाने से कही शराफत आ जाती है, शराफत तो खानदानी चीज होती है· ·· कहने लगा, मरडर का केस है। अरे मरडर का केस न होता तो क्या चोरी-डकैती के केस के लिए हम तुम्हारी सिफारिश करते. ....—ठाकुर गुस्से में बडबडाए—नीच जात कही का?

सामने दयाल पडित खड़े थे, ठाकुर उनकी ओर आशा लगाए ताक रहे थे, पर दयाल पंडित ने जाने क्यों रोज की तरह हामी में गरदन नही हिलाई।

—इलाहाबाद से प्रसारित



रूसो

डा० देवराज

विश्व के जिन लेखको ने अपने जीवन के वारे में लिखा है, उनमें जीन जैक रूसो का नाम विशेष प्रसिद्ध है। रूसो की आत्मकथा का नाम 'कन्फैशन्स' है, जिसके मानी हैं कि वह उसमें मुख्यत: अपने पापो व अपराधो का विवरण देना चाहता है। मतलब यह है कि रूसो ने अपने जीवन की कथा कहते हुए अपनी बुराइयो को छिपाने का बिल्कुल प्रयत्न नही किया है। उसने पुस्तक के शुरू में लिखा है—मैं एक ऐसा काम करने जा रहा हूं जिसकी पुराने साहित्य में कोई मिसाल नहीं है और भविष्य में कोई नकल नही होगी, मैं अपने सम्बन्ध में सम्पूर्ण, नग्न सत्य कहने जा रहा हू। .... यहां मैंने अपने को जैसा मै था वैसा दिखाया है क्षुद्र तथा घृणा के योग्य, अच्छा, ऊंचे मन और हृदय का इत्यादि। हे भगवान! मैंने अपने को वैसा दिखाया है, जैसा तूने मुझे देखा है। लोग मेरी स्वीकृतियां सुनें, मेरी बुराइयो पर खेद प्रकट करें और लजाए। किन्तु उनमें से प्रत्येक अपने वारे में भी सही रहस्य प्रकट करे, और फिर हिम्मत हो तो कहे कि मै इस मनुष्य से भला था।

अपनी बुराइयो तथा कमियों पर प्रकाश डालते हुए रूसो ने वस्तुत: मनुष्य मात्र की दुर्बलताओ पर रोशनी डाली है, यही उसकी आत्मकथा का सास्कृतिक व साहित्यिक महत्व है।

रूसो का जन्म जेनीवा नगर में १७१२ में हुआ। अठारहवी सदी के फ्रेंच विचारको में रूसो का महत्वपूर्ण स्थान है। वह उन विचारको में है, जो फ्रास की राज्य क्रान्ति के लिए उत्तरदायी थे। वह साहित्य के रोमाटिक आन्दोलन का भी जन्मदाता था। रूसो मनुष्यो की स्वतन्त्रता तथा प्रकृति के अनुसार जीवित रहने के आदर्श का हामी था।

रूसो की जिन्दगी पर स्त्रियो का वड़ा प्रभाव पड़ा। जीवन भर वह एक या दूसरी स्त्री के सम्पर्क में आता रहा, जिससे उसकी जीवन दिशा प्रभावित होती रही। रूसो को जन्म देकर उसकी मा मर गई थी। उसका पिता घड़ीसाज था और उसे बहुत प्यार करता था। शुरू से ही रूसो का हृदय बडा सवेदनशील था, और उसे स्नेह की भूख थी। बचपन से ही उसे पढने का शौक था और उसे यूनानी जीवनीकार प्लूटार्क बहुत प्रिय लगता था। छोटी सी ही अवस्था में उसमें प्रेम सम्बन्धी आवेग जागने लगे थे। रूसो का कहना है कि उसका सवेदनशील हृदय ही उस के अधिकांश कष्टो का कारण बना।

बचपन में उसमें अनेक दोष थे. बहुत बोलने की आदत, भोजन प्रेम, झूठ बोलने तथा चोरी का स्वभाव। लेकिन वह किसी को कष्ट नही पहुचाता था और न किसी की चुगली ही करता था। अपनी चाची से उसने सगीत में रुचि प्राप्त की थी। कुछ दिनो वह एक गाव में रहा, और गाव के जीवन को बहुत पसंद करने लगा। बालक रूसो की यह बड़ी इच्छा रहती थी कि सब उसे प्यार करें। इन दिनो उसे लाम्बेंसिए नाम की एक प्रोटेस्टैन्ट नारी के साथ शिक्षा के लिए रहना पड़ा। एक बार उस नारी ने रूसो को शारीरिक दण्ड दिया, जिससे उसके मन और हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उस समय वह सिर्फ आठ वर्ष का था, लाम्बेंसिए की अवस्था लगभग तीस वर्ष की

थी। उस समय से ही रूसो में स्त्रियों के प्रति आकर्षण होने लगा था । छोटी ही उम्र में उसकी आखे कमजोर हो गईं। पुस्तकें पढ़ने के प्रेम ने उसे कल्पनाशील बना दिया। उसे आस-पास की दुनिया उतनी यथार्थ नही मालूम पडती थी, जितनी कि कल्पना की चीजें। पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में ही उसमें तेज महत्वाकाक्षा उत्पन्न हो गई कि वह खूब प्रसिद्ध बने।

सोलहवें वर्ष में उसकी भेंट एक अट्ठाईस वर्ष की नारी से हुई, जिसने उसके जीवन पर सब से अधिक प्रभाव डाला। इस नारी का नाम था श्रीमती वारेन्स। वह एक विधवा थी, जो पेंशन पाती थी। श्रीमती वारेन्स कोमल प्रकृति, लापरवाह, स्वप्नदर्शी और उदार स्वभाव की थी। रूसो की भाति वह भी पहले प्रोटेस्टैंट थी और फिर कैथोलिक बन गई थी। रूसो ने उसमे एक साथ ही प्रेमिका और मा के सम्बन्धो का आरोप किया। उसके सम्पर्क से रूसो के हृदय मे प्रसन्नता, निराकुल शान्ति और गम्भीर विश्वास की भावनाए उठती थी। रूसो लिखता है—क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति दूसरे को, इच्छाओ के बिना नही, ईर्ष्या के बिना प्यार कर सके? मेरे मन में कभी यह प्रश्न भी नही उठा कि वह मुझे बदले में प्यार करती है या नही। कुछ दिनों बाद रूसो को जीविका के लिए श्रीमती वारेन्स के पास से अलग होना पडा। वह अपने को उनकी कृति, शिष्य, मित्र और प्रेमी सब कुछ समझता था।

श्रीमती वारेन्स से पहली भेंट होने के कुछ ही दिनो बाद रूसो ट्यूरिन गया और वहां कैथोलिक बन गया। इस प्रकार जीविका मिली, पर शीघ्र ही उसे ट्यूरिन छोडना पड़ा। कुछ दिनो बाद उसकी श्रीमती बेसिली से भेंट हुई। वह सदैव बढ़िया पोशाक में रहती थी और वैसे भी सुन्दर थी। उनका पति ईर्ष्यालु स्वभाव का था। श्रीमती बेसिली उसे चिढ़ाने के लिए उसके सामने ही रूसो के प्रति प्यार प्रदर्शित करती। रूसो उन्हें प्यार करने लगा। किन्तु बेसिली के प्रति उसकी भावना वैसी नही थी, जैसी कि मिसेज वारेन्स के प्रति। इसके कुछ दिनों बाद रूसो एक दूसरी महिला के यहा नौकरी करने चला गया। श्रीमती बारसेली विधवा थीं। वह बड़ी प्रतिभाशालिनी और बड़ी मनस्वी थी। उन्होंने रूसो के पिछले जीवन में रुचि दिखाई, और उसके द्वारा लिखे गए कुछ पत्र पढ़े। किन्तु वह स्वय कभी रूसो के प्रति कोमलता प्रकट नही करती थी। रूसो के पहुचने के तीन ही महीने बाद वह मर गई। रूसो ने उसका एक रिबन चुरा लिया था, बाद में पकडे जाने पर उसने एक स्त्री पर दोष डाल दिया। उस बेचारी को सजा मिली, जिसका रूसो को बहुत पछतावा रहा।

इसके बाद वह फिर श्रीमती वारेन्स के पास पहुच गया। वह लिखता है—श्रीमती वारेन्स के प्रति मेरी जो भावना थी वह सिर्फ मित्रता नही थी, वह प्रेम भी नही था, वह प्रेम से ऊंची चीज थी, जिससे मुझे शान्ति व संतोष मिलता था। उनके साथ रहना भर, और बात करते रहना, मेरे लिए बडा सुख था। वह मेरे लिए कोमल माता, प्रिय बहन और मित्र सब कुछ थी।

१७४५ के आस-पास रूसो ने पैरिस के होटल की एक नौकरानी थैरेसी को साथ रख लिया। उसके साथ उसका कभी विवाह नही हुआ, पर वह जन्म भर साथ रही। उसने कभी इसकी परवा न की कि रूसो किन दूसरी स्त्रियो से सम्बन्ध बना रहा है।

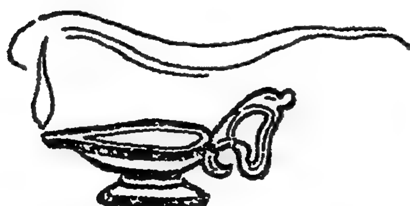
रूसो को साहित्यिक सफलता काफी देर से मिली। दिजान की ऐकेडेमी ने एक पुरस्कार की घोषणा की। पुरस्कार एक निबन्ध पर मिलना था जिसका विषय था 'क्या विज्ञान तथा कलाओं ने मनुष्य का हित किया है।' रूसो ने अपने निबन्ध में दिखलाया कि इन चीजो से और सभ्यता मात्र से मनुष्य की क्षति ही अधिक हुई है। विज्ञान आदि ने मनुष्य की जरूरतें बढ़ाई हैं, जिससे उसकी नैतिकता का ह्रास हुआ है और उसकी गुलामी की नीव पडी है। १७५० में रूसो को इस निबन्ध पर इनाम मिला। वह प्रसिद्ध होने लगा। १७५४ में उसने एक और पुस्तक

लिखी, जिसका नाम था 'असमानता पर व्याख्यान।' उसमें रूसो ने यह दिखलाया कि मनुष्य निसर्गत. भला होता है, और समाज की संस्थाओ द्वारा बुरा बना दिया जाता है। निष्कर्ष यह कि सभ्यता और समाज को संस्थाएं मनुष्य के लिए अभिशाप रूप हैं। रूसो निजी सम्पत्ति के खिलाफ था। असमानता सम्बन्धी निबन्ध के प्रकाशन के बाद रूसो एक मित्र के साथ गांव की एक कुटी में रहने लगा। १७५५ में रूसो ने उक्त निबन्ध की एक प्रति प्रसिद्ध लेखक वाल्तेयर के पास भेजी, जिसने उसका मजाक उड़ाया। गाव की कुटी में वह जिस परिवार के साथ रहा था, उसकी स्वामिनी का नाम श्रीमती एपिने था। कुछ दिनो बाद रूसो उनकी एक सम्बन्धिन से प्रेम करने लगा। उसने अपने पर नियंत्रण करने की कोशिश की पर व्यर्थ। उसकी शान्ति भग हुई, और वह कुछ दिनो बाद एक दूसरे परिवार में चला गया।

१७६२ में उसकी दो प्रसिद्ध पुस्तकें निकली 'एमिली' जो कि शिक्षा सम्बन्धी पुस्तक है और 'द सोशल कान्ट्रेक्ट'। 'एमिली' पुस्तक के, विशेषत. उसके चौथे भाग के, खिलाफ बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। अब तक रूसो के अनेक शत्रु पैदा हो चुके थे जैसे रानी पाम्पाडूर, जो फ्रास के सम्राट की बडी प्रिय थी, फ्रांस का प्रधान मत्री तथा श्रीमती देफाल्द, जो पेरिस के लोगों की राय बनाती थी। फ्रांस की पार्लियामेन्ट ने 'एमिली' को जलाने का हुकुम दिया। ग्यारह जनवरी १७६२ को 'एमिली' पेरिस में जलाई गई। कुछ लोग साफ-साफ कह रहे थे कि उसके लेखक को भी जला देना चाहिए। कुछ दिनो बाद रूसो की जन्म भूमि जेनीवा में उक्त पुस्तक को जलाया गया। उसके बाद बर्न और न्यूशातेल में। सारे योरप में 'एमिली' के खिलाफ शोर होने लगा। इस सबका रूसो के मानसिक स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ा।

'एमिली' में इस मत का प्रतिपादन है कि बालक की शिक्षा प्रकृति के अनुसार होनी चाहिए। रूसो पुस्तको के खिलाफ़ था, और सभ्यता की परम्पराओ का विरोधी। सोशल कान्ट्रेक्ट, पुस्तक में मनमानी करने वाली सरकार, विशेषत. राजतत्र का, विरोध है और जनतत्र का समर्थन। इस पुस्तक ने फ्रांस की राज्य क्रान्ति के लिए भूमि तैयार की।

—लखनऊ से प्रसारित



दैनिक जीवन और कानून

गोवर्धनदास अग्रवाल

किसी भी स्वतंत्र देश के कानूनो का परिचय उसके नागरिको को होना चाहिए। उससे उन्हें पता चलता है कि उनके अधिकार एव कर्तव्य क्या है और यदि वे उनका ठीक से पालन नही करेंगे अथवा अधिकारों की सीमा का उल्लघन करेंगे, तो उन्हे क्या दण्ड भोगना पड़ेगा। कानून का तात्पर्य उन विविध प्रकार के नियमो से होता है, जिनके अनुसार सामान्यत. हमारा आचरण होता है और जिन्हे राज्य अपनी अदालतो के जरिए लोगो पर लागू करता है। कानून, राज्य द्वारा बनाए गए आचरण के नियमो को दिया गया ही एक दूसरा नाम है।

प्राचीन काल में कानून का मुख्य स्रोत प्रथा या चलन था। हमारी ही तरह प्राचीन जातियो के भी अपने कानून थे। अपने कानूनो को वे कानून प्रदायको से ग्रहण करते थे, जो प्राय. राजा, योद्धा, कबीले के मुखिया, पडे, पुजारी या पैगम्बर होते थे। हिन्दुओ के कई कानून प्रदायक थे जो ऋषि-मुनि थे और उनमें सबसे प्रसिद्ध मनु थे। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात भारत का सविधान उसका सर्वोच्च कानून है, क्योकि भारत के कानूनो में उसकी सत्ता सर्वोपरि है और अन्य सभी कानून उसके उपबधो के अनुसार ही बनाए और लागू किए जा सकते है। यह खुद भारत वासियो ने बनाया है। यह उनके चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा, उनकी बढती हुई आवश्यकताओ के अनुसार, लगातार बनाया, बदला तथा परिवर्धित किया जा रहा है। हमारा राष्ट्र ज्यो-ज्यो आगे बढ़ रहा है, उसके कानूनो में तेजी से परिवर्तन एव सशोधन हो रहा है। कानून बुनियादी तौर पर नैतिकता के सर्वोच्च आदर्शों और समाज के सब अगो के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार पर ही आधारित होता है। कानून बनाने की मशा यह होनी है कि वे सबके लिए न्यायपूर्ण और समान हो। यह बात नही कि सिर्फ हमारा राजनीतिक ढाचा ही कानून की बुनियादो पर आधारित है, बल्कि उन पर हर समाज एव व्यक्ति का दैनिक, सामाजिक एव आर्थिक ढाचा खडा हुआ है।

अदालत में वकालत करते हुए यह तथ्य मेरे सामने आए कि किसी न किसी तरह समाज के हर तबके के लोग अदालतो में पहुंचते है। तरह-तरह के लोगो पति और पत्नी, मा-बाप और उनके बच्चे, सरक्षक और सरक्षित, वकील और उनके मुवक्किल, डाक्टर एव मरीज, व्यापारी और ग्राहक के बीच के सभी झगड़े-झमेले फैसलो के लिए अदालतो में पहुचते है। तिस पर भी हम यह महसूस नही करते कि हमारा दैनिक जीवन कानूनो की कडी मे कितना जकडा हुआ है।

कानून का मूल सिद्धात है कि कानून को न जानना, बचाव की कोई दलील नही है। हर व्यक्ति कानून का जानकार माना जाता है। कोई भी व्यक्ति कानून भग करने के बाद उसके परिणाम से यह कह कर नही बच सकता कि उसे कानून का ज्ञान नही था। यदि वह अपराध करता है, दूसरे के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुचाता है अथवा अपने किए हुए कानूनी करार को पूरा नही करता, तो उसे हरजाना देना होगा अथवा दण्ड भुगतना पडेगा। हर प्रकार हर साधारण व्यक्ति का कानून से सम्बन्ध होता है। हो सकता है कि किसी व्यक्ति के पास सम्पत्ति हो, वह कर देता हो, स्वय नौकरी करता हो या दूसरो को नौकर रखता हो, उसे किसी अन्य

के विरुद्ध दावा या अपने विरुद्ध किए गए दावे का प्रतिरोध करना पड़े। सम्भव है, वह एक सार्वजनिक क्षेत्र में उच्च पद पर हो, किसी मन्दिर-मस्जिद या अन्य दान संस्था का न्यासी (ट्रस्टी) हो, किसी नाबालिग का संरक्षक, संसद, राज्य विधान सभा, स्थानीय बोर्ड का सदस्य अथवा राज्य की प्रतिरक्षा सेवा का सदस्य हो। इन तथा अन्य परिस्थितियों में कानून का जानना और उसके अनुसार आचरण करना उसके अपने हित की बात होगी।

मनुष्य रोटी से ही जिन्दा नही रहता। उसकी और भी जरूरतें होती है। वह सबसे एकाकी जीवन यापन नही कर सकता, उसे अन्य व्यक्तियो के सम्पर्क-साहचर्य की आवश्यकता होती है। वह परिवार, कबीले, समुदाय व राज्य आदि समूहो में संगठित होकर उनसे सम्पर्क स्थापित करता है, किन्तु वह ऐसा तभी कर सकता है जब कि वह और दूसरे व्यक्ति आचरण के उन नियमो का पालन करें, जो उनके बीच व्यवस्थित सम्बन्धो की स्थापना करते हैं। जब बडी संख्या में लोग सह-नागरिकता का फायदा उठाना चाहते हैं, तो उन्हें शरीर, घर और उनकी चीजो की सुरक्षा मिलती है। इस फायदे को वे बाह्य शत्रुओं से रक्षा के लिए और आपस में व्यवस्था बनाए रखने के लिए संगठित होकर प्राप्त करते हैं। ऐसा करने के लिए वे भौतिक या शारीरिक सुख, ज्ञानार्जन, मस्तिष्क व आत्मा का विकास और लोक हित जैसे अन्य फायदो को पाने के लिए योग दे सकते हैं। यह तभी सम्भव है जब कि सब नागरिक शान्ति और मेल से रहें और आचरण के सर्वसम्मत आदर्शों का पालन करें।

हमारे देश का आजकल का लक्ष्य लोकतन्त्रात्मक समाजवादी समाज रचना होने के कारण हमारा जीवन दिन प्रतिदिन कानूनी शिकंजो में जकड़ा जा रहा है। अगर हम अपने चारों तरफ प्रतिदिन नए-नए कानूनों को लागू होने की ओर दृष्टि डालें, तो हमें प्रतीत होगा कि एक तरह से हमने अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में समाविष्ट कर दी है और हमने अपने आप को सार्वजनिक कानूनों से बांध दिया है।

आजकल हम मकान मालिक है, तो हमें अधिकार नही है कि हम उसे स्वेच्छा से किसी को किराए पर दे दें। मकान मालिक को मकान को किराए पर उठाने के लिए, दुकानदार को सामान बेचने के लिए, कारखानेदार को अपने सेवकों को रखने एव निकालने के लिए, भू स्वामी को अपनी भूमि बेचने एवं उसमें उत्पादन करने के लिए राज्य की अनुमति लेनी होती है एवं नियमो के अनुसार आचरण करना पडता है।

आजकल दुकानदार को यह स्वतंत्रता नही है कि वह चाहे जब अपनी दुकान खोले और बंद करे। उसे नियमानुसार निर्दिष्ट समय पर दुकान खोल कर बंद कर देनी होती है। वह निर्दिष्ट समय से अधिक अपने सेवकों से कार्य नहीं करवा सकता। अब कोई भी व्यक्ति एक निर्दिष्ट संख्या से ज्यादा एकड भूमि अपने पास नहीं रख सकता है। बच्चो की शिक्षा के लिए भी नियम बने हुए हैं। अगर बच्चा उच्च क्रमांक प्राप्त न कर सका, तो उसकी आगे की शिक्षा में बाधा आ जाती है। यह हर नागरिक के लिए अनिवार्य है, कि वह अपने बच्चे को कम से कम प्राथमिक शिक्षा अवश्य दे, वर्ना वह दण्ड का भागी होगा।

हमारे पारिवारिक सम्बन्धो का विकास बहुत सी समस्याए पैदा करता है, जैसे वैध विवाह, का भंग, आश्रित सम्बन्धियों के भरण-पोषण का कर्तव्य, नाबालिग बच्चो के शरीर व सम्पत्ति की रक्षा तथा उत्तराधिकार का अधिकार। पारिवारिक कानून के नियमो में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, और हो रहे हैं। अब मृत हिन्दू की सम्पत्ति में पुत्रियो को एव महिला सम्बन्धियो को पुरुष सम्बन्धियो के समान अधिकार दिए गए हैं। विधवाओ की स्थिति अब हिन्दू समाज मे कानून के द्वारा काफी प्रगतिशील हो गई है।

अब तो सरकार ने संसद में यह भी कानून पेश किया है कि कोई भी अपनी पुत्री के दहेज में २,००० रु० से अधिक न दे सकेगा, देगा तो उसे कारावास का दण्ड तक दिया जा सकेगा। इन सब नए सरकारी कानूनो ने हिन्दू सनातन धर्म की परिपाटी को एकदम बदल कर आधुनिक बना दिया है, जिससे कि समाज अधिक प्रगतिशील हो और वह नियमानुसार आचरण करे।

कहने का तात्पर्य यह है कि अब हमें अपने पारिवारिक जीवन के हर पहलू पर कानून की शरण में जाना पड़ता है। इस तरह हम देखते हैं कि अब हम पूर्णरूप से कानून के शासन में रह रहे हैं। हमारे दैनिक जीवन का एक भी पहलू ऐसा शायद ही निकले कि जिसके लिए राज्य ने कुछ नियम आचरण के लिए न बनाए हो। इसलिए अब यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि स्कूलो तथा कालेजो में हर विद्यार्थी को कानून के बुनियादी उसूलो की शिक्षा दी जानी चाहिए। मानना ही होगा कि आधुनिक प्रजातान्त्रिक युग में कानून सर्वोपरि है, जिसके नियमो द्वारा हमारा दैनिक जीवन संचालित होता है।

—नागपुर से प्रसारित

मधवन के कांटे कलियों से ज़्यादा शिष्ट लगे

देवराज दिनेश

कभी न घबराया मैं गहरी काली रातों से—
ऐसा कह कर जीवन का अपमान करूंगा मैं!

कई बार सिहरन व्यापी है इन सुनसानो में,
कई बार अन्तर मेरा कापा वीरानों मे।
किसी पथिक के लिए हृदय की अकुलता रोई,
एकाकीपन ने अन्तर मे गहन व्यथा बोई।
दीप जलाए बहुत, पवन ने सभी बुझा डाले,
मन के अम्बर पर पाले हैं मेघ व्यथा वाले।
पीड़ाओ से मैंने कभी नही मुख मोड़ा है—
ऐसा कह कर क्रन्दन का अपमान करूंगा मैं!

जीवन के विष को पीना इतना आसान नही,
फटे हुए अन्तर सीना इतना आसान नही।

जब जब भी अन्तर की वीणा पर दुख ने गाया,
मेरे मानस की करुणा ने नवल रूप पाया।
जब जब भाव हुए आकुल भाषा खुद संवर गई,
पीड़ा मेरी स्वयं बन गई उस क्षण छन्दमयी।
कभी न रोया मैं जीवन के झंझावातों में —
ऐसा कह कर यौवन का अपमान करूंगा मैं!

बाती जली रोशनी फैली सूने अन्तर में,
लगा कि कोई गीत तड़पता है मेरे स्वर में।
तुमने मुझको दुलराया, दुलरा कर ठुकराया,
पर यह वैरागी मन तुम पर कभी न झुंझलाया।
मैंने चाहा शूल चुनूं मैं जग की राहों से,
बन्दी स्वप्न छुड़ा लूं निठुर नियति की बाहों से।
बन्धन में भी करुणा का वरदान मिला मुझको —
यह न कहूं तो बन्धन का अपमान करूंगा मैं!

तारों की बस्ती में चन्दा का यौवन पा कर,
जब जब गीत बनाए विरही मन ने अकुला कर।
चुभन भरी जिन कांटों ने उनको भी सहलाया,
कलियों की मुसकान निरख भवरा बन कर गाया।
फिर भी मधुवन से ज्यादा मरुथल पर मोह रहा,
मरु का सूनापन अन्तर की ममता टोह रहा।
मधुवन के कांटे कलियों से ज्यादा शिष्ट लगे—
यह न कहूं तो मधुवन का अपमान करूंगा मैं!

मलयानिल बह रहा सुखद चन्दन की गन्ध मिली,
चिर युग से मुरझाई प्रिय की स्मृति फिर आज खिली।
मन में इतना मोह कि गति के बन्धन टूट गए,
चरण बढ़े आगे कुछ साथी पीछे छूट गए।
पहुंचा तो देखी चन्दन पर विषधर की छाया,
गन्ध मिली लेकिन विषधर का दर्शन भी पाया।
विषधर से घबरा कर मैंने चन्दन छोड़ दिया—
ऐसा कह कर चन्दन का अपमान करूंगा मैं!

—दिल्ली से प्रसारित

दिल्ली जो थी

अम्बिकाप्रसाद मिश्र

अब आज की दिल्ली शानदार है। कल की भी शानदार थी। पर कल की शान कुछ और ही थी। लाल किले के दीवान-ए-खास की एक मेहराब के ऊपर सुनहरे हरफो में लिखा है :

अगर फिरदौस बर रुए जमी अस्त,
हमीन अस्तो, हमीन अस्तो, हमी अस्त ॥

मतलब यह कि अगर इस ज़मीन पर स्वर्ग कही है, तो वह यही है, यही है। पर इसका मतलब यह नही कि स्वर्ग सिर्फ शाही दरबार या शाही महलो पर उतरा था। उसकी छाया पूरे शहर पर पड रही थी।

जिस शहर के आस-पास, और बागो के अलावा सिर्फ अगूरो के ही १,२०० बाग लगवाए गए हो, जिसे नन्दन कानन बनाने के लिए शाही परिवारो ने कोर-कसर न रखी हो, जिसके खास-खास बाजारो में नहरें बहती हो, जहां नौका विहार के लिए बल्लिया लगाने वाले मल्लाहो के लिए 'बल्ली मारान' नाम से पूरा एक मुहल्ला आबाद हो, हुक्का पीने वालों का शौक पूरा करने के खातिर तरह-तरह की खूबसूरत निगालियो की बधाई के लिए पूरा कूचे का कचा 'नेचाबन्दान' के नाम से मशहूर हो, कामदानी कामवालो के लिए 'कंदलेवाली गली', गोटा किनारी के लिए 'किनारी बाज़ार', और पराठे के शौकीनो के लिए 'गली पराठे वाली आबाद की गई हो, तरह-तरह के फन व हुनर के कामो के लिए अलग-अलग मुहल्ले बसे हों, जहा आए दिन सुनहरी अम्बारी और ज़रदोज़ी फूलो से सजे-धजे हाथियो के जुलूस निकलते हो, हुक्मरानो के लिए बर्फ न सिर्फ गढवाल बल्कि अमेरिका से आती हो, जहां जल्सो-जुलूसो का कभी तार ही न टूटता हो और जहा रोज़ ही मेले-ठेले के नज़ारे दिखाई देते हो, उसे आप स्वर्ग से आखिर कितना घट कर समझेंगे ?

जिस दिल्ली का ज़िक्र कर रहा हू, उसकी हल्की सी झाकी मैंने देखी है, लेकिन उसकी ज्यादातर कहानी उन लोगो से सुनी है, जिन्होने उसे या तो अपनी आंखो देखा या उसकी दास्तान अपने बड़ो से सुनी।

लाल किले के लाहौरी दरवाज़े और दिल्ली दरवाज़े के सामने दो खूबसूरत बाज़ार थे। लाहौरी दरवाजे के सामने वाले बाज़ार को लाहौरी बाज़ार कहते थे, जिसे आजकल चादनी चौक कहा जाता है। इस बाज़ार के बीचों-बीच एक नहर थी।

इसी तरह लाल किले के दिल्ली दरवाज़े के सामने भी एक बाजार था, जो तीस गज़ चौड़ा और १,१०० गज़ लम्बा था। इसके बीच में भी नहर थी। पहले इस बाज़ार का नाम अकबराबादी बाज़ार था पर बाद मे फैज़ बाज़ार पड गया, क्योकि इसके बीच बहने वाली नहर का नाम फैज़ नहर था। ये दोनो बाज़ार अब भी मौजूद है, पर इनकी नहरें गायब हैं।

अंग्रेज़ो के जम जाने के बाद दिल्ली का विस्तार कश्मीरी दरवाज़े के बाहर कोई दो मील तक जमुना के किनारे और पश्चिम में पहाड़ी यानी रिज के दोनों ओर हुआ। अंग्रेज़ों

के लिए दिल्ली फौजी और गैर-फौजी दोनों तरह का केन्द्र ही नही, वल्कि तीर्थस्थान वन गई थी। उत्तर भारत के किसी और शहर या इलाके से उन्हें इतना लगाव नहीं हुआ। उन्होंने अपने लिए यहा शाही ठाठ-वाट के मकान भी वनवाए, जो देखने की चीज होते थे। मेटकाफ हाउस और लडलो कासल इस वात के सवूत है। उस समय के अंग्रेज दिल्ली के भारतीय जीवन को अपनाने का प्रयत्न करते थे, हालांकि गर्मी के मौसम में, उनके लिए वर्फ गढ़वाल की जगह अमेरिका से आने लगी थी। वाद में तो दिल्ली दरवाजे से लेकर तुर्कमान दरवाजे तक वर्फ के खेत ही खेत वन गए थे। खेत इसलिए कहा कि कड़कड़ाती सर्दी के दिनो में इस इलाके में सर्द पानी को खन्दको में जमा कर गर्मी के दिनो के लिए वर्फ तैयार की जाती थी, जो अप्रैल से लेकर अगस्त तक के लिए काफी होती थी।

आज लाल किले से लेकर जामा मसजिद तक जो खाली मैदान दिखाई देता है, उसमें किसी वक्त दरम्याने दर्जे के लोगो की वस्ती थी, जिसमें वीच-वीच में उन अमीर उमरा के मकान थे, जिन्हें शाही दरवार से सरोकार रहता था।

सत्तावन के गदर के वाद १८६० में अंग्रेज सरकार की ओर से हुक्म हुआ कि लाल किले से ४४८ गज के दायरे के अन्दर की सारी इमारतें गिरा दी जाए। अंग्रेज इंजीनियरो की तो ख्वाहिश थी कि दिल्ली का सराफा यानी दरीवा कलां भी नेस्तनावूद कर दिया जाए, लेकिन शहर की पंचायतो के पिटीशन भेजने पर दरीवे को छोड़ दिया गया। जो इमारतें गिराई गई उनमें अकवरावादी मस्जिद भी थी, जो वहुत वड़ी थी। ४४८ गज के दायरे में सिर्फ एक ही इमारत रहने पाई, जो अव तक भी मौजूद है और वह है लाल किले के दिल्ली दरवाजे के सामने दाईं ओर की जाविद खां की छोटी सी, पर खूवसूरत सुनहरी मस्जिद। आजकल जहा पुरानी दिल्ली का रेलवे स्टेशन और रेल की पटरियो का जाल विछा है, वहां भी आवादी थी। दिल्ली का सामाजिक और सास्कृतिक जीवन इतना खुशरंग और मजेदार था कि उसकी हर वात की तफसील तो क्या फिहरिस्त में जाने का भी वक्त नही है। सिर्फ कुछ खास-खास वातों का ही जिक्र करता हू, और वह भी सरकारी तौर पर।

दिल्ली शहर फसील के अन्दर उसी तरह कैद था जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रियतमा की गल वाहों में रम जाए। यह फसील यानी चहारदीवारी अव से साठ साल पहले तक पुख्ता हालत में थी। सारे दरवाजे रात को वन्द कर दिए जाते थे और सुवह खोल दिए जाते थे।

ज्यादातर लोग शहर की चहारदीवारी के अन्दर ही रहते थे। वे मुश्किल से वाहर जाते थे। जाते भी थे तो किसी दरवेश या फकीर की दरगाह पर या फिर लम्वे सफर को। सुवह की सैर का रिवाज नही था। रईस लोग शाम को निकलते थे, लेकिन उनकी टमटम आम तौर पर चादनी चौक और कश्मीरी दरवाजे का फेरा लगा कर दियावत्ती जलने से पहले ही लौट आती थी। कभी किसी ने हिम्मत की तो सैसिल होटल तक चला गया, लेकिन वहा पहुचते न पहुंचते नाईस को इशारा होने लगता था—आगे खतरा है, गाडी घुमाओ।

दिल्ली की आवादी घनी थी, क्योंकि यहां वड़ी खुशहाली थी। गेहू रुपये का एक मन और घी चार सेर का विकता था, रुपये का डेढ सेर घी और दस सेर दूध तो अभी कल की सी वात जान पड़ती है। व्याह-शादियो में हजार-डेढ़ हजार आदमियो की जयाफत होती थी, जिसमें आम तौर पर सात या नौ किस्म की मिठाइयां और पांच किस्म की नमकीन चीजें परोसी जाती थीं। पूरियां, खस्ता कचौरियां, केले की चटनी और कुलफी के कूले इनके अलावा होते थे।

दिल्ली के लोग शाही दरवार के प्रभाव के कारण आमतौर पर भड़कीली पोशाकें पहनते थे।

नाई हजामत बनाने घरो पर आते थे, क्योकि उस वक्त हेयर कटिंग सैलून नही थे। आज के डाक्टरो का काम वैद्य, हकीम और जर्राह करते थे। जर्राहो की दूकानें शायद हर मुहल्ले में थी।

मनोरंजन के लिए आजकल के से क्लब और सिनेमा नही थे, पर गाने-बजाने की महफिलो वगैरह से जी बहलाने के जरिए बहुत थे।

सडको पर साडो की लड़ाई करवाई जाती थी और उस वक्त अमदरफ्त बन्द हो जाती थी। कबूतरबाजी, बटेरबाजी, तीतरबाजी और पतगबाजी का शौक आम था और गली गली में माझा तैयार किया जाता था। मेढे लड़ाने का भी शौक था। बरसात के दिनो में तागो की दौड यानी रेस होती थी यह रेस अब भी होती है, पर जिन दिनो की बात है उन दिनो डिप्टी कमिश्नर साहब भी इसे देखने जाते थे और सड़को पर सभी तरह की सवारियो का चलना बन्द हो जाता था। यह रेस मथुरा रोड पर दिल्ली गेट से निजामुद्दीन तक होती थी और तागो में बैठे लोग घोड़ो के तूफान मेल बनने के खयाल से बेतहाशा चिल्लाते रहते थे।

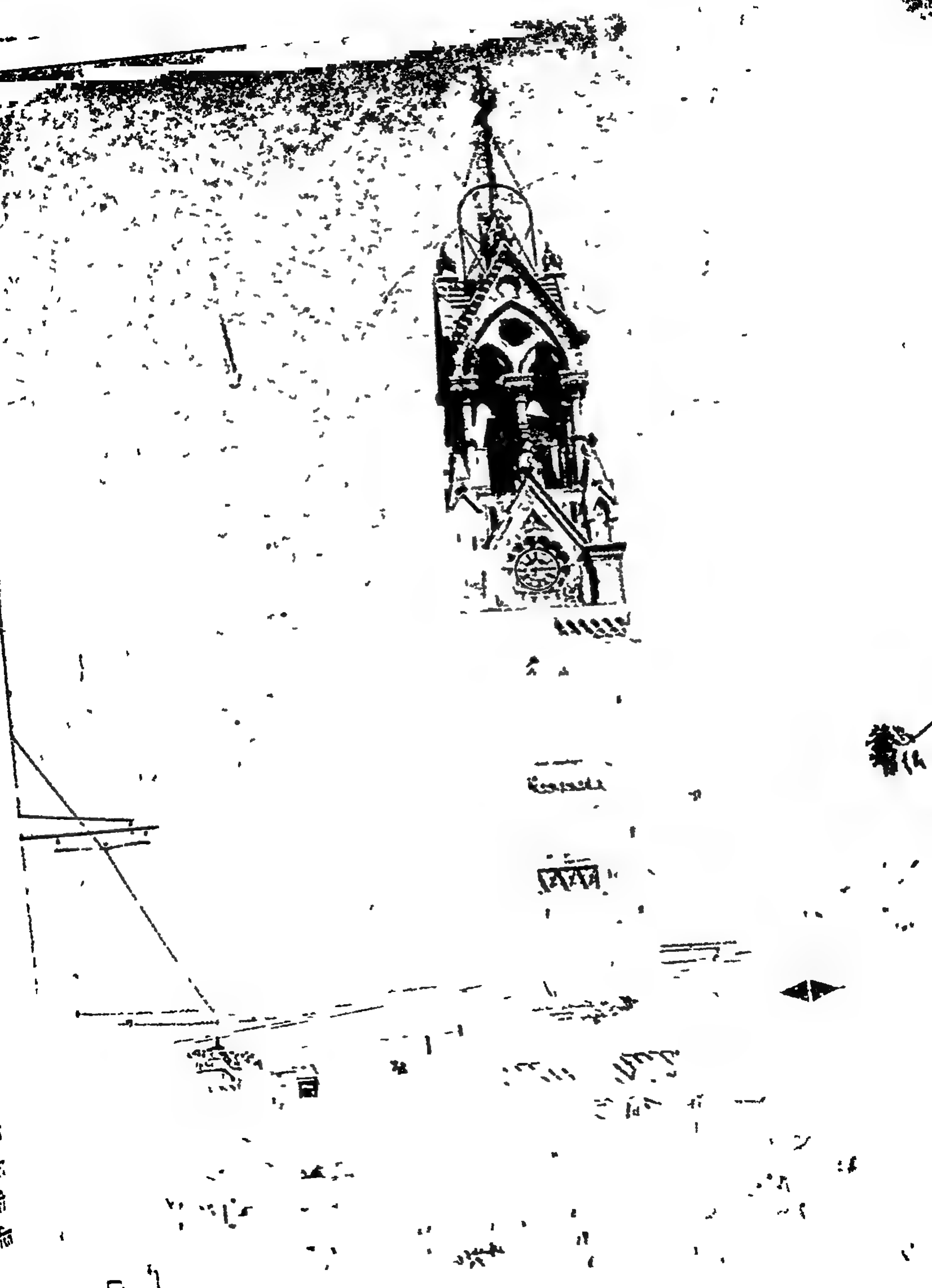
मवेशी पालने का शौक भी कम न था। गायें सब के यहा होती थी। सड़को पर आज की सी बिजली की बत्तिया नही, बल्कि लालटेने थी, जिन्हें झुटपुटे से पहले ही जलाने के लिए सड़को पर सीढ़ियां, लिए मजदूरो की भगदड़ सी मची रहती थी। रात को सडकें कम ही चलती थी, क्योकि हर आदमी इस कहावत पर अमल करना चाहता था 'दिया जले, मर्द घर भले।' सड़कें तारकोल की नही थी। जब पानी बरसता था तो कीचड से भर जाती थी। गर्मी के दिनों में सड़कें धूल से भरी रहती थी। शाम को भिश्ती छिड़काव करते जरूर थे, लेकिन धूल थी कि सिर तक चढ जाती थी। पर लोगो का सडको की खराबी की ओर ध्यान ही न जाता था और वे इन असुविधाओं की कोई परवा न करते थे।

उस जमाने में नल नही थे और कुओ का पानी हाथ गाड़ियो से घर-घर पहुंचाया जाता था। डोलियो का रिवाज बहुत था और हर मुहल्ले के बाहर दस-बीस डोली वाले डोलिया लिए बैठे रहते थे। औरतें-लड़किया ही डोलियों का इस्तेमाल करती थी, क्योकि औरतें सडको पर नही निकलती थी। तागो के चलन के बाद डोलिया कम पड़ गईं, लेकिन जब डोली का काम तांगे से लिया जाता था तो तागा भागता हुआ तम्बू नजर आता था। कुछ लोग तांगे को इस तरह कपडे से लपेट देते थे कि सिर से पैर तक औरतों का कोई भी अग दिखाई नही देता था। उस जमाने में स्त्री शिक्षा लोकप्रिय नही थी।

सामाजिक जीवन की तरह दिल्ली का सास्कृतिक जीवन भी सम्पन्न था। साहित्य के क्षेत्र में खासी चहल-पहल रहती थी। मिर्जा गालिब और उस्ताद जौक की रहनमाई में उर्दू अदब खूब फलफूल रहा था। हिन्दी के क्षेत्र में मुशी सदासुख लाल 'नियाज' और सैयद इशा अल्ला खां बुनियादी काम कर रहे थे। उधर दिल्ली कालेज, जो दारा शिकोह की लाइब्रेरी में लगता था, अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन को बढावा दे रहा था।

लेकिन दरबारी रंग उतर जाने और अग्रेजो के पैर अच्छी तरह से जम जाने के बाद दिल्ली के जीवन पर उपयोगितावाद यानी 'यूटिलिटेरियनिज्म' का गहरा पुट चढने लगा। फिर तो इकतिसादी यानी आर्थिक दृष्टि से जो भी बात फायदे की न जची वही छूटने लगी और तालीम का मतलब यह निकाला जाने लगा कि थोडी सी अंग्रेजी आनी चाहिए और विदेशी रंग ढग की नकल की जानी चाहिए। चुनाचे कल की दिल्ली अपनी राजनीति, सामाजिकता और सस्कृति की यादगार को गोद में समेट कर सो गई है और आज की दिल्ली भारत के दूसरे बड़े शहरों की तरह उपयोगितावाद की ओर सरपट दौड़ी चली जा रही है। —दिल्ली से प्रसारित

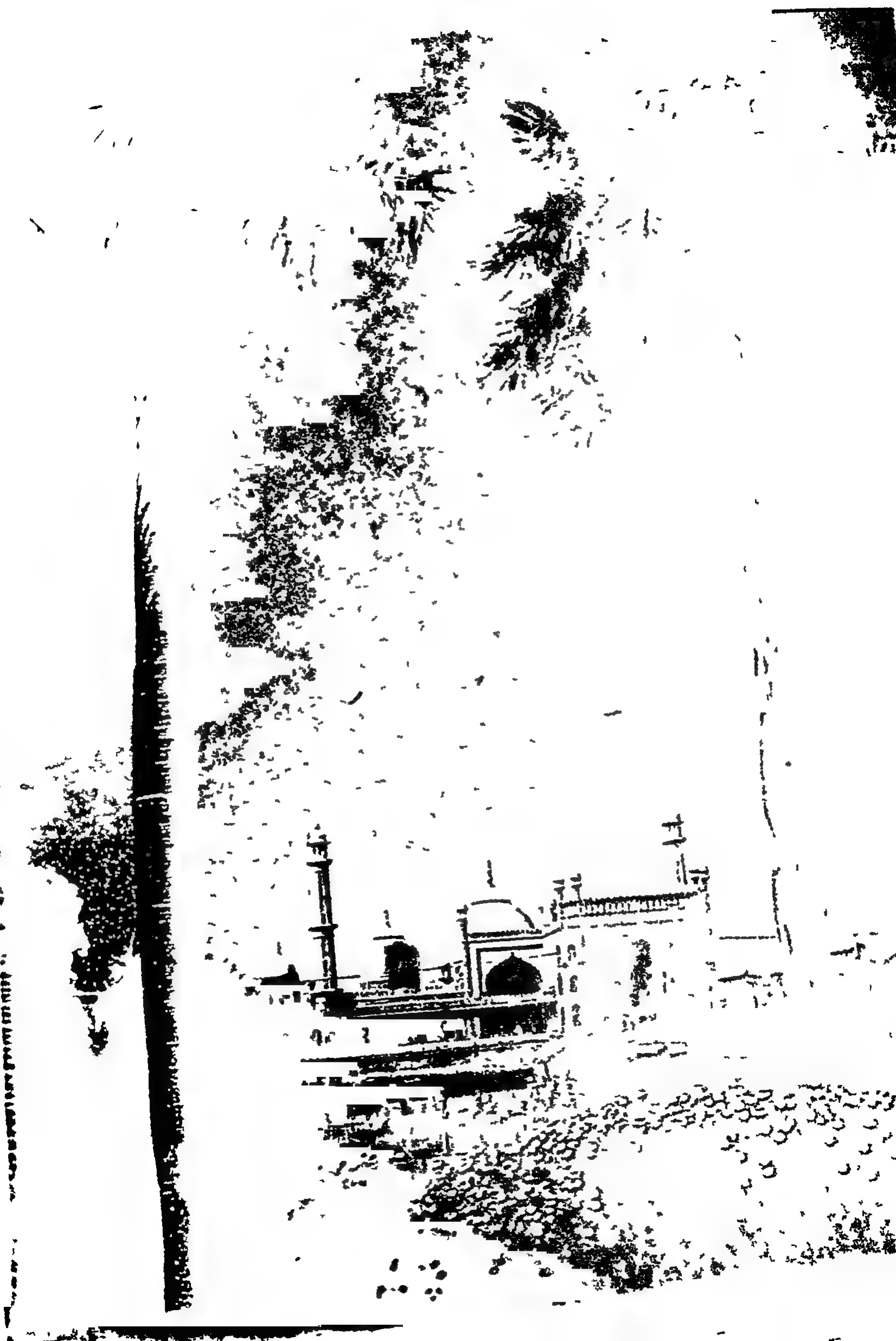
चादनी चौक का घटाघर जो अब नही ह



लाल किला

कश्मीरी गेट

জামা মস্‌জিদ



दुर्गा की मूर्ति



बंगाल की दुर्गा पूजा

माया गुप्त

[दूर से संगीत और वाद्यध्वनि सुनाई पड़ती है, साथ ही समवेत स्वर से मृदु गम्भीर मन्त्रोच्चार सुनाई पड़ता है।]

या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्य नमो नमः।।

[संगीत की मृदु गुंजार सुनाई पड़ती है]

बालिका—ओह! कितना मीठा लग रहा है यह सब, कितना मधुर और गम्भीर!

बालक— देखा! मैं सच कहता था न! दुर्गा पूजा का यह त्योहार बंगाल की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है! बिना इसे देखे बंगाल को समझना अपूर्ण होगा!······ आओ चलें, वहां चल कर हम भी दर्शन करें।

बालिका—हां चलिए!······ओह! इतना बड़ा मण्डप········और यह खम्भे कितने सुन्दर हैं·······संगमरमर की तरह चमक रहे है।

बालक— (हंस कर) हां, पर यह संगमरमर नहीं है। यह केले के वल्कल से बनाए गए है। जरा पास आ कर देखो, इस पर कितनी कलापूर्ण नक्काशी की गई है।

बालिका—सचमुच अनूठी कला है!······केले की छाल को काट कर इतनी सुन्दर मूर्तिया, बेलें और फूल-पत्ते उभारे जा सकते है।

बालक— अरे यह अल्पना इसे भी तो देखो!

बालिका—अरे हां इसे तो देख ही नही पाई थी, यह किस चीज़ से सजाई गई है।

बालक— चावल पीस कर उसी से बनी है। आज तो कुछ देर हो गई, अगर इसे बनाते वक्त देखो तो दंग रह जाओ। एक बार रेखा शुरू करके एक ही बार में रेखाओं को कितने घुमाव और मोड़ देकर इतनी सारी बेलें, फूल और पत्ते अंकित कर देते हैं। [अचानक संगीत और ढोल की ध्वनि स्पष्ट और तेज़ हो जाती है।]

बालिका—ओह, कितना सुन्दर लग रहा है।···· यह सब तो अनूठा ही है।

[कुछ देर वाद्यध्वनि के बाद]

बालक— जानती हो यह ढोल बजाने वाले कलाकार कौन है?

बालिका—कौन है?

बालक— यह वे लोग हैं जिन्हें अछूत कह कर लोग घृणा करते है।

बालिका—अछूत?·····अरे यहां? इस पवित्र स्थान में उनको आने देते हैं।

बालक— सचमुच अचरज होता है! है न? पर ये न आएं तो देवी दुर्गा की यह पूजा अधूरी रह जाएगी, समझी।·····दुर्गा पूजा के इस महापर्व पर कोई भेदभाव नहीं रखा जाता। अछूत हो, या पतिताएं। सबको इस मण्डप में आकर दुर्गा पूजा के उत्सव में हाथ बंटाने की छूट है।

वाचिका— पर ये लोग तो अद्भुत कलाकार हैं। ·····केवल ढोल इतने मधुर स्वर में बजाया जा सकता है, यह कल्पना भी नही थी। सुनते-सुनते सुध-बुध खो गई थी। मन तो मन ऐसा लगता था कि रक्त की एक-एक बूंद उनके साथ हर ताल पर थिरकने लगी हो।

वाचक— इसके लिए इनको महान् साधना करनी पडती है। पता नही कितना अभ्यास करना पड़ता है। यह उनका एकाधिकार है। आज के दिन वे ढोल बजाने के अधिकारी हैं। उन्हें ढुली कहते हैं।

वाचिका— इसे सीखा तो जा सकता है न ? · · ·भला इन्होंने कहां से सीखा होगा ?

वाचक— (हँस कर) यह आज की नही, इनकी पीढी दर-पीढी से चली आई कला है। बाप-दादों से मिली हुई विद्या है। जिसे सिर्फ यही जानते हैं और इनकी पीढ़ी के अगले अंकुर जानेंगे।

वाचिका— इतना मीठा संगीत और यहां की गम्भीरता और साथ ही उल्लास, सब कुछ कितना दिव्य लग रहा है। अगरु-धूम की उठती हुई मधुर गन्ध मे तो सारा मण्डप तैरता-सा लग रहा है।

वाचक— हा, चलो आगे बढ कर जल्दी से दर्शन कर लो। आज की पूजा समाप्त हो रही है, अभी प्रसाद बटने लगेगा।

[धीरे-धीरे सगीत का डूबना, लोगो की बातचीत की गुनगुनाहट, धीरे-धीरे यह स्वर भी डूब जाता है।]

[खुले मैदान में, हवा की सरसराहट, पक्षियो का कलरव]

वाचक— लो, अब पूछो क्या कह रही थी! ·····आओ, वहा चल कर घास पर बैठते हैं! कितना सुन्दर दृश्य है, है न ?

वाचिका— यह ऋतु ही ऐसी है।

वाचक— हा, यह बात भी है। देखो न, त्योहार अक्सर ऐसे समय पर होते हैं जबकि लोग करीब-करीब खेती-बारी से निपट जाते है। मौसम सुहाना रहता है और आनन्द से त्योहार मनाते है। जैसे होली-दीवाली आदि के समय पर खेती का कोई खास काम नही होता है।

वाचिका— क्या केवल हमारे देश मे ही ऐसा होता है ?

वाचक— नही भाई, सभी देशो में यह बात है क्योकि लोग खुशी से उत्सव तभी मना सकते है, जब काम से कुछ फुरसत हो। दुर्गा पूजा और दीवाली के त्योहार शरत ऋतु में होते हैं, जब वर्षाकाल के बाद धान के हरे-भरे खेत लहलहाते रहते हैं। कितनी सुन्दर ऋतु होती है। चलो वहां बैठ कर बातें करें। (चलने की आवाज़)

वाचक— आराम से बैठ जाओ, हां, पूछो ·····

वाचिका— मै कह रही थी ·····देवी की मूर्ति के साथ कुछ मूर्तिया और दिखाई पड़ रही थीं न, वे कैसी मूर्तियां थी ?

वाचक— वे मूर्तियां थी, लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक और गणेश की।

वाचिका— हा गणेश का विशाल उदर और सूड देख कर तो पहचान गई थी, लक्ष्मी की मूर्ति भी पहचान गई, दोनो ओर से दो हाथी सूड़ो में कमल का फूल उठाए खड़े थे और वीणा देख कर विद्या और संगीत की देवी वीणावादिनी सरस्वती को भी सहज ही पहचान गई, पर वह एक मूर्ति और थी न, ········वह बड़ी मोहक-सी ·······।

वाचक— हा, वह कार्तिक की मूर्ति थी। ये देवताओ के सेनापति भी कहे जाते है। देवताओं ने इन्ही के नेतृत्व में युद्ध करके तारकासुर को मारा था।

वाचिका—पर दुर्गा पूजा से उनका क्या सम्बन्ध है ?

वाचक— इसके लिए तो पूरा पुराण सुनाना पडेगा। अच्छा सक्षेप में सुन लो। दुर्गा देवी हिमालय पर्वत की बेटी मानी जाती है, इन्ही को पार्वती भी कहते है। यहा माना जाता है कि नवरात्रि में तीन दिनो के लिए देवी अपने मायके आती है, उन्हीं के स्वागत सत्कार में यह पूजा और उत्सव मनाया जाता है।

वाचिका—अच्छा! · · और यह सरस्वती, लक्ष्मी ····· ··· ?

वाचक— हा, तो जब देवी अपने मायके आती है, तो उनके साथ-साथ उनकी दो बेटिया लक्ष्मी और सरस्वती तथा दोनो बेटे कार्तिक और गणेश भी ननिहाल आते है।

वाचिका—(हंसते हुए) अच्छा तो ये देवता लोग भी मनुष्यों की तरह ही व्यवहार करते है।

वाचक— (हंस कर) हा, कहते है वे भी मनुष्य ही तो थे!

वाचिका—अच्छा तो वे तीन ही दिन के लिए आती है।

वाचक— हां, यही माना जाता है। तीन दिन तक उनकी पूजा की जाती है। षष्ठी यानी छठ को देवी की आखें बनाई जाती है, जिने नेत्रदान कहते है। उस दिन देवी का बोधन किया जाता है।

वाचिका—बोधन क्या ?

वाचक— बोधन माने जगाना, कहते है वर्ष में कुछ दिनो के लिए सब देवी-देवता सो जाते है, इसलिए पूजा करने के पहले उन्हें जगाना जरूरी होता है।

वाचिका—अच्छा !

वाचक— फिर सप्तमी, अष्टमी और नवमी को धूम-धाम से पूजा की जाती है, महोत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर सभी अमीर-गरीब एक होकर खुशी मनाते है। देखा नही, कही कोई भेदभाव नही था। ··· · ····

वाचिका—इस तरह पूजा भी होती है, साथ ही मिलना-जुलना भी होता है।

वाचक— हा, आनन्द, उत्सव के साथ-साथ पूजा की जाती है। इसे हम सामाजिक उत्सव कहे तो अच्छा रहेगा। अगर कोई रईस आदमी अपने घर पर ही दुर्गा पूजा का उत्सव मनाता है, तो भी अकेला केवल अपने परिवार के साथ नही क्योकि उसमें रौनक नही होती। जब तक बहुत से लोग इकट्ठा होकर आनन्द न मनाएं, तब तक उसे पूजा का पूरा सम्मान नही मिलता।

वाचिका—अच्छा, बंगाल में यह दुर्गा पूजा कब से मनाई जा रही है।

वाचक— यो तो देवी पूजा आर्य-सभ्यता के पहले भी हमारे देश में चालू थी। पुराने मन्दिरों में देवी की अनेक मूर्तिया मिलती है, जिनमें दुर्गा, काली, भगवती आदि की मूर्तिया मिलती है, समय के साथ-साथ पूजा की रीति में कुछ फर्क जरूर आ गया है, पर देवी दुर्गा की पूजा बहुत पहले से होती आ रही है।

वाचिका—अच्छा तो आर्यो के पहले भी भारत में देवी-देवताओ की पूजा होती थी।

वाचक— हा, यह सब बडी मजेदार कहानी है। आर्य लोग जब भारत में आए तो यहां के निवासियो को वे अनार्य कहने लगे। अनार्यो ने उनकी सभ्यता आसानी से ग्रहण नहीं की। उनकी अपनी सभ्यता भी बड़ी ऊची थी। दोनो में लड़ाइया हुई। आखिर में आर्य विजयी हुए और अनार्य हार गए। आर्यों ने कुछ को दास बना लिया, कुछ मर मिटे और

कुछ जगलो-पहाड़ो में जा छिपे। आर्य सभ्यता विजयी हुई थी, पर वह हमेशा वैसी ही नही रही। धीरे-धीरे दोनो जातिया मिल गईं, इस तरह आर्यो और अनार्यों की दो सस्कृतियो और दो सभ्यताओ का मिलन हुआ तथा एक नई सभ्यता और सस्कृति का जन्म हुआ। अनार्यो की देवी पूजा भी इसी तरह सभी के यहां चल पडी।

वाचिका— यह तो वड़ी मजेदार वात है। विजित और विजयी दोनो न चाहते हुए भी अनजाने ही मिल गए।

वाचक— हा, कुछ हद तक वात ऐसी ही है।

[वाद्यध्वनि के साथ विसर्जन गीत और श्लोक]

या देवी सर्वभूतेषु मातृ रूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै । नमस्तस्यै । नमस्तस्यै नमो नम ।।

वाचिका— यह क्या, कितनी वड़ी भीड़ वढ़ी आ रही है, अरे यह तो कन्धो पर चौकिया उठाए है, उनमें मूर्तिया भी रखी है।

वाचक— हां आज दशमी है न, सवेरे अन्तिम पूजा और विदाई हो चुकी है, आज देवी का विसर्जन किया जाएगा।

वाचिका— विसर्जन कैसा ?

वाचक— कहते है तीन दिन वाद देवी अपने दलवल सहित फिर पति के घर लौट जाती है, तव समझा जाता है कि इन मूर्तियो में अव प्राण नही रहा। इसलिए उन्हे ले जाकर नदी में विसर्जित कर देते है।

वाचिका— (आश्चर्य से) अरे !

वाचक— हां, आओ चलें, वहा भी देखने लायक दृश्य होता है (भीड़ की आहट और आवाजें धीरे-धीरे तेज होने लगती है) आओ, चलो इस जुलूस के साथ ही चले चलते है।

वाचिका— चलिए।

[नदी के किनारे विसर्जन का ढोल, गीत, श्लोक]

या देवी सर्वभुतेषु क्षुधा रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै । नमस्तस्यै । नमस्तस्यै नमो नम ।।

वाचिका— तो इतनी सुन्दर-सुन्दर मूर्तिया पानी में डाल कर गला दी जाएंगी।

वाचक— हा, पूजा का यही नियम है।

वाचिका— भला इसके वनाने वालो को कितना परिश्रम करना पडता होगा।

वाचक— वंगाल की दुर्गा पूजा के वारे में कई मजेदार वातें सुनी जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि हर साल दुर्गा किसी न किसी सवारी पर आती हैं, कभी नाव पर, कभी गज पर कभी घोडे पर तो कभी डोली पर।

वाचिका— तो उससे क्या हुआ ?

वाचक— यो ही, पडित लोग कुछ देख सुन कर और गणना करके वताते है। कहते हैं कि दुर्गा डोली पर आती है तो महामारी फैलाती है, घोड़े पर आती है तो छत्र भग होता है यानी अराजकता फैल जाती है। गज पर आती है तो सवसे अच्छा होता है, वसुन्धरा शस्यश्यामला हो जाती है और नाव पर आने से वाढ आ जाती है। अगर दुर्गा जाते समय गज पर जाती है, तो भी वाढ़ आती है।

—दिल्ली से प्रसारित

लोकगीत और लोकनाटक

श्रीकृष्णदास

जब से मानव जाति का जन्म और विकास आरम्भ हुआ तभी से उसने हँसना, रोना, गाना, नाचना, आरम्भ कर दिया। हर्ष, उत्फुल्लता, करुणा, प्रेम, शृंगार और संयोग-वियोग, दुख-सुख, जय-पराजय, भय-त्रास आदि की अभिव्यक्ति उन नृत्यो-गीतों से होती थी। समाज के आदिम सगठन के विकास के साथ ही समवेत, सहगान और सामूहिक नृत्यों का विकास हुआ। बाद में रेखाओ और चित्रों का भी क्रम आरम्भ हुआ।

हमारे लोकगीत मूलतः अलिखित ही रहे। पीढ़िया उन्हें सीखती-गाती चली गई। यथा अवसर उनमें परिवर्तन-परिवर्द्धन और संशोधन भी होते रहे। ज्यो-ज्यो हमारी सभ्यता और सस्कृति का विकास होता गया, समाज के संगठन का ढाचा बदलता गया, आपसी सम्बन्धो का रूप निखरता गया और नए-नए मूल्यों-मान्यताओ का निर्माण होता गया, त्यो-त्यो इन गीतो का भी रूप और विषय बदलता गया। एक ओर भाषागत निखार आया दूसरी ओर विषय-वस्तुगत। साथ ही राग-रागिनियो का विकास हुआ, धुनों और उनका साथ देने वाले वाद्य-यंत्रो का जन्म हुआ। इन लोकगीतों का सीधा सम्बन्ध श्रम से रहा है। चाहे आदिम युग हो, चाहे कृषि सभ्यता का युग हो, चाहे उसके बाद का युग—मानव समाज को सदैव अपने भरण-पोषण के लिए श्रम करना पड़ा है। श्रम को सहज और सरल बनाने में इन गीतों का सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। फलतः सदैव ही श्रम सम्बन्धी गीतों की बहुलता रही है।

युग बदले। मन्वन्तर आए। गीतों का रूप बदला। रंग बदला, उनके विषय बदले, बदलते रहे। इन गीतो ने प्रत्येक युग में मानव समाज के पहरेदार के रूप में, उनके सहायक और मंत्रद्रष्टा के रूप में, उनके दुख-सुख के साथी के रूप में अपना कर्त्तव्य पूरा किया। इन गीतो ने सदैव उन्हें जीने के लिए, संघर्ष करने और विजयी होने के लिए, जीवन को अधिकाधिक सुन्दर, आकर्षक और सम्पन्न बनाने के लिए प्रेरणा दी। इन गीतो में उनकी संस्कृति का विकास हुआ, उनकी सभ्यता निखरी और उनके इतिहास का निर्माण हुआ। इन गीतो द्वारा उनके सामाजिक जीवन का कोश सचित हुआ।

हमारे प्राचीन और अति सुसंस्कृत देश के लोकाचारो और लोक विश्वासों, आस्थाओं और मान्यताओ, परम्पराओ और रूढियो, संस्कारों और रीतियो को जो अनश्वरता और अमरता मिली, जो जीवनी शक्ति प्राप्त हुई, उसका श्रेय इन लोकगीतों को ही है। तथाकथित उच्च साहित्य एव इतिहास में हम उच्च वर्ग और शासक श्रेणी के जीवन की कुछ झाकिया ही प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु जन-साधारण के जीवन का वर्णन उसमें नहीं मिलता। साधारण परन्तु बहुसंख्यक जनता के जीवन तथा उसके विवरण के सम्बन्ध में यह वाङमय मौन है। उसके लिए तो हमें इन लोकगीतों का ही सहारा लेना पड़ेगा। हमारा देश अति विशाल है। उसमें सैकड़ों बोलियां और उप-बोलियां हैं। इन सब बोलियो में असंख्य गीत हैं। अगणित गीत काल कवलित हो चुके हैं। जो बचे हैं, उनकी संख्या का सही अनुमान नही हो सकता। उनको संगृहीत करने की

प्रक्रिया चल रही है । परन्तु हमारे गीत जिस गति से लुप्त होते जा रहे हैं, उन्हें देखते हुए आवश्यक एवं अनिवार्य हो गया है कि संग्रह कार्य में तेजी लाई जाए । संग्रह के बाद ही उनका विवरण सहित अध्ययन-मूल्यांकन हो सकता है और आधुनिक जीवन को अधिक सुन्दर तथा सुसम्पन्न बनाने में उनका उपयोग हो सकता है ।

इस समय भी अगणित प्रकार के गीत प्राप्त हैं। बारहमासा और चौमासा के गीत, विभिन्न ऋतुओं के गीत; खेती, बोवाई, निराई-कटाई के गीत; कहारो, चमारो अहीरो, धोबियों तथा आदिम जातियो, परिगणित जातियों के गीत; जन्म-यज्ञोपवीत, विवाह आदि के संस्कार सम्बन्धी गीत; पूजा-मेला, तीर्थ तथा यात्रा सम्बन्धी गीत—इन सब में अकलुष काव्य-सौन्दर्य, अछूता सौष्ठव और रस परिपाक है। कारण कि ये गीत हृदय के सहज उच्छ्वास है, इनमें जन-साधारण के स्वप्न और आदर्श, उद्देश्य और कल्पना और महत्वाकाक्षाए मुखरित होती हैं । राग-विराग, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, उत्फुल्लता और करुणा के ये गीत सहज ही अपना जादू का-सा प्रभाव डालते है, क्योकि इनमें कृत्रिमता नही होती । जन मानस से उपजे ये गीत मन को मोह लेते हैं । गंगा की धारा की तरह तन-मन को ताज़ा और पवित्र कर देते हैं ।

लोकगीतों की भांति ही हमारी लोकनाट्य परम्परा भी अति प्राचीन है। कात्यायन श्रौत-सूत्र में एक लघु अभिनय का उदाहरण हमें मिल जाता है । सोमयाग इसका प्रमाण है । शुक्ल यजुर्वेद में शैलूष नाम के व्यावसायिक कलाकारों का वर्णन मिलता है । बृहदारण्यक उपनिषद् तथा उन उपनिषदों में नाटकीय कथोपकथन के उदाहरण मिलते हैं । पाणिनि ने शिलालिन् और कृशाश्व सम्बन्धी दो नाटकीय रूपो का वर्णन किया है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, जातक कथाओ, जैन साहित्य, पुराणो आदि में इन नाटको और कलाकारो की चर्चा मिलती है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वात्स्यायन के कामसूत्र में तो स्पष्ट रूप से व्यावसायिक नाटक मंडलियो का वर्णन आता है । कहते हैं कि अश्वघोष अयोध्या, वाराणसी और पाटलिपुत्र में अपने नाटको का अभिनय घूम-घूम कर किया करते थे । इस प्रकार हमारे प्राचीन युग में लोक नाटकों की लोकप्रियता के कुछ प्रमाण मिलते है । सम्राट् अशोक ने 'समज्जा' पर प्रतिबन्ध लगाया था । यह 'समज्जा' अथवा समाज अत्यन्त लोकप्रिय था । बाद में सस्कृत नाटको के विकास और राजदरबारों तथा उच्च वर्ग में उनके समादर के कारण लोकनाटकों के प्रमाण कम मिलते है ।

अपभ्रंश काल में रास नाटकों और लीलाओ की लोकप्रियता बढी और एक समय आया जबकि समस्त राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तक इन रासलीलाओ और रासनाटको का विस्तार हो गया । उधर बंगाल, असम और उड़ीसा में यात्रा-नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ । चैतन्य महाप्रभु के कारण इनकी लोकप्रियता बहुत अधिक बढ़ गई । सिद्ध साहित्य में 'स्वांग' भरने या स्वाग करने की चर्चा है । बाद में कबीर ने स्वांग-तमाशा की बात कही है । मिथिला के कीर्तनियां नाटको और 'बिदापत' से सभी लोग परिचित हैं । भोजपुरी क्षेत्र में अन्य नाट्य रूपो के साथ बिदेसिया की भी अत्यधिक ख्याति हो गई है । अवधी, ब्रज, खड़ी बोली तथा पूर्वी हिन्दी के क्षेत्रो में रास, नकल, स्वाग, नौटंकी, भाड आदि की परम्परा रही है । राजस्थानी में रास-झूमर, ढोला-मारू आदि; गुजराती में भवाई; मराठी में ललित और तमाशा; तेलुगू में भागवत मेला, बुर्रा-कथा, हरिकथा, विधि नाटकम् आदि की परम्परा रही है । इस प्रकार सारे देश में लोकनाट्य परम्परा के उदाहरण और प्रमाण मिलते है । इन लोकनाट्य रूपो को देख कर उनकी प्राचीन समृद्धि और लोकप्रियता का पता चलता है । उनमें देश और समाज का जीवन अभिव्यक्त हैं और उनमें वे सारे तत्त्व उभर कर सामने आते है, जिनसे हमारे सामाजिक जीवन का निर्माण होता है ।

—इलाहाबाद से प्रसारित

गीत

रघुवीर सहाय

ये और आया है एक हल्ला,
जो बच सकें तो कहो कि बचिए !
जो बच न पाए तो क्या करूं मैं ?
जो बच गए तो बहुत समझिए ।
सुकवि की मुश्किल को कौन समझे,
सुकवि की मुश्किल सुकवि की मुश्किल !
किसी ने उनसे नही कहा था
कि आइए आप काव्य रचिए !

(२)

लोगों ने मुझ से कहा, 'आओ मूर्त्तियां तोड़े ।'
और फिर पूछा, 'वहा रखने को
झोले में अपनी या अपने मालिकों की मूर्त्ति लाए हो ?'
यानी कि आप ही देखे कि जो श्रोता है
अपनी एक मूर्त्ति बनाता हूं और
ढहाता हूं, जिसको आप कहते है कि कविता की है—
—क्या मुझे दूसरों की मूर्त्तियां तोड़ने की फुरसत है ?
लोगो, ऐ लोगो ! मुझे जाने दो
क्योकि तुम या तो मुझे भीड़ में
गुल मचाते हुए चाहते हो
या कि फिर मंच पर
गुल मचाते हुए ।
यानी कि आप ही सोचें कि जो कवि नही है—
—कि लोग एक तरफ और मै एक तरफ
और मेरी यह जुरअत कि मै कहूं तुम सब मेरे हो
पूछिए, कौन हूं मै ?

(३)

मैंने कोशिश की थी कि तुम मुझे समझो
लेकिन जब मैंने कहा—

'मै तुम्हे प्यार करता हूं ।'
मेरे शब्द एक लहरियाता हुआ गीत बन कर,
उकड़ूं बैठे हजारों सुनने वालों पर भिनभिनाने लगे
इतना होता तो फिर गनीमत थी
लेकिन जव सुनके लोग झूम उट्ठे
तव मै वापस अपनी वीवी के चला आया
जिसको दरअसल मैं प्यार करता हूं
मगर जिसके लिए उन गीतो में से
एक भी नही लिक्खा जो कि
मैंने सुन्दरियों के लिए लिक्खे ह !

(४)

आज मै यहां पर कवूल करता हू
कि मै तुम्हारे साथ आ नहीं सकता
लोगो, ऐ लोगो ! मुझे जाने दो—
मै सिर्फ एक कवि हूं ।
मै तुम्हे रोटी नहीं दे सकता
मैं तुम्हे झण्डा नही दे सकता
मैं तुम्हें दो शब्द मे अपनी
वात वता सकता हूं
शर्त यह है कि तुम उनके
नारे न लगाने लगना—
जैसा दो शव्दों के साथ अक्सर
तुम किया करते हो ।

—इलाहावाद से प्रसारित



मानसिक क्रियाएं और व्यवहार

गिरीशचन्द्र माथुर

मनोविज्ञान की परिभाषा मानसिक क्रियाओं और अनुभवों का वैज्ञानिक अध्ययन ही मानी गई है। किन्तु मानसिक क्रियाएं क्या है और किन व्यवहारो और कार्यो को 'मानसिक' कहा जाए ····ऐसे प्रश्नो का साफ-साफ उत्तर पाने में एक दिक्कत तो यही है कि ये सब क्रियाए केवल मनोवैज्ञानिक के ही अध्ययन का विषय नही रह पाती, अपितु प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने ढग से मानसिक क्रियाओ को जानता है, और उनकी प्रकृति के बारे में निजी मत रखता है। एक कहावत के अनुसार हरेक मनुष्य अपने में दार्शनिक होता है, वैसे ही कहा जा सकता है कि कुछ मात्रा में तो हरेक मनुष्य मनोवैज्ञानिक भी है। एक सफल दुकानदार, एक मजिस्ट्रेट, कस्टम्स का इन्सपेक्टर, फुटपाथ का जादूगर ··· ये सभी लोग अपने ढंग से अपने को मनोवैज्ञानिक कह सकते हैं क्योकि ये लोग व्यक्तियो के मन की बात समझ लेते हैं और उनकी क्रियाओ का अन्दाजा लगा सकते हैं। स्वाभाविक है कि वास्तविक यानी पेशेवर मनोवैज्ञानिक या मानसिक क्रियाओ के बारे में जो मत है वह इन सासारिक मनोवैज्ञानिको के मतो से कितना भिन्न है। शायद यही भिन्नता हमारे प्रश्नो के उत्तरो को साफ-साफ समझने में बाधक होती है।

व्यक्ति के किन कार्यो को मानसिक क्रियाओ के नाम से पुकारा जाए? साधारण जन पहले ऐसी क्रियाओ को जैसे विभिन्न इद्रियानुभव, संवेदनाए, प्रत्यक्ष ज्ञान, स्मृति, कल्पना, विचार आदि को मानसिक क्रियाएं कहेंगे। साथ में वे ऐसी बातों को भी मानसिक क्रियाओ के अन्दर मानेंगे—जैसे उत्कंठा होना, इच्छा करना, सुख-दुख का अनुभव करना, प्रेम या घृणा करना, निश्चय ठानना आदि। साधारण जन इन सब क्रियाओ को मानसिक क्यो कहते है? शायद इसलिए कि हम इन क्रियाओ का अपनी आखो आदि से बाहरी निरीक्षण नही कर सकते। ये तो मानो व्यक्ति की निजी (प्राइवेट) सम्पत्ति है। और फिर ये क्रियाए इस प्रकार होती हैं कि उस समय शरीर के किसी अंग का परिवर्तन होता भी नही दीख पड़ता।

मनोवैज्ञानिक भी इन सब क्रियाओ को मानसिक कहता है और वे उसके अध्ययन का विषय है। मगर वह इन क्रियाओ को उन कारणो से मानसिक नही मानता जिन कारणो से साधारण जन मानते है। यही नही, वह अन्य बहुत-सी क्रियाओ का अध्ययन करता है, जिनका आन्व, कान आदि से बाहरी निरीक्षण भी किया जा सकता है, उदाहरण के तौर पर बोलना, लिखना, चलना, मुसकराना, तेवर चढाना, कूदना और दौड़ना। सच बात तो यह है कि किसी क्रिया को मानसिक नाम सिर्फ इसलिए नही दिया जा सकता, क्योकि वह व्यक्तिगत है या 'मन' नाम की किसी अमूर्त वस्तु के द्वारा की जाती है।

आइए मानसिक क्रियाओं के उदाहरणो पर फिर ध्यान दें ··· संवेदना का होना, प्रत्यक्षीकरण, याद करना, कल्पना करना, सोचना, चाहना, खुश या दुखी होना, प्रेम करना, घृणा करना, इरादा करना, बोलना, लिखना, चलना, मुसकराना, आन्खें लाल करना, कूदना और दौडना, इत्यादि इन सभी क्रियाओं में से प्रत्येक में हम इसका संकेत

पाते हैं कि व्यक्ति का, जिसमें ये सब क्रियाएं होती हैं, उसके वातावरण से, जिसक मौजूद रहने पर ही ये क्रियाए होती मालूम देती है, पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित है। या तो इन क्रियाओ में व्यक्ति पर वातावरण का प्रभाव पडता है, या इनमें व्यक्ति द्वारा वातावरण का इस्तेमाल होता है और या व्यक्ति की वातावरण से अभियोजना होती है। वातावरण का अर्थ है वे सभी वस्तुए और शक्तिया, जो व्यक्ति के शरीर और उसके चर्म से परे तो है, किन्तु उसकी ज्ञानेन्द्रियो को प्रभावित कर पाती हैं।

तो ये सब क्रियाए वर्तमान या वीते हुए वातावरण का प्रभाव है। जब हम याद करते हैं तो वीते हुए अनुभव ही। जब हम सोचते है या कल्पना करते है, तो उन्ही बातो के आधार पर जिनकी याद हममें बनी रहती है। जब हम इच्छा करते हैं या इरादा करते है तो आगे आने वाले लक्ष्य को प्राप्त करने या वातावरण की किसी वस्तु में परिवर्तन लाने के लिए। लिखना, बोलना, दौडना, कूदना आदि वातावरण की वस्तुओ को प्राप्त करने की इच्छा की पूर्ति के लिए होता है। तो हम कह सकते हैं कि उन सभी क्रियाओ के बारे में, जिनको हम मानसिक कहते है, यह बात पाई जाती है कि इन क्रियाओं का प्रयोजन व्यक्ति और उसके वातावरण में सम्बन्ध स्थापित करना है। इन क्रियाओ के द्वारा व्यक्ति अपने चारो ओर के ससार से प्रभावित होता है और वह भी वातावरण से अपनी इच्छाओ की पूर्ति करता है या कभी-कभी उससे अपनी रक्षा करता है और कभी इच्छानुसार उसमें परिवर्तन ला सकता है।

अब, एक और बात मानसिक क्रियाओ के बारे में विशेप ध्यान देने योग्य है। हमारा स्नायुमडल जिसका केन्द्र मस्तिष्क है, हमारी मानसिक क्रियाओ का आधार है। वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से बिना स्नायुमडल के मानसिक क्रियाओ का होना असभव ही है। स्नायुमडल की विशेपता यह है कि एक ओर तो वह ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करता है और दूसरी ओर प्राणी के विभिन्न अग-प्रत्यगो की क्रियाओ को सम्वन्धित किए रहता है। फल यह होता है कि व्यक्ति एक इकाई के रूप में क्रियाशील होता है। अग-प्रत्यगो की अनगिनत क्रियाए पारस्परिक सहयोग के साथ इकाई के रूप में वातावरण का सामना करती है। तो यह 'मन' जैसी अमूर्त वस्तु का प्रभाव नही, अपितु मस्तिप्क आदि स्नायुमडल के भागो की एकीकरण क्रिया का प्रभाव है कि व्यक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल क्रियाओ को इकाई के रूप में करने में समर्थ है और इन क्रियाओ को हम मानसिक क्रियाए कहेंगे। मानसिक क्रियाए दूसरी क्रियाओ से इस-लिए भिन्न हैं कि इन क्रियाओ के द्वारा व्यक्ति एक इकाई के रूप में बनता है और दूसरे इन क्रियाओ का संकेत हमेशा व्यक्ति और वातावरण के सम्बन्ध की ओर रहता है।

—पटना से प्रसारित



मैके की दाई

ज़ुहरा राय

आज बरात रुखसत होने वाली थी। घर की रौनक में तो कल ही से फीकापन आ गया था। न वह शोरो-गुल, न जोशो-खरोश, न वह क़हक़हों की आवाज़ें, न ढोलक की गूंज और न टोने-सुहाग। घर में सब ही के चेहरे उदास थे। दुलहन का कमरा घर की बूढ़ियो-लड़कियो और छोटे बच्चो से खचाखच भरा हुआ था और रुखसती के लिए दुलहन को संवारा जा रहा था। कोई बालों म फूल सजा रही थी, कोई हाथों की मेंहदी छुड़ा रही थी, जो रात को ही लगा दी गई थी और तीसरी सहेली बक्स का जायज़ा ले रही थी कि कौन-सी साड़ी इस वक्त ठीक रहेगी।

लड़की की मां परेशान इधर-उधर भागती-रोती फिर रही थी और हलीमा दाई की पुकार मची थी। लड़की के साथ उसी को जाना था। दाइयो में सबसे पुरानी हलीमा ही थी। उसे अच्छी तरह मालूम था कि समधियाने जाकर किस तरह का बरताव करना चाहिए, जिससे लड़की की ग़लतियो पर पर्दा पड़ता रहे और लड़की के घर वालो की किसी तरह की बेइज़्ज़ती न हो। मौके की नज़ाकत वह खूब समझती थी। किस बात का क्या जवाब देना चाहिए और किस वक्त क्या हरकत करनी चाहिए, लड़की को किस वक्त रोना चाहिए और अगर रोना न आ रहा हो तो रोने का अभिनय करने के लिए क्या नुस्खा इस्तेमाल करना चाहिए, किन दवाइयो के इस्तेमाल से आंसू जारी हो जाते हैं, ससुराल वालो के सामने जब वहू चले तो घूघट कितना लम्बा हो, जो लड़की की सुन्दरता का प्रभाव भी पडता रहे और लड़की शर्मीली भी समझी जाए। जब नहाने-धोने के लिए दुलहन बाहर अंगनाई से होती हुई गुसलखाने में जाए तो चाल की रफ्तार आधे घण्टे में पांच गज़ से ज्यादा न हो। लोग यह न समझें कि दुलहन बडी तेज़-तर्रार और बेशर्म है। और फिर कहीं सास-ननद के किसी सवाल का जवाब गलती से खुद लडकी ने दे दिया, तब तो बाप-भाई की नाक कट जाएगी और हलीमा समधियाने में मुह दिखाने के लायक न रहेगी। हलीमा साठ साल की पुरानी दाई थी। सारी रीत-रस्मो से वाकिफ़। यहा तक कि जब नौशे से दुलहन पहली बार बोले तो उसे क्या शब्द इस्तेमाल करना चाहिए। इन नए ज़माने की लड़कियों का क्या ठिकाना! दूल्हे से मिल कर एकदम पहली बार कहीं सिगरेट ही पेश कर दें तो बना-बनाया काम हमेशा के लिए बिगड़ जाएगा। दूल्हा हमेशा आग-बबूला रहेगा और बन्ने-बन्नी के दर्मियान हमेशा नाइत्तफ़ाकी रहेगी। दूल्हे का मिजाज़ हमेशा आग रहेगा और दुलहन की ज़िन्दगी अपनी इस नातजुर्बेकारी की वजह से नष्ट हो जाएगी। इसलिए दुलहन को चुपके से यह बताने का ज़िम्मा उसी का था कि जब दूल्हा एक घण्टे तक लगातार खुशामद कर चुके और उसके दिल में शौको-इन्तज़ार का तूफान उरूज पर हो तो कोई भी दिलचस्प बात शुरू करने से पहले सुराही की तरफ़, जो वहां रख दी जाएगी, इशारा करके कहे—पानी! ज़ाहिर है कि दूल्हा फ़ौरन हुक्म की तामील करेगा और जब उसके हाथ से एक घूट ठण्डा पानी पी ले तो रूमाल के कोने में बंधे दाल के बराबर मिश्री के टुकड़े को निकाल कर दूल्हे के सामने, बजाए

सिगरेट के, पेश करे और इस बात का ध्यान रखे कि दूल्हा उसे अवश्य खा ले। इस अमल से दूल्हा हमेशा दुलहन के सामने पानी-पानी और मिश्री-मिश्री रहेगा।

इन्ही सब अहम कार्रवाइयो के अंजाम पाने की फिक्र लडकी की मां को बेहद परेशान किए हुए थी। अगर हलीमा न गई तो लड़की की नैया कैसे पार लगेगी? लड़की माना हज़ार सयानी है, एम० ए० पास है, बातचीत में होशियार है, लेकिन अपनी पुरानी रीत-रस्में पूरी न की गई, तो दिल में हमेशा वहम बना रहेगा और खुदा जाने दूल्हे पर इस बद-शगुनी का क्या असर हो और दुलहन से उसका वर्ताव कैसा रहे।

वह जोर से चिल्लाती—अरी कमरन, जरा देखना हलीमा आ गई या नही। रुखसती का वक्त करीब चला आ रहा है और उसका पता ही नहीं।

कमरन दौडी हुई आई और फिर हांफती-हांफती बोली—बीबी जी, वह अपना बक्सा ठीक कर रही है। कह रही है अभी आती है। लीजिए, वह आ गई।

—हलीमा बुआ, तुम्हारा सामान ठीक हो गया। वक्त कम रह गया है।

—जी हां, बीबी! ठीक हो गया। मैंने कहा २–४ जोड़े कपड़े रख लू। आप समझें हर वक्त दुलहन के पास बैठना होगा और समधियाने का मामला ठहरा। कोई कह बैठे दाई के पास कपड़े नही है, तो घर की आबरू चली जाएगी। मुहल्ले से एक जोडा बकरीदन से मांग लाई हू, एक धोती सलोने की मा से। आप समझें एक तो आप ही ने दी है। समधियाने का मामला ठहरा। दुलहन के पास बैठना होगा।

और वह उल्टी सांसें लेती हुई ममत्वपूर्ण भाव से मैली दरी में रस्सी से बंधे हुए बिस्तर को उठा कर कमरन से बोली—अरी मेरी पेटी लेती आना।

बेगम ने इशारे से हलीमा को बुलाया और कानाफूसी के स्वर में बोली—अरे बुआ सब चीजें रख ली है न? तुम जानो अभी बच्चा है, क्या कर बैठे। उसे कुछ अकल थोड़े ही है।

—हा, हा, बीबी, आप फिक्र न करो। मैंने सब कुछ ज़रूरी चीज़ें धर ली हैं बक्से में। भला समधियाने का मामला ठहरा, किससे मांगने जाऊंगी?

—हां भई, इसीलिए तो तुम्हें जहा भी रहो बुलवाती हू। क्या-क्या चीज़ें रख ली है, वैसे तुम खुद समझदार हो।

—बीबी, आप समझें, एक रूमाल मे मिश्री बाध ली है। एक छोटी-सी गिलसिया और छोटी सुराही। बड़ी की जगह नही थी।

और फिर धीरे से फुसफुसा कर कहा—एक टुकडा प्याज़ का पेटी में डाल लिया है। क्या पता क्या मौका पडे। आप समझें समधियाने का मामला ठहरा। वहा किससे मागने जाऊंगी?

—बस, बस बुआ, तुम तो खुद ही समझदार हो। इसीलिए तो तुम्हारी पुकार चारो तरफ रहती है। जिसकी लड़की ब्याही गई, बस तुम्ही बुलाई जाती हो। वैसे दाइया तो सभी है।

—जीती रहो बीबी, जो इतना खयाल रखती हो। आप लोगो की जूती मे पल कर बुड्ढी हो गई और यही काम करती हूं। चाहे जैसी चचल लडकी हो, पर आज तक किसी को भी पता नही चला।

—हां, हा बुआ, बस यही खयाल रखना घर की नाम-हँसाई न हो और बिटिया की किसी तरह की आलोचना का मौका न आए। अभी बच्चा है, क्या जाने ससुराल किस चिड़िया का नाम है। पेट भर खाना न देना। चार रोटियो मे से तीन जरूर वापस चली जाए। और लो, ये पैसे अपने पास रखो, और यह बिस्कुट का डिब्बा बक्से में डाल लो। फल वगैरह लाकर खिलाना पर किसी को पता न चले।

—नहीं, नहीं बीबी, आप फिक्र न करें। कोई शिकायत का मौका न आने दूंगी।

—हां, मुझे इत्मीनान है, तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है।

—बीबी जी, सब अल्ला मालिक है।

दूसरे दिन जब दुलहन सोकर उठी तो हलीमा ने चप्पलें लाकर पैर के पास रखी और हाथ पकड कर ऐसे उठाया जैसे हफ्तो की बीमार हो। बोली—बेटा देखो, गुसलखाने जाते वक्त आंखें नीची रखना। बस, पैर को तरफ देखना। जितनी धीमी चाल मेरी हो, बस उतनी रहे। न कम, न ज्यादा। रास्ते में दुलहन की चाल कुछ तेज हो गई, तो फिर उसने बाहें दबाई। दुलहन अन्दर मुसकराई और चाल धीमी कर ली। जब तक दुलहन बाहर न निकली, हलीमा दरवाजे पर पहरा देती रही। दुलहन अपने पैरो पर नज़र जमाए अपने कमरे में आ गई। हलीमा ने बाहर से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

दुलहन ने अन्दर घुसते ही एक झटके से पल्ले को पीछे फेंका और मटक कर शीशे के सामने आ खड़ी हुई और अपने कटे हुए बालो के घूघर सवारने लगी। उसका चेहरा एक नई खुशी, एक हसीन चमक और उत्साह से तमतमा रहा था और वह रोज़ से कही ज्यादा सुन्दर नजर आ रही थी। आज उसकी मुसकराहट रोके नही रुक रही थी और खुशी अन्दर से फूटी पड रही थी। हलीमा दरवाजे पर खड़ी थी। ससुराल की दाई बहू का नाश्ता लेकर आई।

—कहो बुआ, दुलहन खुश तो है ससुराल में? अच्छी तरह सोई? लो, यह दुलहन का नाश्ता!

हलीमा—अरे खुश क्या है। जब से उठी है, रो-रो कर आफत कर रखी है। आखें सूज-सूज कर लटक आई है। इतनी सरम है कि सिर का पल्ला अकेले कमरे में भी नीचे नही गिरता। बडी सरमीली बहू है। नही तो आजकल की लड़कियो को तुम जानती हो। असल में नई जगह, नया घर, नए लोग। कौन लड़की होगी जो न घबराएगी। धीरे-धीरे हिल-मिल जाएगी, फिर तुम्ही लोग सब कुछ हो जाओगे। अभी तो मा-बाप, भाई-बहनो के लिए ऐसी तड़प-तड़प कर रो रही है कि मेरा तो देख कर कलेजा फटा जा रहा है।·····और वह बिसूरने लगी।

दाई ने भी बिसूरते हुए कहा—हा बुआ, लडकी को विदाई पर गैरो की आख गीली हो जाती है।

यह कह कर दाई ने चाहा कि अन्दर जाकर बहू की खैर-कुशल पूछे, मगर हलीमा झपट कर दरवाजे पर आ गई और बोली—बिटिया के सिर में ज़ोर का दर्द हो रहा था। रोते-रोते बुरी हालत हो गई थी, मैंने अभी ज़रा सिर दवाया तो आंख लग गई है। थोडी देर में मुलाकात कर लेना।

ये बातें इतनी ज़ोर से कही गईं कि ज़हीना ने सुन ली और जल्दी से चादर तान कर पलंग पर लेट गई और मुह ढक लिया और अन्दर-अन्दर खिलखिला कर हँसने लगी।

दाई ने कहा—अच्छा, अभी बड़ी बेगम से इत्तिला कर दू।

बड़ी बेगम हाल सुन कर मुसकराई और बोली—हां भई, क्यो नही। नया घर, नए लोग। धीरे-धीरे सबको पहचान लेगी। अभी आती हू।

सास के आने की खबर सुन कर हलीमा झट अन्दर घुसी और आंचल में बंधे हुए प्याज के टुकड़े को मसल कर उंगली में ज़रा-सा रस लगा कर दुलहन से कहा—बिटिया, बस ज़रा-सा। बस,बस, बस, बस! तुम्हारी सास आ रही है। नाक को ज़ोर से मल लेना।

ज़हीना ने नाक लाल कर ली और घूघट निकाल कर बैठ गई। आखें गीली हो रही थीं, नाश्ता लौटा दिया गया था, मगर आधे टिन बिस्कुटो की शामत आई थी। सास ने सर पर हाथ फेरा, मुंह खोल कर देखा और मुसकरा कर बोली—बेटी, यह अब तुम्हारा घर है। रोती क्यो

हो ? क्या मैं तुम्हारी मा नही हूं ? तुम्हें मेरी जान की कसम । भई, रोओगी तो मुझसे बुरा कोई नही होगा । बेटी, तुमने नाश्ता-वाश्ता कर लिया ?

हलीमा ने आचल से आंखे रगड़ते हुए कहा—बेगम साहब, बस एक प्याली चाय पी है । खाना-पीना सब छोड़ रखा है और रो-रो कर बुरा हाल बनाया है । असल म छोटी बहन से बहुत प्यार है । उसी को बार-बार याद करके कुढ रही है, और रो-रो कर आखें लाल कर ली है । सिर में दर्द हो रहा है ।

बेगम बोली—नही बेटी, ऐसा नही करते । शमीमा भी तो तुम्हारी बहन है ।

दुलहन के दात घूघट के अन्दर चमक रहे थे । बेगम कहती हुई उठ गईं—अच्छा, अभी सिर के दर्द की टिकिया भेजती हू । ठण्डे पानी के साथ खिला दो ।

हलीमा ने सर-दर्द की टिकिया बक्स में डाल दी । दुलहन को आए चौथा दिन था । शाम को भाई विदाई के लिए आ गया था और लडकी मैके चली गई । हलीमा दाइयो में बैठी बडबडा रही थी—ऐ बुआ, आजकल की लडकिया ऐसी बेसरम होवे है कि कहने की बात नही । खुदा बचाए । आख में हया का नाम नही । इतना समझा दिया था, मगर सारी रात बातो और हँसी की आवाज़ आती रही । चार रोज़ में दस रुपये के तो फल और बिस्कुट खत्म हो गए, और हर वक्त यही कि हाय बुआ, भूख ! हाय बुआ—भूख ! देखो, बीबी तक बात न पहुचे वरना लडकी को तो कोई कुछ न कहेगा, बस मेरी ही शामत आ जाएगी । बड़े-बड़ो की बात है । मुझे क्या, मेरे तो पच्चीस बन गए ।

—इलाहाबाद से प्रसारित

फाल्गुन

नरेश मेहता

माघ भूले वन हमारे
जब पधारे
नाथ !
हम खड़े थे वन किनारे,
साथ थी फगुआ तुम्हारे,
सभी कण्ठों ने तुम्हारे
जय उचारे !
गाछकुल हरसा,
नरसुलों के फूल पर सहसा
रंग तो बरसा—
हलद सरसों संग
सुनहला कास भी सरसा—
पर
हम न भीगे रंग में या गंध में,
क्या न हम तुमको पुकारे ?
किन्तु
तुमको तो लगे
कचनार टेसू ही अधिक प्यारे !
माघ भूले वन हमारे
जब पधारे
नाथ !

—इलाहाबाद से प्रसारित

पिंजड़े का पक्षी : मैना

कु० सुरेश सिंह

हमारे देश में पिंजड़े के पक्षियो में तोता और मैना का नाम सबसे आगे है। वैसे तो हरेवा, पवई, दामा, दंहगल, श्यामा, कस्तूरा पिद्दा, मृगराज और चंडूला आदि बहुत से पक्षी, अपनी मीठी बोली के कारण और तीतर, बटेर, लवा और बुलबुल आदि अपने लड़ने की आदत की वजह से शौकीनों के पिंजड़ो में कैद रहते है, लेकिन इन सबमें तोता और मैना इतने प्रसिद्ध हैं कि इनके बारे में हम सभी थोडी-बहुत जानकारी तो रखते ही हैं।

तोते को उसकी मीठी बोली के लिए नहीं, बल्कि अपनी बोली की हू-बहू नकल करने के कारण मनुष्य पिंजड़े का बंदी बनाता है, लेकिन मैना को इस कारण आजीवन बंदिनी बनना पडता है कि इसकी बोली में प्रकृति ने एक प्रकार की अद्भुत मिठास घोल दी है। यह तोते की तरह आदमियों की बोली की ज्यादा नकल तो नही कर पाती, लेकिन सिखाए जाने पर, नबी जी, भेजो ! जोगी, उठो ! आदि की नकल करने लगती है।

इसके पहले कि हम अपनी इस प्रसिद्ध चिड़िया की बोली आदि के बारे में कुछ जानें, हमें इसके रंग-रूप, रहन-सहन, स्वभाव, निवास और इसके निकट सम्बन्धियो के बारे में भी थोडा-बहुत जान लेना आवश्यक है । मैना चमकीले काले रंग की, कौए से कुछ छोटे कद की पहाडी चिड़िया है, जिसकी तीन जातियां हमारे देश में पाई जाती हैं। पहली जाति की मैना नैपाल-असम तक के पहाड़ी प्रदेशो में, दूसरी जाति की मध्य प्रदेश की पहाड़ियो में, और तीसरी जाति की पश्चिमी घाट की पर्वत माला में मिलती है, जहां इन्हें २०-२५ के छोटे गरोहो में देखना कठिन नही होता। इसकी चोच और टांगें पीली होती है और इसकी आंख के पीछे से गुद्दी तक नारंगी के रंग का मांस का कुछ भाग उभरा-उभरा-सा रहता है, जिससे इन्हें पहचानने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। इसका मुख्य भोजन फल-फूल है। ये पहाड़ी मैना कहलाती हैं और इन्हें लखनऊ, कलकत्ता और वाराणसी आदि बड़े शहरो के चिड़िया बाजारो में १०-१५ से ५०-६० रुपये तक खरीदा जा सकता है। सीखी हुई मैनाओ के दाम तो ५-७ सौ रुपये तक लग जाते हैं ।

इस पहाडी मैना के अलावा चार तरह की देशी मैनाए भी हमारे प्रदेश के मैदानो में काफी संख्या में दिखाई पड़ती है, जिनमें किलहंटा सबसे प्रसिद्ध है । इसे गांव और बस्तियो के भीतर तक देखना मुश्किल नही। और हम सब इसे रोज ही अपने आस-पास जमीन पर फुदकते हुए देखते रहते हैं, लेकिन इसकी बोली बहुत कर्कश होने के कारण इसे कोई नही पालता ।

दूसरी देशी मैना या 'चही', 'दरिया मैना' कहलाती है क्योंकि यह जलाशयो के आस-पास रहना ज्यादा पसन्द करती है। यह भी पाली नही जाती, क्योंकि इसकी बोली भी मीठी नही होती।

तीसरी देशी मैना का नाम 'अबलखा' है, जो काले और सफेद रंग की चिड़िया है जैसा इसके अबलखा नाम से स्पष्ट है। इसकी बोली जरूर मीठी होती है और सिखाए जाने पर यह सुरीली बोली भी बोलती है ।

चौथी और आखीरी 'पावी' या 'पवई' कहलाती है, जो सिखाए जाने पर बहुत ही मीठी और सुरीली बोली बोलती है। यह कत्थई रग की चिड़िया है, जो कद में किलहटा और 'चही' से कुछ छोटी होती है। इसके सर पर चोटी नुमा कुछ काले पर रहते है, जिससे इसे पहचानने में भूल नहीं हो सकती। पवई वास्तव में गरीबो की मैना है क्योकि असली पहाड़ी मैना, जैसा ऊपर बता आया हू, बड़ी कीमती मिलती है और उसे पालना सब लोगों के सामर्थ्य की बात नही है। इसी कारण आज भी हमारे देहातो में पवई के शौकीन अब भी काफी संख्या में मिल जाते हैं। इसे सिखाने का करीब-करीब वही तरीका है, जो मैना के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

अब मैं अपनी प्यारी मैना की ओर आता हू, जिसने काला-कलूटा रग रूप पाकर भी अपनी सुरीली बोली के कारण हमारे साहित्य में ही नही वरन् हमारे घरो में भी अपना एक विशेष स्थान बना लिया है।

मैना, कोयल-पपीहे की तरह अपने आप आनन्द के उद्रेक से ज़रूर बोलती है, लेकिन उसकी जिस बोली से हम सब परिचित हैं, उसे वह सिखाए जाने पर ही हमें सुनाती है। इसके लिए काफी परिश्रम करना पड़ता है और ऐसा नही होता कि हम बाज़ार से एक मैना खरीद लावें और वह पिजडे में रख दिए जाने पर अपने आप मीठी बोली बोलने लगे।

होता यह है कि मैना या पवई को सिखाने के लिए पहले उसे एक बास की तीलियो के पिंजड़े में पाल लिया जाता है। उसे खाने के लिए भुने चने के बेसन को पानी या घी में सान कर दिया जाता है, साथ ही साथ कीड़े-मकोड़े से भी उसका पेट भरना पड़ता है। कुछ समय बाद जब वह उसमें रहने की आदी हो जाती है, तो उसकी शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ होती है। इसके लिए सिखाने वाला पिंजड़े को एक कपड़े से ढक देता है और अपनी जबान के नीचे केले के पत्ते का छोटा-सा नरम टुकड़ा रख कर एक प्रकार की सीटी-सी बजाता है, जिसे 'जफील लगाना' कहते है। उसे सुनते-सुनते कुछ दिनो बाद मैना उसी तरह बोलने लगती है। और इस प्रकार थोड़े समय बाद वह बिना जफील के ही प्रसन्न होने पर बड़े मीठे स्वर में सीटी नुमा मीठा स्वर तथा नबी जी आदि की नकल अपने मालिकों को सुनाने लगती है। इतना हो जाने पर पिंजड़े को ढकने की भी ज़रूरत नही रह जाती और हमारी प्यारी मैना समय-समय पर अपनी मीठी बोली से हमारे घर को गुजाती रहती है।

—लखनऊ से प्रसारित



बांहों के घेरे : गर्दन की मजबूरियां

गगा प्रसाद मिश्र

चार वर्ष बाद अमेरिका से स्वदेश लौटने के समय आलोक ने सोचा था कि वह भैया-भाभी को चौंका देगा। अपनी ट्रेनिंग समाप्त होने पर उसने वहीं एक बहुत अच्छी नौकरी कर ली थी। सोचा था, जिन भैया-भाभी ने अपनी जरूरतों की हत्या करके उसके विदेश जाने के लिए रुपया जुटाया था, उनके चरणों में वह एक अच्छी रकम रख देगा, ताकि वे उस कर्ज से उबर जाएगे जो हर समय उनके मन को सालता होगा। अपने इस प्रयास में जहा आस-पास दौलत का ताडव नृत्य प्रतिक्षण दिखलाई देता रहता था, उसने कभी कोई फिजूलखर्ची न की थी। भाभी की पैबन्द लगी धोती, भैया का कोहनियों पर से जवाब दे गया कोट, और उनकी एकलौती बेटी स्नेह की किसी भी चीज के लिए कहने पर मा-बाप से झिडकिया खाने के कारण डबडबाई हुई आखें हमेशा उसके सामने घूमती रहती थी। अपने जाने के साल भर बाद ही उसने भैया से रुपये मगवाना बन्द कर दिया था। अपने खर्च के लिए वह वहीं कमा लेता था। ट्रेनिग के तीन साल समाप्त हो जाने पर जब भैया-भाभी के आग्रह पूर्ण पत्र उसके शीघ्र ही लौटने के वास्ते मिलने लगे, तो उसने उन्हें यह नहीं लिखा कि उसने नौकरी कर ली है। ट्रेनिग का पीरियड बढ गया है, प्रैक्टिकल ट्रेनिंग हो रही है, अप्रेन्टिस के रूप में काम कर रहा हू, आदि लिख-लिख कर न आने की कैफियत देता रहा। यहा तक कि भैया-भाभी नाराज हो गए, उन्होंने आने के लिए लिखना ही छोड़ दिया। राजी-खुशी के खत भी जब-तब ही आने लगे। आलोक उन बातों को सोच-सोच कर मन ही मन हँसने लगा, जो उसके बारे में कल्पना की जा रही होगी· · · 'अब आलोक को क्या लेना है, हमसे ? क्यो वह हमारी सुनने लगा ! किसी अमेरिकन लड़की से शादी कर ली होगी ! अब वह क्या लौट कर आएगा ? विदेश से चलते समय कितना प्रेम उसके मन में भैया और भाभी के प्रति और उसे चाहे बेटी कहा जाए या भतीजी, स्नेह के प्रति उमड रहा था। जब उसके विदेश जाने की तैयारी हो रही थी कितनी तेजी से बढ रही थी स्नेह, जिसे वह प्यार से 'नेहा' कहा करता था ! और इधर भैया-भाभी के सामने उसके विवाह की समस्या प्रश्न वाचक चिह्न के रूप में खड़ी होती जा रही थी। परन्तु वे उसकी ओर से आंखें फेर कर अपने सम्पूर्ण साधन आलोक का पथ प्रशस्त करने के लिए लगाए जा रहे थे।

इस बीच कितनी-कितनी बातें हो गई थीं। नेहा का विवाह हो गया था। भैया ने लिखा था, अब मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि उसे इंटरमीडिएट पढाता, फिर बी० ए० कराता, इसलिए विवाह हो कर देना ठीक समझा। ज्यादा दहेज न दे पाने के कारण कोई सम्पन्न घर तो न मिल सका, हा सवा सौ रुपये पाने वाले एक लड़के से, जो क्लर्की कर रहा था, सम्बन्ध कर दिया था। पत्र में यह पढ़कर आलोक कितना दुखी हुआ था ! नाजो से पली हुई नेहा को इतने मामूली वर से ब्याह देना कैसा अन्याय था ! और यह सब करने के लिए भैया-भाभी उसी के कारण विवश हुए थे। वह अपने आपको इसके लिए कभी क्षमा न करेगा। वह अपनी सारी शक्ति नेहा के जीवन पर अभाव की छाया पड़ने से रोकने में लगा देगा। उसने दृढ निश्चय किया था, वह विवाह

नही करेगा, नेहा को सब तरह सुखी बना कर भैया-भाभी के ऋण के बोझ को कुछ हल्का करने की कोशिश करेगा ।

दो साल पहले भाभी ने लिखा था—आलोक तुम नाना हो गए, तुम्हें लडकिया बहुत प्यारी हैं न, इसलिए भगवान ने तुम्हे नातिन दी है, नाती नही। लडकी तुम्हारी नेहा का बिलकुल प्रतिरूप है ।

आलोक ने सोचा था वह इस लड़की को बहुत ठाठ से रखेगा। ऊची से ऊची शिक्षा देगा। उसका सम्बन्ध ऐसा करेगा कि भैया-भाभी और नेहा देखते ही रह जाएगे। नेहा के जीवन को वह हँसी-खुशी और सम्पन्नता के अथाह समुद्र से प्लावित कर देना चाहता था। अमेरिका से ले कर अपने इस छोटे कस्बे तक आते-आते रास्ते भर वह यही सब सोचता रहा था।

\+ \+ \+

मकान के दरवाज़े पर तागा रुका तो पडोस वाले भौचक्के हो गए—अचानक कैसे आ गए भया ? खैरियत तो है ? चिट्ठी तार कुछ नही भेजा ?

मन ही मन मुसकराते हुए आलोक ने जवाब दिया—भेजा तो था तार, क्या यहा आया नही ? तभी मैं कहू कोई स्टेशन क्यो नही आया ।

और उसने छलकते हुए उत्साह से आवाज़ दी—भैया !

दरवाजा खुल गया। सामने बडे भैया खडे थे · · · चेहरा बिलकुल सफेद था, जैसे जिन्दगी का सारा रस निचुड गया हो। आज पहली बार उन्होने उसे दौड कर अपनी बाहो में नही समेटा। क्या हो गया बडे भैया को ? सोचते-सोचते आलोक उनके चरणो पर गिर पड़ा। रुधे गले से उन्होने आवाज़ दी—रानी, आलोक आया है—फिर उसे उठा कर खड़ा कर दिया।

आलोक मन में सोच रहा था, भाभी से कहेगा —अभी बुलवाओ नेहा को और उस नातिन को भी, उन लोगो को देखे बिना वह एक क्षण नही रह सकता।

इतने में भाभी बिलखती हुई आ गई —तुम्हारी नेहा को हमने गंवा दिया भैया, वह हम से रूठ गई !

भाभी ने अपनी बांहो में उसे भीच लिया।

क्या ? नेहा अब दुनिया में नही ? मेरी उन्नति के लिए उसकी बलि दे दी गई ? उस अभावग्रस्त, आसू-धुले मुह पर हँसी की बिजली नही कौध सकेगी ! उसकी आखो के आगे अधेरा छा गया, भाभी की बाहो से सरक कर वह धम्म से जमीन पर गिर पड़ा। भाभी घबड़ा गई। भैया-भाभी ने उसे संभाला, फिर उठा कर बिठाया। कुछ देर तीनों खामोश रहे फिर भाभी धीरे-धीरे बोली—धीरज रखो आलोक ! हम लोग यही सोच-सोच कर परेशान थे कि इस खबर को सुन कर तुम्हारी दशा क्या होगी ! हम लोग तो कहने को उसके मा-बाप थे, वह तो तुम्ही को अपना सब कुछ मानती थी। चाचा-चाचा रटते ही उसके प्राण गए। तुम्हें वह कितनी दुलारी थी, यह क्या हमें मालूम नही है भैया ! मैं अपने आपको तुम्हारे सामने अपराधिनी पाती हूं, भैया ! —कह कर भाभी फिर रो पडी—गैलपिग टी० बी० के नाम से मौत उसे हमसे छीनने आई। अपनी आखों के सामने लड़की को मौत हमसे छीनती रही और हम लोग कुछ न कर पाए ! कितनी बड़ी मजबूरी थी वह ! अपने भरसक इलाज भी किया, यों तो कहने को कुछ न कुछ रह ही जाता है। ऐसा होता तो पैसे वालो के यहा कोई मरता तो नही गरीबो के घर सूने पड़े होते। सब तकदीर की बात है, भैया !

भाभी रोती जाती और आलोक से धीरज रखने को कहती जाती। आलोक बैठा हुआ भाभी का बिसूरना सुनता जाता था, परन्तु उसके मस्तिष्क के आगे नेहा घूम रही थी।

वही नन्हीं-सी नेहा जो चाहे कितना ही रोती हो, आलोक के उठाते ही चुप हो जाती। जिसने अभी-अभी बैठना सीखा था, जिसे पढ़ते समय वह अपने पास बैठा लिया करता था और जो गूंगां करते हुए कभी उसकी कापी फाड देती और कभी स्याही गिरा कर अपने मुंह पर पोत लेती। आलोक उसकी करतूतो पर हंसते-हंसते लोट जाता। कैसी पाजी है? शहर में साल भर पढ़ कर आलोक गर्मी की छुट्टी में आया था तो तीन वरस की पगली नेहा ने कैसे उसकी गर्दन में बांहें डाल कर उसे प्यार किया था। भाभी हंस कर बोली—भूली थोड़े ही है ज़रा भी! इसी को कहते हैं अपना खून।

आज वह बांहों का वन्धन, खून का नाता तोड़ कर कैसे नेहा चली गई! इतनी निर्मोही कैसे बन गई थी। उस दिन नेहा कितनी देर उसकी गोद से न उतरी थी, कैसे-कैसे उसने उसे दुलराया था। यही क्रम वरावर चलता था। जव छुट्टियो में आलोक घर आ जाता तो सूखी नेहा जैसे हरी हो जाती। अम्मा-वावू की शिकायतें उससे करती और आलोक उसे वहलाता—वस वेटा, ज़रा मेरी नौकरी हो जाने दो तो हम लोग अलग एक मकान ले लेंगे। उसमें वस हम दोनों रहेंगे और कोई नही आ सकेगा!

भाभी नेहा को चिढाती—मैं तो आऊंगी अपने देवर के मकान में, देखूंगी कैसे मुझे कौन रोकता है?

और अगर नेहा किसी विशेष कारण से अम्मा से नाराज होती तो विगड़ कर कहती—चाचा, देखो अम्मा को!

आलोक कहता—अरे वकने भी दे, वेटा! तुझको एक वड़ा-सा डंडा दे देंगे, वही लेकर तू दरवाज़े पर खडी रहना। किसी को अन्दर न आने देना।

यह वात नेहा को वहुत अच्छी लगती। वह खुशी से ताली वजाने लगती। और भाभी अपनी बनावटी खिसियाहट मिटाने के लिए कहती—तुमने इसे वहुत सिर पर चढ़ा रखा है, आलोक! वहुत वढ़-वढ कर वोलती है। अच्छी वात है अबकी तुम शहर पढने जाओगे, तब इसकी मरम्मत करूंगी।

—मैं चाचा के संग चली जाऊंगी—नेहा कहती।

—वहां तू सोएगी किसके पास?—आलोक याद दिलाता।

—अम्मा के पास—नेहा कहती।

—वहां अम्मा कहा होंगी?—आलोक कहता।

नेहा सोच में पड़ जाती।

इतने में भाभी कहती—मैं तो नही सुलाऊंगी, इसे अपने पास।

आलोक सुलह का प्रस्ताव रखता— मेल कर लो वेटा, अम्मा से ··

और मेल हो जाता। हंसी के कहकहो से घर गूंज जाता। ऐसी असंख्य लड़ाइया आज आलोक को याद आ रही थीं। उसे वह दिन याद आया जव वह अमेरिका के लिए अपना घर छोड़ रहा था और सोलह वर्ष की नेहा उससे उसी तरह लिपट कर रो रही थी जैसे बचपन में रोया करती थी। वह उसे पुचकार कर समझा रहा था—रोते नही वेटी, हंसी-खुशी विदा देते हैं, वहुत जल्दी ही हम लोग मिलेंगे। उन वादो की याद आज जैसे कलेजे को काटे दे रही थी।

भाभी कह रही थी—उसका कितना अरमान था तुम्हें देखने का, पर हम लोग सोचते थे आखिरी समय पर तुम्हें आना पड़ा और ट्रेनिंग अधूरी रह गई तो सव किया धरा मिट्टी हो जाएगा। उसकी इतनी सख्त वीमारी की वात सुन कर तुम सव कुछ छोड़ कर चले आते तो कितना नुकसान होता!

आलोक कुछ न बोला, उसका दिमाग फट जाना चाहता था। किस मुह से वह कहता कि ट्रेनिंग तो न जाने कब की समाप्त हो गई। वह रुपया कमा रहा था, ताकि वह भैया का कर्जा अदा कर सके, अपनी नेहा को सोने से लाद सके, उसके लिए खुशिया खरीद ले, पर उसे क्या मालूम था कि वह रुपये खरीद रहा है और ज़िन्दगी बेच रहा है। उसकी तो ज़िन्दगी का नक्शा ही बदल गया। क्या करेगा वह उन चीजो का जो उसने पेट काट-काट बडे अरमान से नेहा के लिए खरीदी थी? किसके लिए कमाएगा अब वह? और किसके लिए इस दुनिया में ज़िन्दा रहेगा? भैया-भाभी को नेहा के शोक में दिन पर दिन घुलते हुए देख सकना उसके लिए सम्भव न होगा। आखिर क्या होगा इस ज़िन्दगी का? आलोक समझ न पा रहा था।

इसी समय आलोक की गर्दन दो कोमल बांहो के घेरे मे आ गई। बाहें छोटी थी, मुश्किल से गर्दन को घेर पाई थी, पर उनकी पकड़ मजबूत थी।

अरे, यह कौन है?—उसके मुंह से निकला। मुह पर निगाह पड़ी तो जवाब का इतजार न रहा। तो यही है नेहा की अमानत?

भाभी बोली—सतोष नाम रखा है इसका, बड़ी पुरखिन है, अपना-पराया खूब जानती है। देखो बतलाना थोड़े ही पड़ा कि तुम कौन हो?

इस शोक के समय में भी आलोक के आसुओं में मुसकान घुल गई। बिटिया की तरफ स्नेह से देख कर उसने कहा—तू तो ऐसे आ गई मेरे पास जैसे बड़ी पुरानी मुलाकात हो।

उत्तर में संतोष ने अपनी बाहो के दायरे को और भी कस लिया।

—लखनऊ से प्रसारित



दिवा-स्वप्नों की शाम

कैलाश वाजपयी

यात्रा के दूसरे चरण मे,
जब कि आयु का फीका झोंका
आंखों से लिपटा हर जाला तोड़ गया है।
कोई अपमानित क्षण मुझको
संख्यातीत बुझे चेहरों में,
अनपहिचाना छोड़ गया है ।
मैं अनुभव करता हूं जैसे
जन्म-मृत्यु की दो घटनाएं
साथ हुई हैं ।
एक ऐंठती-सी नीलाई मेरे भीतर पठ गई है,
और साथ ही एक किरन मेरे माथे पर,
उड़ना सीख रहे पक्षी के
बोधहीन बच्चे-सी आकर
बैठ गई है ।
मैं बदली की तज़ धूप-सा
परछाईं से परछाईं तक
भाग रहा हूं ।
अनुभव के इस नए मोड़ पर
देख रहा हूं,
भरा नहीं है फूलो से कोई भी आंगन,
ईश्वर से बस्तियां,
सुलग रहे हैं चूल्हों में गीता क पन्ने
सब आंखें खोखली
थकी हैं सब बाहें,
घूम रही है पहियों में दुनिया सारी.
जाने क्यों,
चूड़ी, अक्षत, राखी, लोरें ।

अर्थ खो दिया है
सबने अपना-अपना,
कोयल की आवाज़ सिर्फ बच्चे सुनते है,
बाकी लोग व्यस्त रहते है।
लोग प्रतीक्षा-विदा या कि
अभिवादन-आदि नही करते है,
लोग सिर्फ
संशय करते है।
अभी-अभी इस नए मोड़ से
रेखा-सी खीचती हुई
कोई अदृश्य
आवाज़ गई थी,
मुझे देख कर, ठिठकी बोली,
ढक लो माथा
आंख मूद लो—
उस सबसे जो दिखता है।
आंख मूद लो
उस प्राणी की तरह कि जो तूफान देख कर,
आंख मूद लेता है।
फिर मन में कहता है
बाहर कोई भी तूफान नही आया है।
मैने पूछा ऐसा क्यों
यह विकृति है,
गूंज उठा,
क्योंकि सभी आकर्षण झूठे होते है
क्योंकि भूख अपने अंडे तक खोती है
क्योंकि विवशता आखिर जी ही जाती है।

—इलाहाबाद से प्रसारित



अमेरिका की महिलाएं

डा० गार्गी गुप्ता

मैं अमेरिका गई तो थी शिक्षा प्राप्त करने, लेकिन इसके साथ ही वहां के समाज, वहां के लोगों—खास कर वहां की महिलाओं—के सम्बन्ध में जानने-समझने की उत्कण्ठा भी बडी प्रबल थी। वहां की महिलाएं कैसा जीवन बिताती हैं उनकी पारिवारिक और सामाजिक अवस्था क्या है, उनकी समस्याए क्या-क्या हैं—यह सब मैं अपनी आंखों से देखना चाहती थी। सो, वहां अपनी पढ़ाई-लिखाई का सिलसिला तो मैंने जारी रखा ही, उनके अत्यधिक निकट जाने की भी भरसक कोशिश की। मैं मौके निकाल-निकाल कर उनके घर गई और उनके रहन-सहन तथा आचार-व्यवहार का नजदीक से अध्ययन किया। वहां जो कुछ मैंने देखा, वह सचमुच प्रशंसनीय था। उनका सखी भाव, वात्सल्य भाव और सुघड गृहिणी का रूप, आज भी अक्सर मेरी आंखों के सामने स्पष्ट हो उठता है।

वहां सबसे पहले जिस अमेरिकी नारी से मेरी मुलाकात हुई, वह एम० ए० की एक छात्रा थी। शायद आपको पता हो, न्यूयार्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में एक छोटा-सा कार्यालय है, जो विदेशी छात्रों को परामर्श देने का काम करता है। यह कार्यालय हर विदेशी छात्र के लिए एक अमेरिकी छात्र नियुक्त कर देता है, जो आरम्भ के दिनों में उसे अपने नगर, संस्कृति और विश्वविद्यालय से परिचित कराता है। मेरी सहायता के लिए यही छात्रा नियुक्त की गई थीं। उसका नाम था, शैरन बुर्क। हवाई अड्डे पर वही मेरा स्वागत करने भी आई थी। उस समय रात के दस बज रहे थे। सितम्बर का महीना था। वह एक गर्म कपडे की ड्रेस पहने हुए थी—पूरी आस्तीन की और घुटनों से नीची। मुझे देखते ही वह मुसकराती हुई आगे बढ़ आई और बडे तपाक से मुझ से मिली। सच मानिए, कुछ ही मिनटों में मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे हम वर्षों पुराने मित्र हों। अनजाने देश में सहसा एक ऐसा साथी मिल जाए, तो कितनी खुशी हो सकती है, यह आप आसानी से समझ सकती हैं। मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे मैं किसी विदेश में नहीं, अपने ही देश में हूं। अमेरिकी महिलाओं की मिलनसारी सचमुच प्रशंसनीय है। बाद में, वहां सैकड़ों छात्राओं से मेरी मुलाकात हुई—क्लास में, होस्टल में, जलसों में, बहुत-सी जगहों पर। सबको मैंने इसी तरह स्नेहशील और मैत्री के लिए हाथ बढाए हुए पाया।

आम तौर पर लोग समझते हैं कि अमेरिकी लड़कियां फैशन-परस्त होती हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है। होस्टल में रहने के कारण, बहुत समीप से इन लड़कियों को देखने का अवसर मुझे मिला। सामान्य धारणा के विपरीत, वे अपने घर में तो सादगी से रहती ही हैं, स्कूल, विश्वविद्यालय और काम पर जाते समय भी न तो भड़कीली पोशाकें पहनती हैं और न अधिक साज-शृंगार करती हैं। मौसम सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण उन्हें ऊंचे कपडे पहनने पडते हैं, यह एक दूसरी बात है। पर उनके कपड़े ऐसे कभी नहीं होते, जिनसे अंगों का अनावश्यक प्रदर्शन हो। आपको शायद विश्वास न हो, पर उनमें से अधिकांश के पास कपड़ों की संख्या भी पर्याप्त नहीं थी। वे

स्वय उन्हें धोकर और उन पर इस्त्री करके हफ्ते भर का प्रवन्ध करती थी। जब कभी मैं उन्हें बतलाती कि एक-एक भारतीय स्त्री अपने पास कितनी-कितनी साड़िया रखती है, तब वे आश्चर्य से मेरा मुह देखती रह जाती थी।

लेकिन ऐसी बात भी नही है कि अमेरिकी स्त्रियो को शृगार का शौक नही होता। जब वे सप्ताहान्त या छुट्टियो की शामो को शुद्ध मनोरजन की दृष्टि से बाहर निकलती ह, तब कीमती वस्त्र भी पहनती हैं और यथासम्भव शृगार भी करती हैं। परन्तु उस समय वे अकेली नही होती—उनके साथ साधारणत. उनका कोई पुरुष अभिभावक या मित्र अवश्य होता है और उनके मान-अपमान और सुरक्षा का पूरा दायित्व उसी पर रहता है।

अमेरिका प्रवास की अवधि में मुझे अनेक परिवारों से जान-पहचान बढाने का मौका मिला। प्राय. प्रत्येक सप्ताहान्त मैं किसी परिवार के साथ ही बिताना पसन्द करती थी। इस तरह, अनेक विवाहित महिलाओ और उनकी अविवाहित वयस्क कन्याओ से मेरा परिचय हुआ।

शायद आपको यह बात कुछ अजीब-सी लगे, पर यह एक सचाई है कि अमेरिका की अधिकाश स्त्रियां पहले बच्चे के जन्म के साथ ही नौकरी छोड देती हैं। मैंने अपनी परिचित बहुत-सी महिलाओ को ऐसा ही करते देखा। सामान्यत. इसके दो कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि अमेरिका मे नौकरो तथा आयाओ का अभाव है। माना कि अमेरिका की सभ्यता 'पुश-बटन' अर्थात बटन दबाने वाली सभ्यता है, परन्तु बटन दबाने के लिए भी तो आदमी की ज़रूरत पडती है। रसोई-घरो मे गैस की व्यवस्था रहने तथा बर्तन-कपड़े धोने, और झाड़ू लगाने के लिए मशीनो की व्यवस्था रहने पर भी गृहिणी को बच्चे या बच्चो की देख-भाल के साथ-साथ यह सारे काम करने तो खुद ही पडते हैं। बच्चो के लिए वहा अन्य देशो के समान न तो शिशु-सदन हैं जहा माताए बच्चों को छोड़ कर काम पर जा सके और न हमारे देश के समान नौकर-नौकरानियो की ही व्यवस्था है, जिनकी देख-रेख मे बच्चो को छोड़ा जा सके। इसके अलावा, वहा सयुक्त परिवार प्रथा भी नही है, जो घर की नानी-दादियो या बुआ-बहनो के अतुल स्नेह की छाया में बच्चे मा को भूल सकें। इसलिए अमेरिकी महिलाओ के पास इसके अलावा और कोई चारा नही रह जाता कि वह कम-से-कम उस समय तक नौकरी का विचार स्थगित कर दें, जब तक उनके बच्चे काफी बडे न हो जाए।

अमेरिकी महिलाएं परिश्रम के क्षेत्र में किसी भी देश की स्त्रियों से पीछे नही हैं। बचपन स ही उन्हें आत्म-निर्भरता और परिश्रम का पाठ पढाया जाता है। सुबह उठ कर बच्चो तथा पति के लिए नाश्ता तयार करना और उन्हें खिला कर भेजने या स्वयं गाडी में पहुचा कर आने से लेकर झाड़ू-बुहारू करने तक घर का सारा काम-धन्धा उन्हें स्वयं ही करना पड़ता है। बाजार से सौदा-सुलुफ लाना, कपडे धोना, सुखाकर उन पर इस्त्री करना, बर्तन धोना, खाना पकाना, बच्चे की देख-भाल करना, सारे काम वे खुद ही करती हैं। इन सब के बाद जो समय बचता है उसे वे पढ़ने-लिखने, टलिविजन देखने या मनो-विनोद करने में लगाती हैं। घर की गृहिणी पर काम का भार बहुत होने के कारण ही मेहमानो से भी इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह खाने-पीने के बाद बर्तन आदि धोने और उन्हें यथास्थान रखने में गृह-स्वामिनी की सहायता करें।

पढ़ने वाली लड़कियो से भी प्राय सभी माता-पिता इस बात की आशा करते हैं कि वह पढ़ाई के खच म कोई पाट-टाइम काम करके उनकी सहायता करें। अच्छे खाते-पीते परिवारो के मा-बाप भी लडकियो को परिश्रम के प्रति सम्मान भावना का पाठ सिखाते हैं। कोई लड़की किसी दुकान में सल्स गर्ल का काम करती है, तो कोई कैफेटीरिया में वेट्रेस का काम, कोई 'बेबी-सिटिंग' का काम करती है, तो कोई टाइपिंग या अध्यापन का काम। इस तरह, थोडे बहुत डालर कमा कर वह मा-बाप का आर्थिक बोझ भी हल्का करती है और स्वय आत्म-निर्भर बनने का सन्तोष

भी पाती हैं। हमारे देश के समान अमेरिका में मा-बाप इसका बुरा नहीं मानते, बल्कि प्रोत्साहन देते हैं। एक उदाहरण देखिए।

पेन्सिलवेनिया नामक राज्य में 'शू फ्लाई पाई' नाम की एक अत्यन्त स्वादिष्ट मिठाई होती है। वहा जिन गृहस्थ की मैं मेहमान थी, वह मुझे एक रेस्तरों में उसका स्वाद चखाने ले गए। वहा यह देख कर मुझे कुछ विचित्र-सा लगा कि उनकी बड़ी लड़की 'वेट्रेस' की ड्रेस पहने हाथ में कापी पेन्सिल लिए आई और बिल्कुल व्यावसायिक ढग से मुसकराकर आर्डर लेने लगी। बाद में, मा-बाप ने भी उसे धन्यवाद और 'टिप' तथा उतने ही व्यावसायिक ढंग से उनसे विदा ली। इसे शायद अपने यहा लालच या क्षुद्रता कहें, पर वहा इस तरह की कोई भावना मैंने नही देखी।

अमेरिका में अधिकांश लोग विवाहित है, परन्तु विवाह के सम्बन्ध में उनकी निजी राय है। उनका कहना है कि विवाह उन्हें आजन्म साथ रहने के लिए बाध्य नही करता। अगर विवाह के कुछ समय उपरान्त उन्हें ऐसा लगता है कि किसी कारण से पति-पत्नी में ऐसा मन-मुटाव है, या विचारो में इतना भेद है कि निभा सकना कठिन है, तो दोनो तलाक लेकर पुर्नविवाह कर लेते है। लेकिन इससे विवाह-व्यवस्था मे उनकी आस्था नही खत्म हो जाती है, बल्कि व समझते है कि अगर उन्होंने एक बार जीवन-साथी के चुनाव में गलती की है, तो दूसरी बार अधिक सतर्क होकर चुनाव करेंगे। इसी कारण, अमेरिका में तलाक के साथ-साथ पुर्नविवाहो की भी सख्या बहुत अधिक है। कभी-कभी तो पोते-पोतियो से भरे-पूरे दादा-दादी भी पुर्नविवाह करते है। फिर भी, वहा के अधिकाश परिवार सुखी जीवन व्यतीत करते है और जब तक साथ रहते हैं, पूर्ण ईमानदारी और वफादारी का निर्वाह करते हैं। सच पूछिए, तो विवाह-व्यवस्था के प्रति अमेरिकावासियों का झुकाव दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि वहां के लडके-लडकिया जल्दी-से-जल्दी विवाह सूत्र में बध जाना चाहते हैं।

लेकिन अमेरिका में सयुक्त परिवार की प्रथा नही है। यो, यह अभाव सामान्य जीवन में तो विशेष परिलक्षित नही होता, लेकिन वहा के वृद्ध इसकी आवश्यकता बुरी तरह अनुभव करते हैं। जाडो में धूप निकलते ही वहा सडको के बीच पगडण्डियो पर लगी बैंचो पर बैठे हुए सैकडो वृद्ध नर-नारियो को आप कभी भी अखबार पढते देख सकते है। घण्टो तक धूप सेंकने के बहाने बैठे हुए ये नर-नारी सडक पर चलते हुए मा-बच्चो को देख कर आह भर कर रह जाते हैं। एक ही शहर में उनके नाती-पोते रहते है, फिर भी उन्हें जी भर देखने और उनकी बाल-क्रीडाओ में अपने एकाकीपन को भूल जाने के लिए वे तरसते है। इन्हें एक तरह से परित्यक्त ही कह सकते हैं। इनके क्लब और नाच घर तक अलग होते हैं। वे कभी यह सोच ही नही पाते कि उनके बेटे-बेटियो को उनकी कोई जरूरत भी है, जबकि सचाई यह है कि युवा माता-पिता भी अपने छोटे बच्चो की देख-रेख के लिए अपने वृद्ध माता-पिता को साथ रखने का अभाव पूरी तरह अनुभव करते है।

पत्रकारिता की छात्रा होने के नाते मुझे तरह-तरह के जलसो, सभाओ तथा गोष्ठियो में जाने का अवसर मिला और कई उत्तरदायित्वपूर्ण पदो पर स्त्रियो को नियुक्त देख कर मुझे सन्तोष हुआ। फिर भी, इन पदो पर उनकी संख्या अभी पर्याप्त नही है। वे साधारणत : सेक्रेटरी, टाइपिस्ट, रिसैप्शनिस्ट, आपरेटर आदि छोटी जगहो पर ही काम करती है। परन्तु अब उनमें ऊची शिक्षा का तेजी से प्रसार हो रहा है। और वे अधिकाधिक संख्या में अच्छे पदो पर पहुचने के लिए प्रयत्नशील है।

अन्त में मैं कुछ शब्द अमेरिका की समाज-सेविकाओ के सम्बन्ध में कहना चाहूगी। सेवा के क्षेत्र में वे सचमुच वहुत आगे वढी हुई हैं। वहा ऐसी वहुत-सी 'मेला-संस्थाए' है, जिनके कार्य-कर्त्ता और सदस्य अधिकाशत महिलाए हैं। ये महिलाए मैत्री-सस्थाओ की सदस्याए वन कर विदेशी छात्र-छात्राओ को अपने घर निमन्त्रित करती है। तीन दिन तक छात्र-छात्राए इनके अतिथि रह सकते है और अमेरिकी जीवन को अति निकट से देख और समझ सकते है। इस वीच अगर विदेशी छात्र अपने देश के वारे में कुछ वोलना चाहें, तो वे चर्च, सभाओ या विद्यालयो में उनके भाषणो का भी आयोजन कर देती हैं। इन सवका खर्च अमेरिकी महिलाए स्वय ही उठाती हैं और वहुत वार तो अपने मेहमानो को उनके निवास-स्थान से स्वय ले जाती और पहुचाती भी जाती हैं। वस्तुत मा-वाप, भाई-वन्धुओ और मातृभूमि से दूर विदेशी छात्रो को अगर इन ममतामयी मा-वहनो का प्यार न मिले, तो उनका समय काटना दूभर हो जाए।

इसके अलावा उनकी समाज-सेवा का एक और भी पक्ष है। कुछ कारणो से, अमेरिका मे अनाथ वच्चो और प्रौढ लोगो की सख्या वहुत अधिक है। अधिकाश गृहस्थ महिलाए स्वेच्छा से इन लोगो के लिए पुराने वस्त्रो, कितावो और मैगजीनो की व्यवस्था कर उन तक पहुचाती आती है। इसमें सुख मिलता है और कभी-कभी वे उनके लिए थोडे-वहुत धन का भी प्रवन्ध कर देती है।

जैसा कि मैंने पहले कहा है, अमेरिका में नौकरो और सयुक्त परिवार की प्रथा का अभाव है, इसलिए छोटे वच्चो वाली महिलाओ को घर से वाहर जाने की सुविधा नही रहती। यहा तक कि चर्च जाना भी कठिन हो जाता है। एक तो 'वेवीसिटिंग' हर समय सम्भव नही है, दूसरे यह प्रथा महगी वहुत है, अत कई स्त्रियां ऐसा करती है कि अपना काम जल्दी पूरा कर के, निस्वार्थ भाव से दूसरो के वच्चो को अपने घर रख लेती हैं। ये वच्चे उनके अपने वच्चो के साथ खेलते हैं और उनकी माताए अपना काम कर आती है। सेन फ्रासिसको में जो महिला मुझे हवाई अड्डे पर लेने आई, उनके साथ छोटे-वडे दस वच्चे देख कर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। वाद मे पता चला कि उनमें से ७ उनके पडोसियो के वच्चे थे, जिनकी मा किसी-न-किसी काम से वाहर गई हुई थीं और वे उनके अकेले रह जाने के डर से सवको साथ ले आई थी। छोटे-छोटे पराए वच्चों पर उनकी इतनी ममता देख कर भला किसका मन प्रफुल्लित न हो उठेगा।

वास्तव में ऐसी ममतामयी नारिया ही किसी समाज की प्राण होती हैं। ऐसी महिलाओ पर ही किसी राष्ट्र को गर्व होता है। अमेरिका सचमुच भाग्यशाली है ऐसी नारी-रत्नो को पाकर।



१. राष्ट्रों का उत्थान और पतन

के० एम० मुंशी

इतिहास मानव समुदाय के उत्थान और पतन की कहानी है। धर्म, जाति, भाषा और राष्ट्रीयता ये कुछ ऐसे तत्व हैं, जिनके आधार पर समुदाय एक सूत्र में बंधा रहता है। हम यहां राष्ट्रीयता की चर्चा करेंगे। प्रश्न उठता है, कि राष्ट्रों का उत्थान और पतन कैसे होता है? और इसी से सम्बद्ध प्रश्न है—राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने वाले तत्त्व कौन से हैं?

एक भौगोलिक क्षेत्र में कुछ लोगो के रहने से राष्ट्र नही बनता। एक भाषा बोलने वाले या एक धर्म को मानने वाले लोगो से भी राष्ट्र नही बनता। स्विट्जरलैंड और कैनेडा में विभिन्न भाषाए बोली जाती है, फिर भी वे राष्ट्र है। दूसरी ओर ब्रिटेन और अमेरिका, उत्तर भारत और पाकिस्तान में एक भाषा बोली जाती है, लेकिन वे विभिन्न राष्ट्र हैं।

राष्ट्र होने के लिए तीन बातें मुख्य है . पहली, अपने अतीत और महापुरुषो पर गर्व, दूसरी एकता की भावना और तीसरी मिल कर काम करने की क्षमता।

यदि किसी देश में कुछ लोग अपने अतीत पर गर्व करते है परन्तु दूसरे नही करते और देश के महापुरुषों को अपना नही मानते, तो उन्हें एक राष्ट्र नही माना जा सकता।

एकता की भावना का प्रश्न मुख्यत नेता वर्ग में एकता की भावना से सम्बद्ध है। प्रत्येक देश में कुछ थोडे लोग ऐसे होते है, जो आगे बढते है और नेतृत्व कर सकते है। शेष बहुसंख्यक जनता इसी नेता वर्ग का अनुसरण करती है। राष्ट्रीय एकता की भावना तीन स्थितियो में नष्ट हो जाती है—यदि यह नेता वर्ग ऊचे आदर्शो से प्रेरित न हो, जब उसकी एकात निष्ठा राष्ट्र में न हो, अर्थात् उसमें जात-पात, प्रान्तीयता आदि के सकीर्ण भाव हो और जब नेता वर्ग जनता से दूर हट जाए।

ऊचे आदर्शो से प्रेरित होकर ही राष्ट्रो ने उन्नति की है। स्वतन्त्रता की लडाई के पिछले सौ वर्षो में भारत के नेता ऐसे ही आदर्शो से प्रेरित थे। हम राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के आदर्शो से प्रेरित थे। स्वतन्त्रता के लिए कष्ट सहने और प्राण भी होमने को उद्यत थे। हम अपने पुराने आध्यात्मिक आदर्शो से प्रेरित होकर उन्हीं के सहारे स्वतन्त्रता के लिए लड रहे थे, हमारा ध्येय था कि स्वतन्त्र होकर हम मानव मात्र को सुखी बना सकें।

यदि हममें आदर्श की भावना शिथिल हो जाए, जैसा कि अतीत में हुआ, यदि हम अपने में और अपनी संस्कृति में विश्वास खो दें, यदि हमें यह भरोसा न रहे कि हम कुछ कर सकते है, तो हमारे संकल्प शिथिल हो जाते है, हमें निराशा घेर लेती है और इसका परिणाम होता है पतन।

राष्ट्रीय एकता की भावना नष्ट होने का दूसरा कारण है, राष्ट्र में एकान्त-निष्ठा या

अभाव । यदि हमारे नेता वर्ग के लोग राष्ट्र की अपेक्षा जाति, धर्म, भाषा या प्रांत में अधिक निष्ठा रखने लगें, तो राष्ट्रीय भावना का ह्रास होने लगेगा। इसका यह अर्थ नही कि हम अपने परिवार, जाति, धर्म और भाषा से प्रेम न करें। लेकिन इसके साथ-साथ हमें राष्ट्र को सबसे ऊंचा स्थान देना चाहिए, तभी राष्ट्र का उत्थान होगा, अन्यथा वह पतन के मार्ग पर चल पड़ेगा। जर्मनी और जापान में राष्ट्र के प्रति अपूर्व निष्ठा है और इसीलिए द्वितीय महायुद्ध के बाद सर्वनाश के गर्त में गिर कर भी वे इतनी जल्दी उठ सके है।

तीसरी स्थिति, नेता वर्ग और जनता के विचारो में साम्य न होने की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब नेता वर्ग दूसरी संस्कृति के प्रभाव में आ जाता है। एक बार यह स्थिति उत्पन्न होने पर नेतावर्ग चाहे जितना कर्मठ क्यो न हो, जनता उसे पराया ही समझती है और फलतः उनमें एकता की भावना नही रहती।

अपने ही देश का उदाहरण लें, तो पता लगता है कि गांधी जी से पहले अधिकांश नेता पाश्चात्य रंग में रंग रहे थे और वे जनता की भावना को नही समझ पाते थे। गांधी जी ने नेता और जनता के बीच की खाई पाट दी और जनता ने उन्हें अपना संत, महात्मा और रक्षक समझ कर, उनको अपनाया और पूजा।

राष्ट्र निर्माण का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व है, मिल कर काम करने की क्षमता। मिल कर काम करने की भावना के बिना राष्ट्रीय एकता की भावना कोरी भावना ही रहती है। पिछले युग की ही बात है—हम आर्यावर्त्त और विक्रमादित्य के स्वप्न तो देखते थे, लेकिन मिल कर काम करने को तैयार न थे। इसका परिणाम यह था कि जब मोहम्मद गोरी ने हमला किया, तो अकेला पृथ्वीराज उससे लड़ता रहा और बाकी हिन्दू राजा चुप बैठे रहे।

लेकिन इतिहास हमें एक सबक सिखाता है। आदर्शों से प्रेरित होकर मिल कर काम करने की भावना सदैव शुभ ही सिद्ध नही होती। इसके कारण कभी-कभी दूसरो पर आधिपत्य की आकांक्षा उत्पन्न होती है, दूसरे को दबा कर हम उठना चाहते हैं, दुनिया पर छा जाना चाहते है। अधिकांश विनाशकारी महायुद्ध इसी कारण हुए है।

जब किसी देश में एकता की अटूट भावना होती है, तब वह बड़े काम करता है, शत्रुओं पर विजयी होता है और अपनी संस्कृति का प्रसार करता है। लेकिन जब यह भावना सीमा पार करती है, तब वह अनुचित रूप धारण करती है। नेता वर्ग अपरिमित बल और अपार वैभव प्राप्त करता है। नेता वर्ग प्रभुता और शक्ति के मद में मत्त हो जाता है। यह स्थिति उत्पन्न होने पर पूर्णोन्नत राष्ट्र का पतन प्रारम्भ होता है।

ऐसे राष्ट्रों के सामने तीन संकट उत्पन्न हो सकते हैं—उनके प्रतिद्वंद्वी राष्ट्र उनसे अप्रसन्न हो जाएं, जलने लगें, और युद्ध हो जाए, जिसमें ऐसे राष्ट्र नष्ट हो जाएं अथवा वह अपने प्रभुता-मद में आकर स्वयं ही कोई आत्मघाती काम कर बैठें। बहुधा ऐसी स्थिति में सत्य-असत्य, उचित-अनुचित का विवेक नष्ट हो जाता है। मनुष्य सांसारिक सुखो में डूबता जाता है और स्वयं नष्ट हो जाता है।

आज के युग में कुछ ऐसा लग रहा है, जैसे समृद्ध शक्तिशाली देश आध्यात्मिक आदर्शों से गिरते जा रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप ताकत और चालबाजी सब बातो की निर्णायक बन गई है। मानवता का सम्मान समाप्त हो गया है। शासक अत्याचारी हो गए हैं। पारिवारिक जीवन विकृत हो रहा है।

इस स्थिति मे भारत के इतिहास से कुछ सबक लिया जा सकता है। शताब्दियो तक हमारे ऊपर विदेशियो का शासन रहा। इस संकट में भी हम अपने आध्यात्मिक आदर्शों

पर दृढ़ रहे और सैंकड़ो कठिनाइयों के बाद हम फिर उठ रहे है। लेकिन हमारा नेता वर्ग नई दुनिया की चकाचौंध में खोया-सा दिखाई देता है। हम अपने आदर्शो में निष्ठा रख और राष्ट्रीय एकता की भावना से मिल कर काम करें, तो इस संकट को रोक सकते है। यदि हम अपने आध्यात्मिक आदर्शो से प्रेरणा लेते रहें, तो हमारा राष्ट्र कभी अवनति की ओर न जाएगा। हम उन विनाशक शक्तियो का सामना करने में समर्थ होगे, जो बल और वैभव को अत्यधिक महत्व देने से उत्पन्न हो जाती है, और तब हमारा राष्ट्र उत्थान की ओर अग्रसर होता रहेगा।'



२. तानाशाही क्यों कायम होती है ?

प्रोफेसर मुजीब

तानाशाह कहते ही दिमाग में एक ऐसे आदमी की तस्वीर खिंच जाती है, जिसने जबर्दस्ती सत्ता हथिया ली हो, जो क्रूर, निरकुश और स्वेच्छाचारी हो और जिसकी तलवार निर्दोष लोगो के खून की प्यासी हो। उसके साथ ऐसे लोगो का गिरोह रहता है, जो आख मूंद कर उसका हुक्म बजा लाते है। 'यूनान, असीरिया और अन्य देशो के इतिहास में अनेक तानाशाह मिलते है। ये तानाशाह अच्छे भी हो सकते है, बुरे भी। पर इन सबकी यही विशेषता है कि ये निरकुश होते है। अपनी मरजी के खिलाफ ये किसी की बात नही सुन सकते। यदि चार आदमी आपस में बात भी करें, तो उन्हें उसमें षड्यन्त्र की बू आती है। वह भला काम करे या बुरा, सब अपने मन का करता है। उस पर चू भी करना राजद्रोह है।

तानाशाही किन परिस्थितियो में कायम होती है, इसका पता तो इतिहास से लगता है। परिस्थितियो को देखते हुए कभी-कभी ऐसी तानाशाही उचित या हितकर भी मानी जा सकती है। पर जो लोग तानाशाही के समर्थक, गुर्गे या हथियार होते है, उनके कार्य का औचित्य कभी नही ठहराया जा सकता। यदि ऐसे लोग न हो तो तानाशाही टिक नही सकती। इसलिए मूल प्रश्न जिस पर हमें विचारना है, यह है कि लोग तानाशाही को स्वीकार या सहन क्यों करते है।

आप मानें या न मानें, लेकिन प्राचीन इतिहास से भी और कुछ सभ्य देशो के हाल के इतिहास से भी इसका यही उत्तर मिलता है कि लोग तानाशाही को इसलिए कायम करते है, क्योकि उसे अच्छा समझते है। वे उसे इसलिए अच्छा मानते है, कि उनमें समाज की रक्षा और योग-क्षेम का पूरा उत्तरदायित्व एक व्यक्ति के कधे पर होता है। आदिम युग में तो ऐसे व्यक्ति को दैवी-शक्ति युक्त माना जाता था और समझा जाता था कि वह देवताओं का आवाहन कर सकता है और आपदाओ को टाल सकता है।

आज हम जानते है कि यह अन्धविश्वास था। हमी क्यो प्राचीन युग में भी लोग यह

समझने लगे थे कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि आदि कुछ नही होता । इतिहास में बहुत-से अत्याचारी भी हुए, लेकिन इसके बाद भी एकतन्त्र या एक आदमी के शासन की अच्छाई में विश्वास मिटा नही । राजाओ ने भी, राजा देवता का अश होता है, इस विश्वास को सब तरह से बढ़ाया । दूसरी ओर वर्ग-सघर्ष था । मजदूरो, किसानो, कारीगरो और व्यापारियो आदि पर जागीरदारो और सामन्तो के जो अत्याचार होते थे, उसके कारण वे शक्तिशाली निरंकुश राजा को अपना त्राता समझते थे । इस प्रकार जनता में राजभक्ति का भाव प्राचीन युग से किसी-न-किसी रूप में निरन्तर चला आ रहा है। सभ्यता ने इसे वीर-पूजा का नाम दे दिया है। यदि यह विश्वास मिट जाता तो नेपोलियन, कमालपाशा, मुसोलिनी और हिटलर पैदा न होते।

तानाशाही क्यो कायम होती है, इसका एक उत्तर तो यह है कि वह अच्छी होती है, और दूसरा उत्तर है कि वह आवश्यक है । इसका उदाहरण रोम गणराज्य के इतिहास में मिलता है। वहा सकट काल में एक व्यक्ति को पूरी सत्ता दे दी जाती थी । वास्तव में सकट काल ही तानाशाही को आवश्यक बनाता है। इतिहास में अनेक बार ऐसे अवसर आते है, जब सर्वनाश देश के सामने खडा दिखाई देता है। ऐसे ही अवसरो पर चतुर और साहसी व्यक्ति राज्य की सत्ता पर कब्जा कर लेते है।

लेकिन कोई भी विचारक आज तक सकट काल की ठीक परिभाषा नही कर सका। अरक्षा या संकट का भाव अनेक कारणो से पैदा हो सकता है । आक्रमण का खतरा और घर की फूट इस भावना को इतना बढा देती है, कि लोग सकट का अनुभव करने लगते हैं। मैंने कई लोगो को कहते सुना है कि भारत को आज तानाशाह की जरूरत है। असल में लोगो में यह विश्वास अब तक कायम है कि तानाशाह या अधिनायक सब कुछ कर सकता है । इस भाव के फैलने में देर नही लगती, जनता एक मजबूत शासन का स्वप्न देखने लगती है, जो उन्हें कष्टो से छुटकारा दिलावेगा।

तानाशाही कायम होने मे सबसे अधिक सहायक यह भावना है, कि तानाशाही अनिवार्य है । तानाशाही क्यो कायम होती है, इस प्रश्न का सबसे भयानक उत्तर यही है । भयानक इसलिए कि इससे लोग सब जिम्मेदारियो से मुक्त हो जाते है। यह स्थिति जनता की घोर अकर्मण्यता और कायरता से उत्पन्न होती है।

हम यह सिद्ध कर सकते है, कि तानाशाही अच्छी नही, यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि आवश्यक नही, लेकिन जिन स्थितियो में तानाशाही कायम होती हैं, उन्हें कैसे झुठला सकते है, क्योकि जो लोग यह सिद्ध करना चाहें कि वह अनिवार्य नही है, उनके कधो पर यह जिम्मेदारी आती है कि वे खुद आगे बढें, दृढ-संकल्प, आत्म-त्याग और आत्म-विश्वास का परिचय दे । ऐसे आदमी आगे नही आते। यही कारण है कि निरकुश सत्ता के विरुद्ध क्रातिया बहुत कम हुई है। जो हुई है, वे सफल नही हुई। अपनी जान बचाने के लिए लोग अपनी स्वतन्त्रता का सौदा कर लेते है।

तानाशाही का एक नया रूप भी है । इसमें तानाशाही एक व्यक्ति की नही, बल्कि राजनीतिक दल की होती है । इस तानाशाही के कई रूप हो सकते हैं। एक रूप यह हो सकता है कि पार्टी के सदस्य उसके हुक्म पर वोट दें। दूसरा रूप यह है कि व्यक्ति के विचार, भाषण, कार्य सब पर दल का पूरा नियन्त्रण हो । राजनीतिक दल की तानाशाही व्यक्ति, समूह और सम्प्रदाय तीनों तानाशाहियों का मिलाप है और इसके हाथ में जो ताकत है, वह पुराने जमाने की बड़ी-से-बड़ी तानाशाही को मयस्सर न थी।

कुछ दल किसी राजनीतिक सिद्धान्त को अपनी सत्ता का आधार बनाते है । इस प्रकार के दल उन लोगों को, जो खुद सोच नही सकते या सोचने से डरते हैं, शरण और ढाढस देते है। पर जो लोग इन सिद्धान्तो से जरा भी मतभेद रखते हैं, उनकी मौत है। दल के सिद्धान्त से तनिक भी इधर-उधर करना जघन्यतम अपराध माना जाता है।

समाज में कुछ ऐसे वर्ग होते है, जो दूसरो को दबाते है, जैसे जमीदार या सरकारी अहलकार । चतुर और महत्वाकांक्षी व्यक्ति इन छोटे तानाशाहो का सहारा लेकर सत्ता हथिया लेता है और तानाशाह बन जाता है । सत्ता हथियाने वाला जानता है कि किस प्रकार ये छोटी-छोटी तानाशाहिया पनपें, जिससे उसे सत्ता हथियाने का अवसर मिले। एक बार यह चाल सफल हो जाए, फिर उसका विरोध करना कठिन ही नही खतरनाक हो जाता है, क्योकि उसके हथियार—ये छोटे अत्याचारी उसके साथ रहते है । अतएव यदि तानाशाही का अन्त करना है, तो उन मूल कारणो का अन्त करना चाहिए, जो तानाशाही को जन्म देते हैं।

इतिहास बताता है कि तानाशाही या तो किसी देश को जीतने के बाद कायम हुई या किसी देश में आन्तरिक कारणो से ही कायम हुई। जहा तक किसी देश को जीतने का प्रश्न है, यदि हम एक देश पर दूसरे देश की विजयो के इतिहास का विश्लेषण करें, तो पता लगेगा कि बाहरी ताकत इसलिए विजय प्राप्त कर लेती है, कि आक्रान्त देश में मुकाबला करने की ताकत नही होती । मुकाबला करने की ताकत क्यो नही होती, इसके कई कारण है।

एक कारण है आतरिक फूट । आतरिक फूट बाहरी शक्ति को आक्रमण का न्योता देती है। फूट के कारण लोगो को देश के हित का ध्यान नही रहता। एक प्रान्त या भाग के लोग दूसरे भाग के खतरे को अपना खतरा नही मानते । हमारे देश के इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पडे है। १८वी शताब्दी में साम्राज्यवादी शक्तियो ने भारत के तटवर्ती भागो पर हमला किया और देश भर में किसी ने विरोध नही किया, क्योकि उन्होंने उसे अपने लिए खतरा नही समझा।

प्रान्तीयता और निहित स्वार्थ भी तानाशाही को जन्म देते है । १८वी शताब्दी के भारत में ऐसे सैकडो उदाहरण है, जहा निहित स्वार्थों के कारण जमीदार और छोटे-छोटे राजा मनमाने अत्याचार करते थे।

प्रातीयता की यह विशेषता है, कि वह लोगो का ध्यान प्रात विशेष में इतना सीमित कर देती है, कि उससे बाहर की बात सोचना भी पाप प्रतीत होता है।

भारत में प्रांतीयता पर जाति और भाषा-भेद की छाप और लग जाने के कारण वह और भी भयंकर रूप में रही है। जातिभेद का एक प्रभाव अवश्य हुआ कि हमारे यहा वर्ग-सघर्ष अधिक जोर नही पकड पाया । दुनिया का इतिहास वर्ग-सघर्ष से भरा पडा है। जमीदारो ने किसानो का और व्यापारियो ने कारीगरो का सदा शोषण किया है और इनके शोषण से त्रस्त जनता ने इनकी शक्ति नष्ट करने वाले तानाशाह का स्वागत किया है।

प्रांतीयता की संकुचित विचारधारा और वर्ग द्वेष पीढी-दर-पीढी चलता आ रहा है । छोटा और बड़ा तथा जाति-पाति का भाव घर से ही पैदा होता है । आगे चल कर वह एकता और सहयोग के उन भावो पर कुठाराघात करता है, जिनके अभाव के कारण आन्तरिक फूट पैदा होती है, लुटेरे पैदा होते है और साम्राज्यवादी पैदा होते हैं।

लेकिन घर के वातावरण का दूसरा पक्ष भी है। घर में हमें ईश्वर से डरने और

अन्याय तथा पाप से बचने की शिक्षा मिलती है। घर में ही उदारता और आत्मत्याग का पाठ हम पढते है । इस प्रकार घर में स्वतन्त्रता का जन्म और तानाशाही का विरोध जन्म लेता है। यह ठीक है कि केवल एक घर या परिवार की शिक्षा तानाशाही का अन्त नही कर सकती। इसके लिए उसे पूरे समाज, राजनीतिक संस्थाओ और राज्य का नैतिक समर्थन चाहिए।

हमें ऐसे कानून बनाने चाहिएं और ऐसी परिपाटी चलानी चाहिए कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह देश का हो या बाहरी, राज्य की सत्ता हथिया न सके। इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि हम स्वतन्त्रता की रक्षा के संस्कार घर में पैदा करें और ऐसी शिक्षा दें, जिससे तानाशाही को जन्म देने वाले संदेह, अध-स्वार्थ और मिथ्या गर्व के भाव उत्पन्न ही न हो । यदि हम यह नही कर सकते, तो हमें सदैव सावधान रहना चाहिए, क्योकि तानाशाह कब, कहा से और कैसे पैदा हो जाएगा, इसका कुछ पता नही।



३. शासन चक्र के धुरे : सरकारी कर्मचारी

आर० सत्यनाथ अय्यर

प्राचीन यूनान के एथेंस में पेरिक्लिस का युग (ईसा पूर्व ४६१-३१) स्वर्ण युग माना जाता है। उसी युग में गणतन्त्र का श्रीगणेश हुआ था। इस गणतन्त्र की बुनियाद लगभग १३० वर्ष पहले सोलन ने डाली थी। उन्होने एथेंस की उच्च परिषद एरियोपेगस का पुनर्गठन किया और उसे संविधान का सरक्षक बनाया, साथ ही न्याय का काम जन-सभा को सौंपा।

एथेंस की असेम्बली जब न्याय करती थी, तब उसे हेलिया कहते थे। ३० साल की उम्र से ऊपर के सभी नागरिक इसके सदस्य होते थे। वे मजिस्ट्रेटो के काम की जाच करते थे और न्यायाधिकारियो के फैसलों के विरुद्ध अपील सुनते थे। इस प्रकार सोलन ने ईसा पूर्व छठी शताब्दी में जनता के न्यायालय की स्थापना की। ईसा पूर्व ४८७ में एरियोपेगस से संविधान की संरक्षता का अधिकार ले लिया गया और तब एथेंस की न्याय सभा हेलिया जनता की सत्ता की प्रतीक बन गई।

हेलिया में जजों की संख्या १,००० से भी अधिक हो जाती थी। प्रत्येक न्यायाधीश को प्रतिदिन लगभग ३ आना भत्ता मिलता था। वे जो फैसला करते थे, उसके विरुद्ध अपील नही की जा सकती थी। इस तरह के न्यायालयो से दो लाभ थे : एक तो ये जनता के प्रतिनिधि होते थे, दूसरे जजो की संख्या अधिक होने से और उनके नाम मुकदमे से सिर्फ एक दिन पहले घोषित किए जाने से, वहा रिश्वतखोरी नही चल सकती थी।

परन्तु इसमें अनेक दोष भी थे। इन जजो को कानूनों का कोई ज्ञान नही होता था, न उनको कानूनदां लोगो की मदद मिलती थी, फिर भी उनका निर्णय अंतिम होता था। होता यह था कि वे वादी और प्रतिवादी विद्वानो से व्याख्यान लिखवा कर उसे सुना देते थे। उसमें कानूनी

बातें कम और न्यायाधीशों को सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न अधिक होता था। अभियुक्त अपने साथ अपनी पत्नी और बच्चो को भी ले आते थे, ताकि उनको देख कर न्यायकर्त्ताओ को दया आ जाए। इस प्रकार निष्पक्ष न्याय में बाधा पहुंचती थी।

ईसा पूर्व ३९९ में यूनान के महान् दार्शनिक सुकरात को मृत्यु-दण्ड दे कर एथेंस के गणतन्त्र-वाद ने अपने ऊपर सबसे बडा कलक लगाया। उनका अभियोग ५०१ न्यायकर्त्ताओ के आगे पेश हुआ और ६० के बहुमत से उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया। उन्होंने सत्य की खातिर न्याय-सभा के दण्ड से जहर का प्याला पीकर अपनी जान दे दी। इस प्रकार संसार का महान् दार्शनिक, और प्लेटो, अरस्तू आदि विश्व विख्यात् मनीषियो का गुरु जनता के न्याय का शिकार हुआ।

इतिहास ऐसी अनेक चेतावनियो से भरा है। प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ बर्क का कहना है कि फ्रास के क्रान्तिकारियो ने अपना मतलब साधने के लिए इतिहास से गलत नजीरें ली। मुसोलिनी भी यही मानता था कि रक्तपात से ही देश आगे बढ़ता है। पुराने जमाने में एक-से-एक राजनीतिज्ञ, न्यायी और शासक हुए हैं, पर न्याय-व्यवस्था का पूरा विकास आधुनिक युग में ही हुआ। पुराने जमाने में राज्य की सत्ता के आगे व्यक्ति की सत्ता या स्वतन्त्रता को माना जाता है।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और संघीय शासन व्यवस्था से न्याय-व्यवस्था का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज न्याय का काम राज्य का है, पहले पादरी या धर्मगुरु, सामन्त, या बिरादरी की पचायतें यह काम करती थी।

न्यायालय के सामने अमीर-गरीब एक बराबर हैं—यह सिद्धान्त आज के युग की देन है। प्राचीन काल में गुलामो के कोई अधिकार नही होते थे और स्त्रिया भी पूर्णत अपने पतियो के अधीन थी। पादरियो और बड़े लोगो को विशेष अधिकार प्राप्त थे। उनके खिलाफ फरियादें नही सुनी जाती थी। इन्ही कारणो से फ्रास में राज्यक्रान्ति हुई। इंग्लैंड में जेम्स द्वितीय ने व्यवस्था में हस्तक्षेप किया, इस कारण १६८८ का विद्रोह भड़का। १७०१ में इग्लैंड में जो कानून (एक्ट ऑफ सेटिलमेंट) बना, उसमें यह व्यवस्था की गई कि न्यायाधीश जब तक काम ठीक करे, तब तक उसे पद से नही हटाया जा सकेगा।

इसी से ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की स्वतन्त्रता का जन्म हुआ। १७८७ में अमेरिका का सविधान बना और उसमें न्यायलय को विधान का सरक्षक माना गया। हमारे देश के सवि-धान-निर्माताओ ने भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और केन्द्र तथा राज्यो में अधिकारों का वितरण करने में अमेरिका से ही प्रेरणा ली।

अस्तु प्राचीन एथेंस के उदाहरण से यह सबक मिला कि न्यायाधीशो का चुनाव जनता के वोट से नही होना चाहिए।

१८वीं शताब्दी में फ्रांस के राजनीति शास्त्री मान्टस्क्यू ने ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था से प्रभावित हो कर न्याय विभाग को शासन से अलग और स्वतन्त्र रखने का प्रतिपादन किया। लार्ड कार्नवालिस जब भारत के गवर्नर-जनरल बने, तो उन्होने यही सिद्धान्त अपनाया। उन्होंने सरकार के काम को दो भागों—न्याय और माल या शासन में बांट दिया और यह व्यवस्था कर दी कि यदि शासन अधिकारी अपने अधिकारो का अनुचित प्रयोग करे, तो उनके विरुद्ध न्यायालय में फरियाद की जा सकती है।

देश में अब व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और न्याय विभाग को शासन से अलग रखने का सिद्धान्त सुप्रतिष्ठित हो गया है। वर्तमान काल में तो देश के संविधान और न्याय में जनता के पूर्ण विश्वास और निष्ठा की खास जरूरत है।

हमारे न्याय विभाग पर सबको पूरा विश्वास होना चाहिए और न्यायालय की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता पर तनिक भी आंच न आने देना चाहिए।

हमारी शासन-व्यवस्था या सिविल सर्विस के कर्मचारी शासन चलाने में विशेषज्ञ होते हैं और स्थायी होते हैं, जबकि मन्त्रीगण जन-साधारण के प्रतिनिधि होते हैं और बराबर बदलते रहते हैं। ब्रिटेन के अनुभव से सिद्ध हुआ है कि इन दोनो तत्वो के मिलाप से शासन को बहुत लाभ होता है। मंत्री लोग जनता की नब्ज पहचानतें हैं, उनके भले के लिए प्रयत्नशील रहते है और उनके हित की नीति निर्धारित करते हैं। दूसरी ओर सरकारी कर्मचारी उस नीति को अच्छी तरह चला सकते है। इस प्रकार शासन चलाने के लिए नौकरशाही आवश्यक है।

हमारे देश में नौकरशाही शब्द कुछ बदनाम है, क्योकि ब्रिटिश काल की नौकरशाही में दो दोष थे एक तो दफ्तरो मे प्रत्येक काम में काफी देर लगती थी, दूसरे सरकारी कर्मचारियो को राष्ट्रीय भावनाओ से कोई सहानुभूति न थी।

लालफीता नौकरशाही का सबसे बड़ा रोग है। सरकारी कर्मचारी अच्छे नौकर होते हैं, अच्छे मालिक नही। परन्तु उनके बिना न कोई सरकार चली है, न चल सकेगी। रूस, आस्ट्रिया, फ्रास, चीन, रोम और वेनिस की पुरानी बादशाहत के मूल में भी नौकरशाही थी। आज के गणराज्यो की भी यही धुरी है। इसीलिए हम अपने सरकारी कर्मचारियो को अच्छी से अच्छी ट्रेनिंग देना चाहते है।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी मे विशाल शासनतन्त्र या नौकरशाही थी, जिसका परिचय हमें कौटिल्य (चाणक्य) के अर्थशास्त्र से मिलता है। ये कर्मचारी सुशिक्षित, सुदक्ष नागरिक अधिकारी थे। कौटिल्य का कथन है कि उन्हें अधिक वेतन इसलिए दिया जाता था कि वे संतुष्ट रहें और भ्रष्टाचार मे न फंसें।

मौर्यकाल का शासनतन्त्र जनता का पीडक न था। कौटिल्य ने कदम-कदम पर शासन पर निगरानी रखने की ऐसी व्यवस्था की थी कि भ्रष्टाचार को प्रश्रय न मिल सके। वास्तव में मौर्यकालीन शासनतन्त्र से हमें सबक लेना चाहिए।

मध्यकालीन कश्मीर की नौकरशाही या कुशासन से हमें चेतावनी भी मिलती है। वहा कर भार बहुत अधिक था, रिश्वतखोरी खूब चलती थी। कर्मचारी मनमानी करते थे, जमीदार और फौजी अधिकारी जनता पर जुल्म करते थे।

अकबर के शासन में मौर्य शासन के विपरीत सैनिक और नागरिक शासन को मिला दिया गया था। मनसबदार सबसे ऊचे अधिकारी होते थे और लगभग ७० प्रतिशत विदेशी थे। उनकी तनखाह आज से भी ऊंची थी। अकबर के शासन काल में देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी और बाद में और भी खराब हो गई। देश की आय का बहुत अंश ऐश-आराम और अन्य व्यर्थ कामो पर ही खर्च होता था।

देश में ब्रिटिश शासन के आरम्भ में भ्रष्टाचार काफी बढ़ा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी तथा अन्य अंग्रेजो ने क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स के जमाने में भारतीयो से काफी धन लूटा। यह लूट लार्ड कार्नवालिस के गवर्नर-जनरल बनने के बाद बन्द हुई। उन्होने सिविल सेवा में सुधार किया। यही आगे चल कर भारतीय सिविल सर्विस कहलाई।

१९वीं शताब्दी में शासन-नीति बदली और जनता की भलाई की ओर ध्यान दिया जाने लगा। भारतीय सिविल सर्विस ने अपनी दक्षता और ईमानदारी के कारण काफी प्रसिद्धि पाई और ससार की अच्छी सेवाओ मे गिनी जाने लगी, परन्तु इसके कर्मचारियो (आई० सी० एस०) में सहायता और उदारदृष्टि की कमी थी।

किसी भी सरकार की सफलता की कसौटी यह है कि उसने जनता को कितना लाभ हुआ। इससे भी बड़ी कसौटी यह है कि उससे राष्ट्र का चरित्र और लोगों में स्वशासन की योग्यता कितनी बढ़ी।

अब हमारे भारतीय प्रशासन सेवा के कर्मचारियो (आई० ए० एस०) का कर्त्तव्य है कि वे आई० सी० एस० लोगो की शासन-दक्षता की परम्परा को निभाएं और लोगों की भलाई करने में उनसे भी आगे बढ़ें। उन्हें सुप्रसिद्ध ब्रिटिश दार्शनिक लाक का यह कथन हमेशा याद रखना चाहिए कि जनता की भलाई सब विधानो से बढ़ कर है।

अन्त में हम कह सकते है कि इतिहास यह सीख देता है कि न्यायाधीशो का चुनाव जन-समूह के वोट से नही होना चाहिए। हमारे न्यायाधीश विद्वान, स्वतन्त्र और निष्पक्ष होने चाहिएं। वे बाल की खाल निकालने वाले नही, जन-कल्याण के प्रहरी होने चाहिएं। हमें राम शास्त्री जैसे न्यायाधीशो की जरूरत है।

सरकारी कर्मचारी शासन रूपी पहिए का धुरा है। वह अपने काम में दक्ष होता है। उसके बिना लोकहितकारी गणराज्य नही चल सकता। हमारे सरकारी कर्मचारियों को कुशल, ईमानदार और नम्र होना चाहिए। उनका काम शासन के कल्पवृक्ष की तरह जनता के लिए रखवाली करना है, उसका फल खाना नही।



४. सभ्यताओं का उत्थान और पतन

डा० ताराचन्द

पुराने जमाने में राजकुमारो का इतिहास पढ़ना भी जरूरी समझा जाता था, जिससे वे राजनीति तथा शासन में पूर्ववर्ती राजपुरुषो के उदाहरण से लाभ उठावें। परन्तु आधुनिक इतिहासकारो को सन्देह है कि इतिहास की मदद से भविष्य की घटनाओ का अनुमान लगाया जा सकता है।

इतिहास में पिछली घटनाओ का विवरण होता है, परन्तु इतिहासकार के भी ज्ञान की सीमा है, वह सभी घटनाओ का वर्णन नही कर सकता। वह तो अपनी दृष्टि से केवल कुछ घटनाओ को ही चुन कर प्रस्तुत करता है।

विज्ञान प्राकृतिक पदार्थों और व्यापारो को लेकर उनका विश्लेषण करता है। उनमें हमेशा एकरूपता रहती है, और उनमें कभी अन्तर नही पड़ता। प्रकृति के समस्त व्यापार एक नियम से होते हैं और विज्ञान इन्ही नियमो की खोज करता है।

इसी से ज्योतिषी वर्षो पहले ही सूर्य या चंद्र-ग्रहण के समय का पता लगा लेते है। इसी प्रकार रसायन-शास्त्री पहले रबड़ का विश्लेषण करके उसके तत्त्वों और गुणो का पता लगाता है, और फिर वैसी ही रासायनिक क्रिया से नकली रबड़ तैयार कर लेता है।

विज्ञान में पहले किसी वस्तु का विश्लेषण किया जाता है, फिर उसका अध्ययन किया जाता

है, उस पर प्रयोग किए जाते है, नतीजे निकाले जाते है और आगे का अनुमान या आविष्कार किया जाता है। यही विज्ञान का तरीका है।

परन्तु इतिहास के क्षेत्र में ऐसा नही किया जा सकता, क्योकि गया वक्त फिर हाथ आता नही। स्थितिया या घटनाएं वदलती रहती है। कोई भी शक्ति वीती घटनाओ को लौटा नही सकती। नई और अनसोची घटनाएं वरावर होती रहती है। अस्तु यदि हम वीती वातों को वापस नही ला सकते, तो भविष्य में होने वाली घटनाओ को भी नही वता सकते।

इतिहास का निर्माण मनुष्य करता है। उसमें इच्छा-शक्ति और कार्य-शक्ति है। वह विभिन्न परिस्थितियो में अपनी इच्छा से जो काम करता है, उसके लिए इतिहास कोई नियम नही वना सकता। इतिहास उसके कार्यो का व्योरा मात्र रख सकता है, उसकी कार्य-शक्ति को नियमो में नही जकड सकता।

फिर भी इतिहासवेत्ताओ और समाजशास्त्रियों ने मनुष्य के क्रिया-कलापो में नियम ढूढ़ने की कोशिश जारी रखी। उन्होने उत्थान और विकास के क्रम का सिद्धान्त निकाला। भौतिकवादियों का कहना है कि आर्थिक कारणो से ही समाज में परिवर्तन होता है, परन्तु इस सिद्धान्त के जनक मार्क्स की भविष्यवाणी भी पूरी नही उतरी। उनका कहना था कि पहले उद्योग में उन्नत देश में समाजवादी क्रान्ति होगी, परन्तु इसके वजाय वह हुई पिछड़े कृषि प्रधान देश रूस में। उन्होने यह भी कहा था कि तेजी, मंदी और जरूरत से ज्यादा उत्पादन के कारण पूंजीवादी व्यवस्था का पतन होगा, परन्तु उनकी यह धारणा भी सही नही उतरी। पूजीवादी व्यवस्था फल-फूल रही है, और उसने अपने संकटो या रोगो का इलाज भी निकाल लिया है।

अस्तु प्रश्न उठता है कि क्या इतिहास से हमें कोई शिक्षा नही मिलती ? क्या इसे पढने से कोई फायदा नही। ऐसी वात नही। इतिहास भविष्यवाणी भले ही न कर सके, पर हमें सामाजिक परिवर्तनों को समझने में सहायता तो देता ही है।

इतिहास से हमें मनुष्य के व्यवहार को समझने में मदद मिलती है और इस प्रकार समाज व्यवस्था को भी समझने में सहायता मिलती है। प्लेटो और अरस्तू प्राचीनकाल के महान् समाजशास्त्री है।

प्लेटो के अनुसार मानव मस्तिष्क के तीन अंग हैं: वुद्धि, इच्छा और अभिलाषा। जब ये तीनो अंग अपना-अपना काम ठीक तरह से करते है, तव मनुष्य का जीवन भी संतुलित रहता है। वुद्धि से ज्ञान, इच्छा से कर्म और अभिलाषा से पूर्ति और संयम आता है। पूर्ण मनुष्य, वह है, जिसमें ज्ञान, उद्यम और संयम का समन्वय हो।

ये तीनों अंग सामाजिक जीवन में भी प्रकट होते है। वुद्धि प्रधान दार्शनिक, ज्ञानी या ब्राह्मण, उद्यम या कर्मप्रधान योद्धा या क्षत्रिय और अभिलाषा प्रधान उत्पादक या वैश्य होता है। जिस समाज में ये तीनो वर्ग ज्ञानी के पथ-प्रदर्शन में अपना-अपना काम ठीक तरह से मिल कर करते है, वही सर्वश्रेष्ठ समाज है।

अरस्तू मनुष्य को जीव सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ मानते थे। उनके मतानुसार मनुष्य में वनस्पति पशु और मनुष्य तीनो के गुणो का मेल होता है। वनस्पति का गुण जीना और जनना है, मनुष्य के दाम्पत्य या घरेलू जीवन में यह चरितार्थ होता है। पशुओ में वनस्पति की इन विशेषताओं के अलावा कर्मेन्द्रिया भी होती है, जिनसे वह विभिन्न कार्य करता है, मनुष्य के सामूहिक जीवन में यही अश फलित होता है। मनुष्य की विशेषता वुद्धि है, इसका गुण नियम और संयम है, इसी की परिणति राज्य सस्था में होती है। दोनो का मत है कि मनुष्य के मस्तिष्क और समाज दोनो में एक ही तत्त्व है।

इसीलिए मनुष्य कभी भी समाज से अलग नहीं रहा और न रह सकता है। मनुष्य और समाज दोनो का प्रादुर्भाव साथ-साथ हुआ। आदिम युग से अब तक मनुष्य समूह बना कर रहे हैं। समूह से ही समाज बने और उससे जातियां, राष्ट्र और संस्कृतियां जनमी। कुछ जातियां बहुत आगे बढी और दूर-दूर तक फैलीं। कुछ जातियां नष्ट हो गईं। कुछ जो बची, उन्होंने बड़े उतार-चढ़ाव देखे। इनकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में गहरे परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनो की झलक हमें उनकी कला, साहित्य और संस्कृति में मिलती है।

सभ्यताओ के उतार-चढ़ाव, समाजों के जन्म, विकास और अन्त, तथा राज्यों के उत्थान और पतन की कहानिया बड़ी रोचक हैं। इससे मनुष्य के आचरण और सामाजिक परिवर्तनों के कारणो का पता चलता हैं। मनुष्यो का समूह ही समाज है, इसलिए व्यक्ति जो कुछ करता है, उसका असर समाज पर पड़ता है। यदि व्यक्ति तन, मन से स्वस्थ है तो समाज भी सबल रहेगा यदि व्यक्ति स्वस्थ नही है, तो समाज का पतन होगा।

कुछ व्यक्तियो में नेतृत्व का जन्मजात गुण होता है, दूसरे व्यक्ति उनका अनुसरण करते है। नेताओ और अनुगामियो का सुगठित समूह ही समाज है। इन नेताओं के चरित के अनुसार ही समाज में, अच्छाइयां और बुराइया आती हैं। नेता जैसा आचरण करते है, साधारण जन भी वैसा करते है। जब ये विशिष्ट व्यक्ति या नेता समाज हित को ही आत्म-हित समझते हैं, तब समाज आगे बढ़ता है। जब ये अपने स्वार्थ को ऊचा दर्जा देते है, तब समाज का पतन होता है।

दुनिया के इतिहास में इसके अनेक उदाहरण मिल सकते है। यूनान को ही लीजिए। यूनान में पहले नगर-राज्यों का उदय हुआ। प्रत्येक नगर का अपना समाज और धर्म की व्यवस्था थी। प्रत्येक नागरिक अपने समाज, धर्म और गणराज्य से प्रेम करता था। यदि किसी नागरिक को काफी धन प्राप्त हो जाता, तो वह उसे अपने काम में न लाकर नगर राज्य के हित में लगाता, जैसे एथेंस के नागरिक थेमिस्टोक्लिस ने अपने धन से अपने राज्य के लिए जहाजी बेडा बनाया। प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने एथेंस के कानून को शिरोधार्य करके जहर का प्याला पी लिया।

परन्तु धीरे-धीरे आबादी बढी, उद्योग-धंधा और धन बढा, लोगो में लोभ और स्वार्थ आया। नागरिकता की भावना घटने लगी। लोग नगर-राज्य की रक्षा के लिए सेना में भर्त्ती होने से कतराने लगे और किराए के सैनिक रखने लगे।

नतीजा यह हुआ कि जब फिलिप (सिकन्दर के पिता) ने एथेंस पर हमला किया, तब महान् वक्ता डेमोस्थनीज भी नागरिको को अपने राज्य की रक्षा के लिए हथियार उठाने को प्रेरित न कर सका और गर्वोन्नत एथेंस गुलाम बन गया।

रोम के मेहनती और पराक्रमी किसानो ने रोम का निर्माण किया। उनमें ऐसे योद्धा थे. जिनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरो में अंकित है। होरेशस ने केवल दो साथियो को लेकर, लार्स परसेना की सेना से टाइबर नदी के पुल की रक्षा की। सिसिनेटस ने अपने लड़के को सैनिक कर्तव्य से च्युत होने पर मृत्यु दण्ड दिया, रोम के प्रसद्धि जनरल स्किपियों अफ्रीकेनस कार्थेज पर विजय प्राप्त करने के बाद जनता की जयजयकार और हर्षोल्लास से जान बचा कर चुपके से अपने गाव को चला गया। इन्ही त्यागी योद्धाओं के बल पर रोम का साम्राज्य फैला।

धीरे-धीरे रोम का नैतिक पतन आरम्भ हुआ। वहां सत्ता, शक्ति और धन का लोभ बढा, विलास की प्रवृत्ति बढ़ी। योद्धाओ और राजनीतिज्ञों की कमी होने लगी।

रोमन नागरिक विलासी और बुजदिल हो गए। स्वयं हथियार उठाने के बजाय उन्होंने बर्बर जातियों को सेना में नौकरी दी। इन भाड़े के सैनिकों ने धोखा दिया और १०० वर्ष के अन्दर-अन्दर रोम का साम्राज्य ध्वस्त हो गया।

इस्लाम के शक्तिशाली खलीफाओं का उत्थान-पतन भी इसी प्रकार हुआ। मुस्लिम सभ्यता के इतिहासकार जुर्जी जैदान ने लिखा है कि किस प्रकार पैगम्बर (हजरत मुहम्मद) की मृत्यु के ८० वर्ष के अन्दर ही इस्लाम की ध्वजा को पूर्व में आक्सस और हिन्द से लेकर पश्चिम में अतलांतिक सागर तक फैलाने वाले वीरों के वशज दमिश्क और बगदाद में बस कर विलास में डूब गए। हज़रत मुहम्मद ने आपस मे लड़ने वाले अरब कबीलों को इस्लाम के सूत्र में बांध कर एक प्रबल राष्ट्र में परिणत कर दिया। उनके उत्तराधिकारी भी इन्ही के कदमों पर चले। उस समय के मुसलमान अरब वीर, स्वतन्त्रता प्रेमी और ऊंचे चरित्र के थे।

उमैया खलीफाओ के समय से पतन आरम्भ हुआ। निर्भीकता के बजाय चापलूसी और वीरता पर शराबखोरी, ऐयाशी और लोभ ने अरब जाति में घर कर लिया। अब्बासी खलीफाओं के समय पतन की गति और तेज़ हुई। भ्रष्टाचार और ऐयाशी ने चरित्र का नाश कर दिया। लोग कायर, दगाबाज़ और बेईमान होने लगे। तुर्क सैनिक खलीफाओ के महलो और जनानखानों पर पहरा देते थे और उनके अन्दर अरब अमीर-उमरा नाच-रंग में मस्त रहते थे। नतीजा यह हुआ कि जो सेवक थे, वही बाद मे मालिक बन गए। १२५८ में तुर्कों और मंगोलों ने बगदाद को तहस-नहस कर दिया और खलीफा शासन का अंत कर दिया।

यूनान, रोम, बगदाद के खलीफाओ तथा अन्य जातियो के उत्थान, पतन की कहानी एक-सी है। इनसे हमें सबक और चेतावनी मिलती है।



५. महाभारत, घर की फूट की करुण कहानी

डा० मोतीचन्द्र

इतिहास मनुष्य जाति के कार्यो का निष्पक्ष चित्रण करता है। उसका उद्देश्य किसी खास दृष्टिकोण का प्रतिपादन करना नहीं है। यदि हम इतिहास का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करें, तो हमें अपनी बहुत-सी धारणाएं बदलनी पड़ेंगी। अपने देश में महान् दार्शनिक और साहित्यकार हुए है, पर दुर्भाग्यवश पाश्चात्य देशो जैसे बड़े इतिहासकार नही हुए।

कल्हण को हम अपना पहला बड़ा इतिहासकार कह सकते है। उन्होंने १२वी शताब्दी में कश्मीर का प्रसिद्ध इतिहास 'राजतरंगिणी' लिखा, जिसमें वहा की कुस्थिति का नग्न चित्रण मिलता है। इसमें राजाओ के विरुद्ध सामंतों का विद्रोह, प्रजा का शोषण और तबाही तथा राजा-प्रजा दोनो के नैतिक अधःपतन का मार्मिक वर्णन है। कश्मीर का यह इतिहास मध्ययुगीन भारत के राज्यो के इतिहास का नमूना है।

हड़प्पा सस्कृति में नागरिक सम्यता का उज्ज्वल चित्र है (लगभग ईसा पूर्व २५०० से १,५०० तक)। इसके इतिहास का तो ठीक पता नही चलता, पर इसमें एक बात स्पष्ट है कि भारत में बर्बरता से निकल कर राजनीतिक एकता और सस्कृति के विकास का यह पहला प्रयत्न था। दुर्भाग्यवश हम यह नही जानते कि हडप्पा की रचना करने वाले कौन लोग थे।

कहा जाता है कि हड़प्पा और मोहनजोदडो में वर्ग या श्रेणी भेद काफी जबर्दस्त था। एक वर्ग मदिरो के दासो का था, जो खेती और अन्य मेहनत का धघा करता था। दूसरा वर्ग व्यापारियो का था, जो उनकी मेहनत पर मजे उड़ाता और मोटाता था। इन व्यापारियो के समर्थक पुजारी थे, जो दलित प्रजा को दैवी प्रकोपो का डर दिखा कर उन्हें विद्रोह करने से रोकते थे।

आज से ४ हजार वर्ष पहले के समाज में इस तरह के वर्गभेद की बात काल्पनिक जान पडती है। परन्तु इतना अवश्य है कि हडप्पा सस्कृति में सडाध और स्थिरता आ गई थी, उसमें समय के साथ बदलने के चिह्न नही मिलते, और इसका कारण दकियानूसी पुरोहित वर्ग का प्रभाव जान पड़ता है। बाद में यह सस्कृति आक्रमणकारियो से अपनी रक्षा न कर सकी।

आर्यों का आगमन इस देश में ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में हुआ। सभवत उन्होंने ही हड़प्पा और मोहनजोदडो को नष्ट किया। पर वे यहा जिस सस्कृति के सम्पर्क में आए, उसे उन्होने अपना कर नई सस्कृति की रचना की। यद्यपि आर्य लोग आपस में लड़ते रहते थे और उनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि वर्ण भी बनने लगे थे, फिर भी उनमे एकता की भावना थी। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में यह भावना व्यक्त हुई है।

इसमें देश की धरती, उस पर रहने वाली विभिन्न जातिया, उनकी एकता का वर्णन है। इसमें सभा और समिति का उल्लेख है, जो आर्यों की राजनीतिक सस्थाए थी, और लोगों ने सभा-समितियो में मीठी बात बोलने का और दूसरो के विचारो का आदर करने का उपदेश दिया गया है, जिसमे जन और जातियो में एकता बनी रहे।

परन्तु आर्यों ने अथर्ववेद के इस सूक्त की नेक सलाह का कहा तक पालन किया, महाभारत इसका नमूना है। कहा जाता है कि महाभारत का युद्ध धर्म और न्याय के लिए हुआ था, परन्तु भाई-भाइयो को इस भयानक लडाई में घोर नर-सहार हुआ। केवल दो-चार आदमी इसमे जीवित निकले तथा इससे देश की राजनीतिक व्यवस्था ध्वस्त हो गई और समाज और नीति की चूले हिल गई।

महाभारत से पता चलता है कि लोभ और द्वेष के वश होकर लोग समाज, नीति, राज्य, सबके हित को ताक पर रख कर किस प्रकार राष्ट्र को पतन के गर्त में धकेल सकते हैं। धर्म, जाति और समाज सबकी एकता होते हुए भी घर की फूट के कारण भारत राष्ट्र न बन सका। इससे अधिक दुख की बात और कोई नही हो सकती।

महाभारत का युद्ध लगभग ईसा पूर्व १,००० में हुआ था। इसके बाद आर्यों की शक्ति गगा की घाटी में स्थिर हुई और ईसा पूर्व ७०० से करीब १६ महाजनपदो का उदय हुआ। फिर इनमे प्रतिद्वद्विता चली। कोशल और मगध का सघर्ष हुआ और मगध की शक्ति बढी। उसने वैशाली के लिच्छवियो और पावा तथा कुशिनारा के मल्लो के गणराज्यों को भी अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार प्रबल मगध साम्राज्य का उदय हुआ, बाद में यह साम्राज्य भी नष्ट हो गया। इसके बाद देश में अनेक बार बड़े-बडे राज्य कायम होते और टूटते रहे।

ईसा पूर्व चौथी सदी मे गगा की घाटी तो एक साम्राज्य के अन्तर्गत थी परन्तु पजाब की स्थिति दूसरी ही थी। ईसा पूर्व ३२६ में जब सिकन्दर की सेना ने आक्रमण किया, तब

काबुल की घाटी और पजाब छोटे-छोटे राज्यो और गणराज्यो में बंटा था, जो आपस में लडा करते थे। फलस्वरूप छोटे गणराज्यो और पुरु के वीरतापूर्वक लडने के बावजूद भी पजाब सिकन्दर के हाथ में आ गया। उसकी सेना काफी थक चुकी थी और साथ ही उसे पाटलिपुत्र की शक्ति का ज्ञान था, इसलिए वह आगे नही बढा।

उस समय देश में एक ऐसा महान् व्यक्ति था, जिसने इतिहास की इस चेतावनी से शिक्षा ली और वह था—चन्द्रगुप्त मौर्य। उसे भारत के उत्तर-पश्चिम से आने वाले खतरो का ज्ञान था। इसलिए उसने समस्त उत्तर भारत को अपने राज्य के सूत्र में बाधा। उसके महामत्री चाणक्य ने मौर्य साम्राज्य के शासन के नियम-कायदे बनाए, जिनका संग्रह अर्थशास्त्र में है। ये कानून बहुत कठोर थे, परन्तु उस समय के सकटो को देखते हुए, देश में एकता कायम रखने के लिए जरूरी भी थे।

चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक बौद्धधर्म के अनुयायी थे। उन्होने अनुभव किया कि युद्ध और कठोर शासन से सच्ची एकता कायम नही हो सकती। वह स्वयं धर्म-यात्रा करते थे और प्रजा से मिलते थे। उनसे पहले के राजा नियत समय में ही शासन का काम देखते और लोगो से मिलते थे। परन्तु अशोक इसके लिए हर समय तत्पर रहते। उन्होने अपने कर्मचारियो को अनुमति दे रखी थी कि यदि मैं अत.पुर में भी रहू, तो भी काम पडने पर मुझे तुरन्त सूचना दी जाए।

प्रजा के हित के लिए अशोक ने कुएं खुदवाए, सड़को के किनारे पेड लगवाए, जडी-बूटियां लगवाईं और अधिकारियो को आदेश दिया कि प्रजा के साथ नरमी से व्यवहार करो तथा दौरा करके उनसे मिलते-जुलते रहो। वास्तव में अशोक के शासन में वे सभी बातें थी, जो आधुनिक हितकारी राज्य में होती है।

जब मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ और सेनापति पुष्यमित्र ने शासन संभाला, तब देश की एकता टूट रही थी। मौर्य साम्राज्य के उत्तरी भाग पर विदेशी आक्रमणकारियों ने अड्डा जमा लिया था और शुंग वंश का राज्य दक्षिणी भाग में ही सीमित रह गया था। पुष्यमित्र ब्राह्मण धर्म के समर्थक थे, जिससे बौद्ध धर्मानुयायी उनके विरुद्ध हो गए थे। सम्भवत. इसी कारण ईसवी पहली शताब्दी मे कुशाण राजा कनिष्क उत्तर भारत में बिना किसी विशेष कठिनाई के अपना राज्य स्थापित कर सके।

कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया, जिससे ब्राह्मण धर्मावलम्बी उनके विरुद्ध हो गए, क्योकि पुराणो में शक, हूण आदि को म्लेच्छ, यवन जैसे अवज्ञा सूचक शब्दो मे सबोधित किया गया है। परन्तु इसमें सदेह नही कि कुशाण काल में विदेशी आगन्तुक भी भारतीय समाज में मिल गए और भारत की शक्ति और धाक मध्य एशिया में भी कायम हुई।

परन्तु कनिष्क के बाद ही यह एकता फिर टूट गई। शको ने यद्यपि हिन्दू धर्म अपना लिया था, फिर भी उनके प्रति पुराना द्वेष बना ही रहा। इसीलिए उन पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजय पर बड़ा उल्लास मनाया गया और उन्हें शकारि की उपाधि दी गई।

चौथी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य स्थापित होने पर देश मे पुनः राजनीतिक और सास्कृतिक एकता दृढ हुई। गुप्त वंश ने प्राचीन काल के चक्रवर्ती राजाओ की तरह सारे देश को अपने राज्य के अन्तर्गत लाने का यत्न किया। महाकवि कालिदास ने उस स्वर्णयुग का बहुत सुन्दर चित्रण किया है, साथ ही उन्होने चेतावनी भी दी है कि सभी पुरानी बातो को हमेशा अच्छा ही मानना चाहिए। समझदार लोग ठोक बजा कर ही किसी बात को स्वीकार करते है और मूढ बिना सोचे-विचारे सबको मान लेते है। भट्ट की रचनाओं तथा अन्य कृतियों से हमें पता चलता है, कि राष्ट्र का ह्रास शुरू हो गया था।

उच्च वर्ग के लोगो का चरित्र गिर गया था, न्याय-व्यवस्था भ्रष्ट होने लगी थी, धर्माचार्य पतित हो गए थे, सैनिक लूट-पाट मचाने लगे थे, अधिकारीगण राजा को ठीक सलाह देने और निरंकुशता रोकने के बजाय उसकी चापलूसी करने लगे थे। छोटे-छोटे जागीरदार स्वतन्त्र राजा बनने लगे। फलस्वरूप साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा और देश की राजनीतिक एकता टूटने लगी, राष्ट्रीय दुर्बलता के इसी क्षण में हूणो का आक्रमण हुआ। वास्तव में गुप्त साम्राज्य के पतन के मूल में हमारा यही नैतिक और सामाजिक पतन था।

सम्राट् हर्ष के बाद का इतिहास फूट और वैर का इतिहास है। गुप्तकाल में हिन्दू धर्म में जो नव-जागरण हुआ, उसमे सास्कृतिक एकता तो उत्पन्न हुई पर उससे राजनीतिक एकता कायम न हो सकी। उस समय के जो लेख मिलते है उनमें छोटे-छोटे राजाओं को भी चक्रवर्ती और राजाधिराज कहा गया है। देश की राजनीतिक एकता कैसी छिन्न-भिन्न हो गई थी, इसका पता इन लेखो से चलता है। गुर्जर प्रतिहारो ने उत्तर भारत में पजाब से लेकर बिहार तक अपना राज्य स्थापित किया। इसमें राजस्थान और गुजरात के भी कुछ खण्ड थे। उनका राज्य इस्लाम की बाढ के सामने चट्टान की तरह खड़ा रहा।

नवी शताब्दी में कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारो को अरब आक्रमणकारियो से लोहा लेने में देश के सब राजाओ से मदद मिलनी चाहिए थी, पर ऐसा न हुआ। बल्कि गुर्जर प्रतिहारो को पालो और राष्ट्रकूटो से लड़ना पड़ा। यही नही राष्ट्रकूट अपने शत्रु गुर्जर प्रतिहारो को हटाने के लिए अरब आक्रमणकारियो से मिल गए।

९१६ के लगभग गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य टूटने और छोटे-छोटे राज्यो में बटने लगा। यदि बाहरी आक्रमण न होता, तो धीरे-धीरे कोई एक बडा राज्य कायम हो जाता परन्तु इसी बीच तुर्को ने भारत पर हमला कर दिया। उस समय पजाब के साहियो ने उनसे जम कर लोहा लिया। अलप्तगीन के आगे उन्हें पीछे हटना पडा। अत में ११वी सदी में साही राजा त्रिलोचनपाल ने महमूद गजनवी से मुकाबला करने के लिए कश्मीर राज्य से मदद ली, पर दुर्भाग्य से विजय उनके हाथ न लगी और वह देश की स्वतन्त्रता के लिए लडते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।

परन्तु त्रिलोचनपाल का बलिदान भी उत्तर भारत को गुलामी से न बचा सका। साही वंश पतन के बाद मुसलमानो का हमला और बढा। शाकम्बरी के राजा पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी का मुकाबला किया, परन्तु कहते है कि उस समय कन्नौज और बनारस के गहडवाल राजा जयचन्द ने उसकी मदद न की, बल्कि वह मुहम्मद गोरी के सेनापतियो से गुप्त रूप से बात चला रहा था और पृथ्वीराज की हार पर खुशी मना रहा था।

एक जैन प्रबन्ध में इसकी करुण कहानी मिलती है। उसमें कहा गया है कि पृथ्वीराज की मृत्यु का समाचार सुन कर, जयचन्द ने बनारस के लोगो को खुशिया मनाने का आदेश दिया। उसके दरबार में भी खुशियां मनाई गई, परन्तु उसका मन्त्री तीन दिन तक दरबार में नहीं आया। चौथे दिन जब वह दरबार में आया, तो खुशी मनाने का कारण पूछा।

कारण सुनने पर उसने ये स्मरणीय शब्द कहे—किले का एक फाटक है, जिसका दरवाज़ा और ब्योंड़ा लोहे के है। यदि ब्योंड़ा टूट जाए तो दरवाज़े अवश्य ही गिर जाएंगे। फिर किले का क्या होगा। पृथ्वीराज भारत रूपी किले के दरवाजे का ब्योंड़ा था, इसलिए उसकी मृत्यु पर आपको खुशी नही मनानी चाहिए। याद रखिए, जिसने पृथ्वीराज को खतम किया, वह कल आपको भी खतम कर सकता है।

जैन प्रबन्ध में यह नही लिखा है कि जयचन्द ने यह सुन कर क्या किया। परन्तु यह स्पष्ट

है कि ११९४ में कुतुबुद्दीन ऐबक ने बनारस जीत लिया और कुछ ही वर्षो में सारा उत्तर भारत विदेशियो के हाथ में चला गया। इस प्रकार आपस की फूट से देश का सत्यानाश हुआ।

६. राज्य की शक्ति : सुखी प्रजा

के० एम० पणिक्कर

भारत को अपने इतिहास से बहुत कुछ सीखना है। इस देश का इतिहास ३,००० वर्ष से भी पुराना है और इस लम्बी अवधि में इसने अनेक उत्थान-पतन देखे तथा पिछले डेढ सौ वर्ष तक यह देश पराधीन भी रहा। इसलिए अब हमें अपने इतिहास से शिक्षा लेकर अपनी स्वतन्त्रता को दृढ़ करना और खतरो से सतर्क रहना है।

सभी देशो के इतिहास से सबसे बड़ी सीख यह मिलती है कि जनता जब सुखी और प्रसन्न रहती है, तभी राष्ट्र भी शक्तिशाली रहता है। ऐसे बहुत-से देश थे, जहा के मत्री और राजपुरुष चतुर थे, सामत और सरदार धनी और शक्तिशाली थे तथा राग-रग मे मस्त रहते थे, जहा साहित्य, सगीत और कलाओ की उन्नति हुई और जहा राजाओ ने शानदार इमारतें बनवाई, परन्तु ये सब राज्य सकट आते ही बालू की भीत की भांति ढह गए।

वास्तव में जहा एक ओर ऊचे महल और दूसरी ओर गंदी झोपडिया होती हैं, जहा अमीर ऐयाशी करते और गरीब पीसे जाते हैं, ऐसे राज्य का पतन अवश्यभावी है। फ्रास की रानी मेरी अतायनेत के बारे में कहा जाता है, कि जब उसने सुना कि लोगो को रोटी नही मिल रही है, तो उसने बड़े भोलेपन से कहा—लोगो को रोटी नही मिलती तो वे मिठाई क्यो नही खाते ?

इससे पता चलता है कि उस समय राजा और प्रजा के बीच कितनी बडी खाई बन गई थी। फलस्वरूप फ्रांस मे खूनी क्रांति हुई। महल और झोपडी के बीच की यह गहरी खाई सभी राज्यो के लिए खतरनाक है।

हमारे देश के इतिहास में भी ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनसे हमें यह सीख मिलती है। मुहम्मद शाह के जमाने में मुगल साम्राज्य की बाहरी शान-शौकत बनी थी। वह उसी तख्तताऊस पर बैठते थे, जिसे शाहजहा ने अपनी समृद्धि दिखाने के लिए बनाया था। वह उसी दीवान खास में अपना दरबार लगाते थे, जहा यह अकित था कि यदि पृथ्वी में कही स्वर्ग है, तो वह यही है। मुहम्मद शाह अपने दरबारियो को पहले की ही तरह बड़ी-बड़ी खिलतें देते थे। परन्तु जब नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया, तो उसका मुकाबला करने वाला कोई भी आगे नही आया। मुगल सल्तनत के बड़े-बडे सूबेदारो, वजीरो और निजाम-उल-मुल्को को बुलाया गया, परन्तु उन्होने मैदान जंग से दूर रहने मे ही कुशल समझा।

दिल्ली की गलियो में तीन दिन और तीन रात तक निर्दोष प्रजा के खून की नदियां बहती रही। नादिरशाह का बाल भी बांका नही हुआ। अन्त में वह बेशकीमत जवाहरात से बना

तख्तताऊस, रत्नजटित मुकुट और बेशुमार दौलत लेकर, और मुगल साम्राज्य को ठोकर लगा कर फारस लौट गया। ऐसे शासकों से प्रजा की विरक्ति का इससे बड़ा उदाहरण इतिहास में मिलना कठिन है।

भारत के इतिहास से दो और उदाहरण लीजिए। सिराजुद्दौला देश के तीन सबसे अधिक दौलतमन्द प्रांतों पर शासन करता था, परन्तु पलासी के युद्ध में वह मुट्ठी भर अंग्रेजों से हार गया। कारण—उसके अपने ही लोगों ने उसे धोखा दिया। यूरोपीय इतिहासकारों का कथन है कि यूरोप का सैनिक भारतीय सैनिक से अच्छा होता है, इसलिए इन युद्ध में अंग्रेज जीते, परन्तु यह बात गलत है। यदि सिराजुद्दौला को उसके ही आदमी धोखा न देते, तो वह न हारता।

उसके दरबार की शानोशौकत का क्या कहना, खास मौकों पर उसके दरबार में सैकड़ों नाचनेवालियों का मुजरा होता था, दरबारी, नवाब, राजा और महाजन ठाट-बाट में एक दूसरे से होड़ करते थे। परन्तु प्रजा गरीब थी, उसका शोषण होता था, इसलिए वह शासन में न तो कोई रुचि लेती थी और न वफादार ही थी।

दूसरा उदाहरण अरकाट के सूबेदार नवाब मुहम्मद अली का है। वह अकसर मद्रास जाते थे और ईस्ट इंडिया कम्पनी की मेहमानदारी कबूल करते थे। एक बार कम्पनी ने उन्हें एक शानदार दावत दी, जिसमें पांच सौ से अधिक प्रकार के व्यंजन परसे गए और बहुत सी नाचनेवालियों को बुलाया गया। नवाब साहब को इससे मौज उड़ाने का नया तरीका मिला।

अपनी मौज उड़ाने के लिए उन्होंने अंग्रेज महाजनों से रुपया कर्ज लिया और अपने सूबे का काफी बड़ा भाग उनके पास बंधक रख दिया। प्रजा इन अंग्रेज महाजनों के शोषण की शिकार बन गई। नतीजा यह हुआ कि नवाब की मृत्यु के बाद जब अंग्रेजों ने पूरा शासन अपने अधीन कर लिया और एक कठपुतली सूबेदार बिठा दिया, तब प्रजा ने इसका जरा भी विरोध नहीं किया। मुहम्मद अली के कुशासन के कारण शासक और प्रजा के बीच इतनी बड़ी खाई बन गई थी कि प्रजा ने शासन की कोई परवा नहीं की।

इससे हमें जो शिक्षा मिलती है, वह स्पष्ट है। जब जनता को यह विश्वास होता है कि राज्य उसके हित के लिए काम कर रहा है, तभी वह राज्य के प्रति वफादार रहती है। प्राचीन हिन्दू आदर्श 'रामराज्य' का अर्थ ऐसा राज्य है, जो जनता के हित को सर्वोपरि समझता है। महाभारत में भीष्म पितामह ने भी राजधर्म की व्याख्या करते हुए कहा कि राजा को अपनी प्रजा की रक्षा वैसे ही करनी चाहिए जैसे माता अपने गर्भस्थ शिशु की करती है, अर्थात् प्रजा के हित को सबसे ऊपर रखना चाहिए।

आज की परिस्थितियों में यह सीख हमारे लिए और भी अधिक महत्व की है। पहले राजा हुआ करते थे। उस समय रवैया ही ऐसा था कि राजा को ठाट-बाट रखना पड़ता था, इसलिए उसमें और प्रजा में अंतर स्वाभाविक था।

परन्तु आधुनिक काल में राज्य की परिभाषा ही बदल गई है। अब राज्य को प्रजा ही चलाती है और सब लोग बराबर माने जाते हैं, जहां राजा है भी, वहां प्रजा ही सर्वशक्तिमान होती है। इसलिए गरीब-अमीर का अंतर आधुनिक राज्य के लिए और भी [illegible] है।

भारतीय संविधान इन सिद्धान्तों पर आधारित है—भारत गणराज्य है, जिसमें देश के सभी बालिगों को समान अधिकार हैं, राज्य को गरीबी-अमीरी, ऊंच-नीच और जात-पात के भेदभाव को मिटाना है

आज दुनिया भर के देशों में गरीबी-अमीरी का अंतर मिटाने की कोशिश की जा रही है। आज न कोई शासक वर्ग है न शासित।

आधुनिक राज्य यह मानने को तैयार नहीं है, कि केवल कुछ विशेष वर्ग के लोगों को ही शासन करने का अधिकार है। आज राज्य की बागडोर जिनके हाथों में है, वे राजा या नवाब नहीं, और न शासक जाति के हैं। यदि उनके और जनता के बीच बड़ा अंतर या खाई पैदा हो जाए, तो देश की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ सकती है। इसलिए आज भारत में महल और झोंपड़ियों के अंतर के लिए कोई स्थान नहीं है।

किसी भी देश में सभ्यता के विकास की कसौटी यह है कि सुसंस्कृत समाज का दायरा कितना बड़ा है। भारत ऊंची-नीची जातियों में बंटा है, जिसमें सबसे नीचे करोड़ों हरिजन हैं। यही हमारे हिन्दू समाज की सबसे बड़ी कमज़ोरी है।

देश के स्वर्णयुग में भी यह कमज़ोरी विद्यमान रही। उस समय कुछ लोग महलों में मौज उड़ाते थे और बाकी झोपड़ियों में रह कर जीवन बिताते थे। हरिजन तो मानवीय अधिकारों से भी वंचित थे। इसी कारण शासकों और प्रजा में गहरी खाई बनी, जो पाटी न जा सकी और जिसके कारण देश का पतन हुआ।

अपने इतिहास से हमको यही सीख मिलती है कि यदि यही असमानता बनी रही तो हमारा राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकेगा और अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखना भी मुश्किल हो जाएगा। हमने लोक हितकारी राज्य का आदर्श अपनाया है। एक ओर ऊंचे महल और दूसरी ओर छोटी झोपड़ियां साथ-साथ नहीं रह सकती।

संविधान के निदेश के अनुसार देश से छुआछूत को मिटाया जा रहा है, उद्योगों की उन्नति के द्वारा गरीबी मिटाई जा रही है, गांवों की उन्नति की जा रही है और प्राकृतिक साधनों का उपयोग किया जा रहा है। इन सबका उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक विषमता को मिटाना है। अपने इतिहास से हमने यही सीख ली है और इसे भुलाना अपने पतन को न्योता देना होगा।

—दिल्ली से प्रसारित





